अंक 293 वर्ष 59

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2020

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2020

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2020

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक)–16

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

परामर्श मंडल

प्रो. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'
डॉ. पी. ए. राधाकृष्णन
प्रो. ऋषभ देव शर्मा
प्रो. मंजुला राणा
प्रो. दिलीप कुमार मेधी
श्रीमती पद्मा सचदेव
श्री हितेश शंकर

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
डॉ. किरण झा
श्रीमती सौरभ चौहान

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **59** **अंक : 6 (293)**
नवंबर–दिसंबर 2020

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	**(डाक खर्च सहित)**
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
आपने लिखा
संपादकीय
आलेख

1. भारतवर्ष नामकरण-परंपरा एवं प्रमाण	प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी	9
2. शिक्षा और डिजिटलाइजेशन	विशाखा पाँचाल	13
3. सौराठ : मिथिला का एक सांस्कृतिक स्थल	रिपुंजय कुमार ठाकुर	16
4. रेणु के मैला आँचल में सामाजिक चेतना	राजेंद्र परदेसी	19
5. हिंदी के पठन-पाठन की समस्याएँ (दक्षिण भारत के संदर्भ में)	प्रो. एस. वी. एस. एस. नारायण राजू	23
6. उत्तर-पूर्व भारत की सांस्कृतिक एकात्मता	प्रो. रसाल सिंह	26
7. फकरा-योजना में असमिया समाज-जीवन : एक अवलोकन	उदिप्त तालुकदार	34
8. 'मुक्तिपर्व' का मर्म	डॉ. रश्मि मालगी	40
9. मूल्यों की अवधारणा एवं कालिदास के साहित्य में लोकवादी मूल्यों की प्रासंगिकता	निशि त्यागी/आकांक्षा श्रीवास्तव	44
10. 'सरोज स्मृति' में ध्वनि स्तरीय समांतरता	डॉ. विजय विनीत	52
11. स्वतंत्रतापूर्व हिंदी पत्रकारिता : एक अवलोकन	राहुल राज आर्यन	56
12. साहित्येतिहासकारों की दरिया विषयक उदासीनता	विवेक शर्मा	61

धरोहर

13. ममता	जयशंकर प्रसाद	67

हिंदी कहानी

14. लट्टू की माँ	मनीष कुमार सिंह	70
15. अदर मदर	शैलजा सक्सेना	77
16. आराधना	कृष्ण कुमार 'कनक'	89

हिंदी कविता

17. वेद सभ्यता के आदि ग्रंथ	सतीश श्रोत्रिय	94
18. घर	दिनेश चमोला "शैलेश"	95

19. ग़ज़लें — अश्वघोष — 97

अनूदित खंड

कहानी

20. किराए की जिंदगी (तेलुगु कहानी) — गोल्लापूडि मारुति राव
अनुवाद :
श्रीपेरंबुदूरु एस. नारायण राव
'श्रीनारा' — 98

21. दहलीज (गुजराती कहानी) — वर्षा सोलंकी — 102

कविता

22. कुछ लघु कविताएँ (मैथिली/हिंदी) — नारायण झा — 106

परख

23. गागर में सागर भरने की चुनौती स्वीकारती रचना
'तिल भर जगह नहीं'
(तिल भर जगह नहीं/चित्रा मुद्गल) — डॉ. करुणा शर्मा — 110

24. वेद मंजूषा अर्थात् 'वेद विश्वकोश'
एक अनूठी, अनुपम साधना
(वेद मंजूषा /वेद विश्वकोश,
इनसाइक्लोपीडिया ऑफ वेदाज/
संपादक : वेदप्रकाश शास्त्री) — प्रो. पूरनचंद टंडन — 117

25. हा! वसंत! : भारतीय जीवन के तीखे-मधुर स्वर
(हा! वसंत!/व्यंग्य-संग्रह/डॉ. पंकज साहा) — अमृत कुमार — 120

संपर्क सूत्र — **123**

सदस्यता फॉर्म

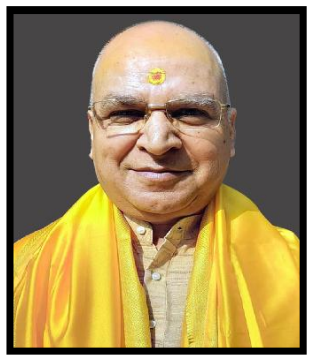

निदेशक की कलम से

अखिल ब्रह्मांड ज्योतिर्पुंज है और मानव जाति उसका एक महत्वपूर्ण अंग। विकास के विविध सोपानों, अनवरत आविष्कारों एवं परिवर्तनों को आत्मसात् करते हुए मानव आज अपने आधुनिक स्वरूप को प्राप्त हुआ है। ऐसा माना जाने लगा है कि मानव अब मानव निर्माण की ओर प्रगतिगामी है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और रोबोट ने मानव के मस्तिष्क के समानांतर एक यांत्रिक संरचना का निर्माण किया है। भारतीय मनीषा अज्ञान रूपी तिमिर को ज्ञान चक्षु से शनैः-शनैः क्षीण करने की परंपरा को समेटे हुए है। युगों-युगों से ज्ञान की निर्झरिणी मानवता को अपना अनमोल भंडार भेंट करती आई है। ज्ञान के निर्मल, सुवासित आगार को अपने किंचित प्रयास से सुसज्जित करने की दिशा में 'भाषा' की यात्रा अनवरत जारी है।

मानव ईश्वर की वह अनमोल कृति है जिसने अपनी मेधा से मुश्किल से मुश्किल चुनौतियों का सामना दृढ़ता से किया है। ज्ञान के अथाह संसार को वाणी अर्थात् भाषा के विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से जाज्वल्यमान कर चैतन्य स्वरूप प्रदान किया है।

अक्षर ब्रह्म है, वाणी संपूर्ण सृष्टि। भाषा अलौकिक दिव्य रूपाकार है। लिखित, मौखिक सभी रूपों में भाषा मुक्तहस्त से युगों-युगों तक संपोषित करती है। भाषा स्वयं सिद्ध है। वर्ष 2020 के प्रथम तिमाही में फरवरी-मार्च से ही वैश्विक महामारी कोरोना ने संपूर्ण मनुष्य जाति और सभ्यता के लिए एक दुष्कर चुनौती दी है। कोरोना के इस विकट काल में जिस प्रकार मानवता ने हार नहीं मानी उसी प्रकार केंद्रीय हिंदी निदेशालय की महत्वाकांक्षी परियोजना 'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका अपने लक्ष्य को पूरा करने का प्रयास करते हुए निरंतर क्रियाशील है। लेखकों, साहित्यकारों के लॉकडाउन एवं वैश्विक महामारी के परिस्थितिजन्य निजी समस्याओं का सामना करते हुए 'भाषा' परिवार अपने सुधी पाठकों के मानसिक बुभुझा को परिपुष्ट करने हेतु कटिबद्ध है। भाषा पत्रिका अपने नियमित उपादेय स्तंभों के साथ-साथ अखिल भारत के विभिन्न संस्कृति और परंपरा से सुसज्जित आलेख, कथा, शोधपरक विषयों सहित ज्ञानमूलक विषय सामग्री को एक ही स्थान पर सुरुचिपूर्ण स्वरूप में प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत अंक में धरोहर स्तंभ के अंतर्गत हिंदी के मूर्धन्य कथाकार जयशंकर प्रसाद कृत ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को प्रकट करती 'ममता' कहानी को रखा गया है।

नवंबर-दिसंबर अंक विभिन्न विषयों एवं स्तंभों से सुसज्जित मर्मज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। आशा है यह अंक आपके ज्ञान के मार्ग में सहयोगी सिद्ध होगा। इसी आशा के साथ आपके सुझाव एवं प्रतिक्रियाएँ ग्राह्य हैं।

रमेश कुमार पांडेय

प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

आपने लिखा

पत्रिका का जनवरी-फरवरी 2020 अंक भी विविधता लिए हुए है जिसमें विभिन्न स्तंभों के अंतर्गत-आलेख, यात्रा-वृत्तांत, हिंदी कहानी, हिंदी कविता, अनूदित खंड तथा परख शीर्षक से विषय विविधता के साथ प्रस्तुत हैं जो संपादक की क्रमबद्धता एवं सुव्यवस्थित दृष्टि की पहचान है। पत्रिका का आरंभ प्रख्यात कवि, आलोचक एवं साहित्यकार डॉ. गंगाप्रसाद विमल पूर्व निदेशक केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली को दी गई भावभीनी श्रद्धांजलि से किया गया है। डॉ. गंगाप्रसाद विमल का आकस्मिक निधन हिंदी जगत के लिए महान क्षति है। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दें। पत्रिका के आरंभ में निदेशक एवं संपादक के कथन तो और भी बहुमूल्य हैं जिनमें इस पत्रिका का गौरव छिपा है। पत्रिका में प्रकाशित 12 आलेखों में सभी शोधपत्र स्तरीय व लेखकों की ज्ञान गंगा से निकले हुए हैं। दोनों यात्रा-वृत्तांत भी ज्ञानवर्धक हैं। कहानी और कविता के साथ-साथ अनूदित खंड में आपने चार भाषाओं का परिचयात्मक संसार रचाया है इसके प्रति पाठक की रुचि स्वतः ही बन जाती है। परख स्तंभ में 2018-19 में प्रकाशित होने वाली कृतियों की उनके समीक्षात्मक लेखों सहित पाठकों तक पहुँचाने का कार्य सराहनीय है। वास्तव में 'भाषा' अपनी सफलता के आकाश पर विचरण कर रही है यदि किसी एक सूचकांक लेख में हिंदी भाषा साहित्य की गतिविधियों से भी परिचित करवाया जाए तो अति उत्तम होगा। कठिन परिश्रम व सफल दायित्व निर्वाह के लिए आप साधुवाद के पात्र हैं। आपकी सफलता की कामना करती हूँ।

डॉ. सुनीता शर्मा, सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, पंजाब

संपादकीय

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जब हम जीवन एवं मानव मूल्यों की बात करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बीसवीं सदी के उत्तराद्‌र्ध से ही विश्वभर में प्रत्येक समाज अपने सांस्कृतिक दायरे से बाहर निकलकर जैसे-जैसे अन्य संस्कृतियों के संपर्क में आया वैश्वीकरण, औद्‌योगीकरण, व्यावसायिकता और जन संचार क्रांति के समस्त तत्वों को अपने में समाहित करता चला गया। वैश्वीकरण अथवा भूमंडलीकरण के चलते मनुष्य की जीवन पद्‌धतियों, संस्कारों, विचारों और जीवन मूल्यों की दृष्टि से एक नई विश्व बिरादरी ने जन्म लिया जिसकी विश्वग्राम के रूप में संकल्पना की गई। ऐसे में किसी देश, समाज अथवा संस्कृति पर हुए संक्रमण का प्रभाव संपूर्ण विश्व पर पड़ना स्वाभाविक था।

'कोरोना' जैसी महामारी का वैश्विक संकट भी इसी विश्वग्राम की देन है। आज से कई दशक पहले तक इस प्रकार की महामारी का असर उसके जन्मदाता देश तक ही सीमित रहता था। जन संचार के बढ़ते साधनों की इस महामारी को व्यापक और भयानक रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारतीय जीवन-दर्शन, चिंतन, मनन, आचार-विचार, सामाजिक शिष्टाचार, संस्कार, लोक प्रथाएँ, रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, पारिवारिक मान्यताओं में पग-पग पर जीवन-मूल्यों से संबंधित अनेक ऐसे तत्व तथा प्रमाण उपलब्ध हैं जिन पर आचरण करने से हम इस प्रकार के संक्रमण और महामारी पर रोक लगाने में सक्षम हो सकते हैं।

आज हम तनाव, भय और संकट के अजीब से माहौल में जी रहे हैं। देश-विदेश में महामारी के भयानक मंजर देखकर हमारे दिल दहल जाते हैं। संपूर्ण विश्व इस समय एक वायरस से लड़-जूझ रहा है। इस महामारी से बचाव के लिए भारतीय जीवन मूल्यों में ही कुछ ऐसे उपाय निहित हैं जो हमारी संस्कृति के नीति-निर्देशक तत्व रहे हैं।

पृथ्वी पर जो जीवन है उसका अस्तित्व प्रकृति से है। वैदिक काल से अद्‌यावधि ऋषियों, विचारकों तथा वनस्पतिशास्त्रियों ने पर्यावरण के संरक्षण हेतु अनेक सिद्‌धांत प्रतिपादित किए। 'ईशवास्योपनिषद' का यह श्लोक वर्तमान समय में अधिक प्रासंगिक है -

ईशवास्यं इदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जिथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।1।।

अर्थात् इस संपूर्ण जगत में ईश्वर का आवास है। (ईश्वर सब में व्याप्त है) अतः इस जगत की वस्तुओं का त्यागभाव से उपयोग करो, उसमें लिप्त न हो। किसी के धन अथवा वस्तु को छीनो मत। धन किसका है? किसी का नहीं।

आज मनुष्य ने जिस तरह से प्रकृति को नुकसान पहुँचाया है, विनाश किया है उसका अभिशाप भी संपूर्ण मानवता को भोगना पड़ रहा है। कोरोना संकट ने देशवासियों को भी भारतीय जीवन शैली की ओर ही उन्मुख नहीं किया है वरन् संपूर्ण विश्व आज भारतीय संस्कृति की ओर आकर्षित हुआ है। सारा विश्व भारतीय योग, प्राणायाम, ध्यान और आयुर्वेद की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है। शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए परंपरागत भारतीय जीवनचर्या की ओर रुझान बढ़ा है।

विविध लेखों से समन्वित भाषा का यह अंक सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। सभी विद्‌वान लेखकों का हृदय से आभार। सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

(डॉ. राकेश कुमार)

विपत्ति से बढ़कर अनुभव सिखाने वाला
कोई स्कूल आज तक नहीं खुला
और न ही खुलेगा

मुंशी प्रेमचंद

✵ ✵ ✵ ✵

सोचा है नत हो बार-बार
"यह हिंदी का स्नेहोपहार
यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह रत्नहार-लोकोत्तर वर!"
अन्यथा, जहाँ है भाव शुद्ध
साहित्य-कला-कौशल प्रबुद्ध
है दिए हुए मेरे प्रमाण
कुछ वहाँ प्राप्ति को समाधान

'सरोज स्मृति', निराला

✵ ✵ ✵ ✵

अपनी भाषा तो भूल ही गया जैसे
चारों तरफ की भाषा ऐसी हो गई
जैसे पेड़-पौधों की होती है
नदियों में लहरों की होती है

शमशेर बहादुर सिंह

✵ ✵ ✵ ✵

भारतवर्ष नामकरण - परंपरा एवं प्रमाण

प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी

भारतवर्ष एक जाग्रत राष्ट्र के रूप में अपनी सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान परंपरा के कारण अति प्राचीन काल से ही संपूर्ण विश्व में समादृत रहा है। हमारी मातृभूमि 'भारतवर्ष' की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा और महत्ता की स्थापना में भारतीय वाङ्मय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वेदों, पुराणों और जैन धर्म ग्रंथों में भारतवर्ष को एक उपमहाद्वीप स्वीकार करते हुए इसे 'जम्बूद्वीप' की संज्ञा दी गई है। इन ग्रंथों के अनुसार धरती के सात द्वीप थे, इस तथ्य से सभी आस्थावान हिंदू परिचित हैं। इन सात द्वीपों में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक एवं पुष्कर का नाम आता है। जम्बूद्वीप इन सभी के मध्य में स्थित है। जम्बूद्वीप के नौ खंड थे - इलावृत, भद्राश्च, किंपुरुष, भरत, हरि, केतुमाल, रम्यक, कुरु और हिरण्यमय। 'विष्णु महापुराण' में इस पूरे प्रकरण पर एक विस्तृत विवरण मिलता है-

जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्य संस्थितः

...(2.2.7)

भारतं प्रथमं वर्ष ततः किंपुरुषं स्मृतम्,

हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज। (2.2.13)

रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैवानुहिरण्यम्,

उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा। (2.2.14)

नव साहस्त्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम्,

इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छितः।(2.2.15)

भद्राश्चं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे।

...(2.2.24)

इसी जम्बूद्वीप को प्रियव्रत ने अपने पुत्र आग्नीन्ध्र को दिया था। इस तथ्य की पुष्टि भी 'विष्णुमहापुराण' (2.1.12) से होती है: "जम्बूद्वीपं महाभाग साग्नीध्राय ददौ पिता। मेधातिथेस्तथा प्रादाप्लक्षद्वीपं तथापरम्।" जम्बूद्वीप के इस भाग को ही आगे चलकर आग्नीन्ध्र ने अपने पुत्र नाभिराज को दिया। नाभिराज का ही एक नाम अजनाभ भी प्रचलित था अतः इस क्षेत्र का नाम 'अजनाभ वर्ष' हुआ। 'अजनाभ वर्ष' के विषय में श्रीमद्भागवत (5.7.3) में यह प्रमाण मिलता है कि - "अजनाभं नामैतदवर्षभारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति।" स्कंदपुराण (माहेश्वर खंड) के अनुसार -

नाभैः पुत्रश्च ऋषभ ऋषभाद भरतोऽभवत्।

तस्य नाम्नात्विदं वर्ष भारतं चेतिकीर्त्यते।।

नाभिराज के पुत्र ऋषभदेव थे। ऋषभदेव के पुत्र भरत हुए। उनकी कीर्ति के कारण ही हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। जैन ग्रंथ 'आदिपुराण' के रचयिता आचार्य जिनसेन स्वामी ने सातवीं शताब्दी में रचित अपने इस ग्रंथ में भरत का विस्तार से वर्णन किया है जिसके अनुसार ऋषभदेव की दो पत्नियाँ नंदा और सुनंदा थीं। नंदा के चक्रवर्ती भरत सहित सौ पुत्र तथा एक पुत्री ब्रह्मी हुईं तथा सुनंदा के एक पुत्र बाहुबली तथा एक पुत्री सुंदरी हुए। एक अत्यंत रोचक कथा भी आती है कि ऋषभदेव ने ही लिपि व्यवस्था का आविष्कार करके अपनी बड़ी पुत्री के नाम पर इसका नाम ब्राह्मी लिपि रखा था।

ऋषभदेव और भरत के संबंध में भारतीय वाङ्मय अत्यंत मुखर है। श्री विष्णुमहापुराण (2.1.31) में ऋषभदेव और उनके पुत्र के विषय में लिखा मिलता है कि – "ऋषभो मरुदेवी ऋतु ऋषभत भरतो भवेत् भरताद् भारतं वर्ष सुमतिस्त्व भूत्स" अर्थात् ऋषभ का जन्म मरुदेवी (ऋषभदेव की माता) के लिए हुआ था, भरत का जन्म ऋषभ से हुआ, भारतवर्ष का जन्म भरत से हुआ और सुमति (भरत का पुत्र) का उदय भरत से हुआ। इतना ही नहीं, 'श्री लिंगमहापुराण' में भी ऋषभदेव की श्रेष्ठता एवं प्रजावत्सलता का संदर्भ आया है –

ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम्।

ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।। (47.20)

सोभिषिच्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सलः।

ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जित्वेन्द्रियमहोरगान्।। (47.21)

अर्थात् ऋषभ सब राजाओं से पूजित और राजाओं में श्रेष्ठ था। ऋषभ से एक वीर पुत्र भरत उत्पन्न हुआ। वह राजा के सौ पुत्रों में जयेष्ठ था। पुत्र वत्सल ऋषभ ने भरत का राजा के रूप में अभिषेक करके स्वयं अपने ज्ञानेंद्रिय रूपी सर्पों को वश में करके ज्ञान और वैराग्य का आश्रय लेकर आत्मा में सर्वात्मना को स्थापित करने का व्रत लिया। इसी ग्रंथ में आगे विवरण है कि–

तस्मात्तु भारतं वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।

भरतस्यातमजो विद्वान्सुमतिर्नाम धार्मिकः।।

(47.24)

बभूब तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्यवेशयत्।

पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः।।

(47.25)

अर्थात् उसने (ऋषभदेव ने) हिमवान पर्वत के दक्षिण में स्थित राष्ट्र भरत को दे दिया। इसलिए विद्वान लोग उसको भारतवर्ष के नाम से पुकारते हैं। भरत का सुमति नामक पुत्र था। भरत ने राज्य का भार उसको सौंप दिया। राज्य को अपने पुत्र को सौंप कर राजा भरत ने तपस्या के लिए वन में प्रवेश किया। यह श्लोक ऋषभदेव और भरत के संदर्भ में भारतवर्ष का उल्लेख भी करता है। यह अत्यंत गौरव का विषय है कि हम पृथ्वी के जिस भूभाग अथवा भारतवर्ष के निवासी हैं, उसके स्वरूप एवं भौगोलिक क्षेत्र और भरत के साथ इसके संबंध का प्रमाण श्री विष्णुमहापुराण (2.3.1) में इस प्रकार मिलता है –

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।

अर्थात्, वह देश जो समुद्र के उत्तर में स्थित है और बर्फीले पहाड़ों के दक्षिण में है, भारत कहा जाता है, वहाँ भरत के वंशज रहते हैं। जैसा कि ऋषभ और भरत संबंधी प्रकरणों से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष के नामकरण पर व्यापक चिंतन हुआ है। राष्ट्र के संदर्भ में नामकरण का महत्व इसलिए भी है कि हम जिस देश में जन्म लेते हैं अर्थात् जो हमारी मातृभूमि है, उसकी महत्ता को हम भलीभाँति समझ सकें। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में यह कहा गया है कि – "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" (अथर्ववेद – 12.1.12), जिसका तात्पर्य है कि मेरी माता भूमि है तथा मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। भारतीय परंपरा में माँ और मातृभूमि को वंदनीय मानते हुए सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है – "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" वाल्मीकि रामायण का यह श्लोक भारतीय मानस के पटल पर अंकित है। परंतु सामान्यतः इसका पहला अंश और उसके प्रसंग लोगों को ज्ञात नहीं है। दो प्रसंग उल्लेखनीय हैं। 'वाल्मीकि रामायण', (दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास, 1930, प्रथम संस्करण) में यह पूरा श्लोक आया है। पहला प्रसंग यह है कि (युद्ध कांड में) लंका को देखकर लक्ष्मण विस्मित हो जाते हैं और राम से कुछ दिन लंका में रहने की अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं। लक्ष्मण को लंका के प्रति मोहग्रस्त देखकर राम उनसे कहते हैं कि –

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

अर्थात् "हे लक्ष्मण! यद्यपि यह लंका सोने की बनी है, फिर भी इसमें मेरी कोई रुचि नहीं है। (क्योंकि) जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान है।" दूसरे प्रसंग में ऋषि भारद्वाज राम को संबोधित करते हुए कहते हैं –

मित्राणि धन धान्यानि प्रजानां सम्मतानिव।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

अर्थात् "मित्र, धन-धान्य आदि का संसार में बहुत अधिक सम्मान है। (किंतु) माता और मातृभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊपर है।" मातृभूमि के प्रति यह अनुराग भाव इस बात की पुष्टि करता है कि भारतवर्ष कितनी सुचिंतित परंपराओं, ज्ञान राशियों और उन्नत विचारधाराओं से संपन्न रहा है। भारतवर्ष की इस वैचारिक श्रेष्ठता का एक ज्वलंत प्रमाण है भारतवर्ष के नामकरण से संबंधित उसकी चिंतन धारा।

भारत के नामकरण के विषय में तीन धारणाएँ प्रमुख रूप से मिलती हैं। भारतीय परंपरा में 'भरत' नाम की चार महान विभूतियों का उल्लेख मिलता है- तीर्थंकर ऋषभदेव के प्रथम पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत का (जिनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है), राजा रामचंद्र के अनुज भरत का, राजा दुष्यंत के पुत्र भरत का और 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता भरत का। भारतवर्ष के नामकरण के संदर्भ में 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता भरत का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दशरथ-पुत्र भरत के त्याग एवं संयम के कारण लोकमानस उन्हें ही 'भारतवर्ष' के नाम के मूल में मानता है, पर वाङ्मय इस लोकधारणा की पुष्टि नहीं करते। राम के अनुज भरत का भ्रातृप्रेम और रामायण की कथा सर्वविदित है। राम वनवास के बाद राम के उपदेश और आदेश पर उनकी चरण पादुका को आधार रखकर भरत ने वनवासी वेश में रहकर नंदीग्राम से राजकाज का संपादन किया। राजा दुष्यंत और शकुंतला की संतति भरत की गणना महाभारत में वर्णित 16 श्रेष्ठ सम्राटों यथा वैवस्वत मनु, राजा हरिश्चंद्र, राजा सुदास, भगवान राम, राजा युधिष्ठिर आदि में की गई है। जनमानस में भी दुष्यंत पुत्र भरत के नाम पर ही भारतवर्ष का नाम पड़ने का भाव सर्वाधिक व्याप्त है। महाभारत के आदिपर्व में (संक्षिप्त महाभारत : प्रथम खंड, वर्ष 1942, कल्याण कार्यालय, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या-79) लिखा है कि - "समय पर भरत का युवराज पद पर अभिषेक हुआ। दूर-दूर तक भरत का शासन-चक्र प्रसिद्ध हो गया। वह सारी पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट था। भरत से ही देश का नाम भारत पड़ा और वे ही भरतवंश के प्रवर्तक हुए।"

भारतवर्ष की महत्ता उसके नामकरण की इन तीन अवधारणाओं द्वारा समझी जा सकती है। एक ही नाम की तीन-तीन ऐसी महान विभूतियों ने भारतवर्ष में जन्म लिया जिनके नाम पर भारतवर्ष के नामकरण का प्रकरण संबद्ध है। इसमें संदेह नहीं कि ये तीनों ही विभूतियाँ भारतीय परंपरा की रत्न विभूतियाँ हैं। इनका व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति के सर्वोत्तम गुणों के समन्वय से निर्मित है। इस तरह का उदाहरण किसी अन्य राष्ट्र के नामकरण के विषय में नहीं मिलता है। भारतवर्ष की सभ्यता और उसकी आध्यात्मिक उत्कृष्टता की दृष्टि से ये तीनों 'भरत' अपने-अपने स्तर पर विलक्षण हैं। विलक्षणता या अपनी देन के चलते भरतमुनि को भी कम नहीं ठहराया जा सकता। उपरोक्त प्रमाणों से यह विदित होता है कि भारतीय वाङ्मय का अधिकांश ऋषभ-पुत्र भरत को ही भारतवर्ष के नामकरण का आधार मानता है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि ऋग्वेद के निरुक्तकार यह लिखते हैं कि "भारत आदित्यस्तस्य या भारती" अर्थात् "भरत सूर्य है और इसकी शोभा भारती है।" इसका तात्पर्य यह है कि सूर्यवंशी भरत के नाम पर ही भारतवर्ष का नाम पड़ा।

संक्षेप में कहा जाए तो यह एक तथ्य है कि दुष्यंत- पुत्र भरत के समय के बहुत पहले से 'भारत-जाति' विद्यमान थी और शकुंतला-पुत्र भरत चंद्रवंशी राजा थे जबकि ऋषभ-पुत्र भरत सूर्यवंशी थे। भारतवर्ष के नामकरण के संबंध में दशरथ-पुत्र भरत का उल्लेख ग्रंथों में नहीं मिलता है। श्रीमद्भागवत (पंचम स्कंध, अध्याय 4/9) में स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र महायोगी थे और उन्हीं के नाम पर यह देश भारतवर्ष कहलाया - "येषां खलु महायोगी भरतो जयेष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्ष भारतमिति व्यदिशन्ति।" स्पष्टतः ऋषभ-पुत्र भरत के संपूर्ण उच्च गुण भारत राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता के निर्माण का बीज हैं जिन्हें आज इस देश का भारतीय अथवा राष्ट्रीय अभिलक्षण माना जाता है। ऋषभ-पुत्र भरत ही भारतीय संस्कृति (भारती) के आदर्श रूप थे, अतः इस राष्ट्र का नाम उनके नाम पर पड़ना वास्तव में भरत के माध्यम से भारतीय परंपरा, संस्कृति और अस्मिता का संरक्षण करना भी है।

श्रीरामचरित मानस में दशरथ-पुत्र भरत के संदर्भ में तुलसीदास ने 'भरत' शब्द का अभिप्राय देते हुए लिखा है - "विस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।" (बालकांड, पृष्ठ 181) अर्थात् जो

सुचारू रूप से संसार का भरण-पोषण करता है, वह भरत है। ऋषभ-पुत्र भरत में प्रजा-पालन का यह मानवीय लक्षण सूर्य की भाँति प्रकाशित था। उनके पिता ऋषभदेव ने यह कहा था कि "यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र प्रजाजनों के भरण-पोषण और सेवा कार्य करने के कारण भरत नाम से विख्यात होगा" -

तस्माद् भवन्तो हृदयेन जाताः सर्व महीयांसभमु सनाभम्।

आक्लिष्ट बुद्धया भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद् भरण प्रजानाम्।। (श्रीमद्भागवत)

ऋषभदेव और उनके पुत्र भरत का सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक अवदान महत्वपूर्ण है। उनका यह प्रभाव भारत के पुरावशेषों की मिट्टी की मूर्तियों तथा अनेक प्राचीन मंदिरों में भी उत्कीर्ण मिलता है। भारतीय साहित्य में भी भरत-चरित वर्णित है जिनमें से जिनसेनाचार्य कृत 'आदिपुराण' का संदर्भ आता है। भारतीय सभ्यता को हमारी इसी परंपरा और संस्कृति के आधार पर पहचाना जाता है। भारतवर्ष को वैदिक काल से ही जम्बूद्वीप और अजनाभ वर्ष के नाम से जाना जाता रहा है जिसे कालांतर में ऋषभ-पुत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष कहा जाने लगा। अतएव यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष का नाम ऋषभ-पुत्र भरत के नाम पर पड़ा है।

भारत की महत्ता को समझने के लिए हमें अन्य दो 'भरत नामधारी विभूतियों' के मूल्य और आचरण पर भी निरंतर दृष्टिपात करते रहने की आवश्यकता है। दशरथ-नंदन भरत ने अभिमान त्याग कर, लोभ से परे होकर भ्रातृ-प्रेम का जो उदाहरण प्रस्तुत किया वह आज भी गंगाजल की भाँति भारतीय जनमानस को शीतलता प्रदान करता है। दुष्यंत तनय भरत अदम्य साहस के धनी थे। शत्रुओं का दमन करने के कारण ही उन्हें 'सर्वदमन' भी कहा जाता है। बाल्यकाल से ही उनके भीतर साहस और शौर्य के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। भारत के शौर्य, साहस और वीरता के प्रतीक हैं शकुंतला-पुत्र भरत। भारतीय परंपरा और वाङ्मय में ऋषभ-पुत्र भरत को भारतवर्ष के नामकरण का कारण माना गया है परंतु भारतीय संस्कृति की प्रकृति और उसकी अविच्छिन्न परंपरा में इस नामकरण प्रसंग के बहाने दशरथ-पुत्र भरत और दुष्यंत-पुत्र भरत की ओर देखने का भी अवसर मिलता है। भारत राष्ट्र की सांस्कृतिक उत्कृष्टता को समझने में इन तीनों का समन्वित स्वरूप एक त्रिवेणी की तरह प्रवाहित है जिसकी पावन धारा में डुबकी लगाकर भारतीय दर्शन, संस्कृति और चिंतन के अनेकानेक माणिक-मोती और रत्न प्राप्त किए जा सकते हैं।

– कुलपति निवास, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, लालपुर, अमरकंटक, जिला-अनूपपुर, मध्य प्रदेश-484887

❑❑❑

शिक्षा और डिजिटलाइजेशन

विशाखा पाँचाल

"उच्चतम शिक्षा वो है, जो हमें सिर्फ जानकारी ही नहीं देती, बल्कि हमारे जीवन को समस्त अस्तित्व के साथ सद्भाव में लाती है।"

रविंद्रनाथ टैगोर द्वारा लिखित उक्त पंक्ति, हर शिक्षा प्रणाली के लिए सही मायने में लागू होती है। शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने के बारे में नहीं है। यह जॉब ओरिएंटेड भी नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य बच्चों के समग्र विकास के लिए उन्हें जिम्मेदार नागरिक, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति कर्तव्यनिष्ठ बनाना है। टैगोर ने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की वकालत की जो भारतीय संस्कृति में गहरी जड़ें जमाए हुए है और फिर भी पश्चिम की प्रगति को अवशोषित कर रही है। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में डिजिटल साधनों का एकीकरण इस बात की सही व्याख्या करता है।

21वीं सदी में इस दुनिया में कुछ भी प्रौद्योगिकी से अछूता नहीं है। या कहें कि तकनीक ने शिक्षा सहित मानव जीवन के लगभग सभी पहलुओं में प्रवेश किया है। शिक्षा प्रणाली पिछले कई दशकों से कई बड़े सुधारों से गुजरी है। सबसे महत्वपूर्ण सुधारों में से एक शिक्षा का विलासिता से आवश्यकता तक परिवर्तन है और अब यह एक आवश्यकता है जो डिजिटल तेज़ी से हो रही है।

यदि हम शिक्षा के बारे में बात करते हैं, तो यह एक सतत प्रक्रिया है और प्रकृति में व्याप्त है। शिक्षा केवल ज्ञान का अधिग्रहण नहीं है और वह भी औपचारिक सेटिंगस में। जो कुछ भी (ज्ञान, कौशल, मूल्य, विश्वास) किसी भी माध्यम से और किसी भी सेटिंग (औपचारिक या अनौपचारिक) में सीखा जा सकता है; शिक्षा का हिस्सा है। औपचारिक सेटिंग तक शिक्षा को बाध्य करना सीखने को बाध्य करना है जो अवधारणा को अमानवीय बना रहा है।

हर क्षेत्र में नवोन्मेष और प्रौद्योगिकी हावी हो रही है। इसलिए डिजिटलाइजेशन के इस परिदृश्य में शिक्षा क्षेत्र के लिए इस गतिशील वातावरण के अनुकूल होना आवश्यक हो गया है ताकि इस अत्यधिक प्रतिस्पर्धी दुनिया के साथ तालमेल बना रहे। किसी राष्ट्र का वर्तमान और भविष्य दोनों ही उसकी शिक्षा प्रणाली पर बहुत अधिक निर्भर करता है। एक मजबूत शिक्षा प्रणाली मजबूत राष्ट्र का निर्माण करती है जिसकी आबादी न कि केवल साक्षर हो बल्कि उचित रूप से शिक्षित हो।

हमारे देश भारत में परंपराएँ और संस्कृतियाँ सभी क्षेत्रों में हावी हैं और समृद्ध विविधता एक उल्लेखनीय विशेषता है। हमारी पारंपरिक शिक्षा प्रणाली समग्र दृष्टिकोण पर आधारित थी। यह प्रणाली व्यापक रूप से बदलने लग गई और शिक्षार्थियों के संज्ञानात्मक विकास पर अधिक केंद्रित हो गई। इसका मुख्य कारण शिक्षा में डिजिटलाइजेशन नहीं है।

डिजिटल होने का मतलब यह नहीं है कि शिक्षण और सीखने की हमारी पुरानी सोने जैसी पद्धति से हम दूर हो जाएँ जो कि शिक्षार्थियों के सर्वांगीण विकास पर जोर देती है। नैतिक विकास उतना ही महत्वपूर्ण है

जितना कि बुद्धि विकास और प्रौद्योगिकी या डिजिटलाइजेशन इस प्रक्रिया में अवरोध का काम नहीं करते हैं। चीजों को अधिक लाभप्रद बनाने के लिए प्रौद्योगिकी का विकास और उन्नयन किया जाता है। कैसे प्रौद्योगिकी को विस्तृत तरीके से और ज्यादा उपयोगी बनाया जा सकता है? यह शिक्षकों और छात्रों दोनों पर निर्भर करता है।

इस दुनिया में प्रतिस्पर्धा लोगों के जीवन पर हावी हो रही है और इस दौड़ में प्रथम आने के लिए हम दूसरों की नकल कर रहे हैं और अपनी वास्तविक क्षमताओं और लक्षणों को खो रहे हैं। शिक्षा में डिजिटलाइजेशन का उद्देश्य संज्ञानात्मक विकास पर केंद्रित नहीं होना चाहिए। शिक्षक डिजिटलाइजेशन के संदर्भ में तरीकों को विकसित करके नैतिक और सामाजिक विकास का नेतृत्व कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, छात्रों को आभासी कक्षा में व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करके ऑनलाइन व्यवहार के नियमों को पढ़ाया जा सकता है। छात्रों को वास्तविक जीवन की समस्याओं के बारे में जागरूक करने के लिए वास्तविक जीवन के मामले का अध्ययन और समस्या निवारण तकनीकों को सिखाया जाना चाहिए ताकि वे विभिन्न विकल्पों के संभावित परिणामों का विश्लेषण करके सभी कठिनाइयों को दूर कर सकें। इससे छात्रों का नैतिक विकास होगा।

शिक्षा प्रदान करने के लिए चार दीवारों वाली कक्षा आवश्यक नहीं है। शिक्षा वहाँ होती है जहाँ शिक्षार्थी ज्ञान प्राप्त करने, कौशल आदि सीखने के इच्छुक होते हैं और शिक्षक पाठ्यक्रम और पुस्तकों से परे जाने के लिए समर्पित होते हैं। डिजिटलाइजेशन ने शिक्षा को देखने के दृष्टिकोण को बदल दिया है और क्षमता तक पहुँचने और इसका विस्तार करने के लिए कई नए दरवाजे खोले हैं। अपने सपनों को पूरा करने के इच्छुक कई छात्रों को कोचिंग और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता होती है, लेकिन वे इसके लिए बड़ी राशि का भुगतान नहीं कर सकते। ऐसे उत्सुक छात्रों के लिए शिक्षा के डिजिटल साधन उनके लिए एक वरदान हैं क्योंकि वे इसे आसानी से वहन कर सकते हैं।

2019 में, भारत सरकार ने कहा कि उसकी आबादी का 6.7% उसकी आधिकारिक गरीबी सीमा से कम है भारत जैसे देश के लिए जहाँ इतने परिवार गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं और कई क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्शन की सुविधा नहीं है, शिक्षा में डिजिटलाइजेशन एक जटिल और चुनौतीपूर्ण काम है। शिक्षा हालाँकि आधुनिक जीवन में एक आवश्यकता बन गई है, लेकिन डिजिटलाजेशन के माध्यम से शिक्षा प्रत्येक बच्चे तक पहुँचाने के लिए प्रौद्योगिकी और डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता की माँग करता है। ऐसा करना एक छोटी अवधि की प्रक्रिया नहीं है। इसके लिए सरकार द्वारा सूचना और प्रौद्योगिकी और डिजिटल शिक्षा प्रणाली के क्षेत्रों में भारी मात्रा में व्यय की आवश्यकता है।

सिर्फ एक कदम आगे बढ़ाकर कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता है। लेकिन प्रत्येक और हर कदम यात्रा को पूरा करने और अंतिम गंतव्य तक पहुँचने के लिए मायने रखता है। बेशक, भारत को डिजिटल इंडिया में बदलने में समय लगेगा। हमें शिक्षक, सरकारी अधिकारी, माता-पिता और अन्य हितधारकों के रूप में इस दिशा में अपने प्रयासों को जारी रखना होगा ताकि हम अपने जीवन और भविष्य को बेहतर बना सके।

हमें अपनी शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह से बदलने की जरूरत नहीं है, लेकिन इसे गतिशील, प्रौद्योगिकी के अनुकूल बनाना होगा। छात्रों के प्रदर्शन पर नज़र रखने के लिए अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण लाने में डिजिटलीकरण फायदेमंद है। यह दूरी की बाधाओं को दूर करने में भी सहायक है। शिक्षा में डिजिटल परिवर्तन अनुकूलन के लाभों को बढ़ावा देता है। शिक्षा में डिजिटलीकरण सीखने को अनुकूलित करने का अवसर प्रदान करता है।

एक सबसे महत्वपूर्ण बात जो डिजिटल परिवर्तन की सफलता के लिए आवश्यक है वह है शिक्षक प्रशिक्षण। शिक्षकों को प्रशिक्षण और अभिविन्यास कार्यक्रम के माध्यम से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिससे वे कुशल तरीके से डिजिटल उपकरणों का उपयोग कर सकें। मौजूदा पाठ्यक्रम में प्रौद्योगिकियों को एकीकृत करने के लिए समय की आवश्यकता है और दक्षता को अधिकतम करने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

सीखने के हमारे पारंपरिक तरीकों को भूलना कोई विकल्प नहीं है। हमें अपनी चल रही शिक्षा प्रणाली में

कुछ संशोधन और आत्मसात् करके उसे डिजिटल शिक्षा के लिए अनुकूल बनाना चाहिए। आभासी शिक्षा आमने-सामने शिक्षण को पूरी तरह से प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है। हमें शिक्षा और प्रौद्योगिकी को एकीकृत करने की आवश्यकता है। उन्हें एक इकाई के रूप में एक साथ देखने की जरूरत है। कुशल शिक्षण-अधिगम प्रकिया के अवसर बनाने के लिए शिक्षा के साथ प्रौद्योगिकी का मिश्रण होना चाहिए। बदलाव महत्वपूर्ण है लेकिन मुख्य ताकत की कीमत पर नहीं। हमें शिक्षा प्रणाली को और अधिक कुशल और गुणात्मक बनाने के लिए क्रांति लाने की आवश्यकता है।

हमारा भारत देश विकास की दिशा में गतिशील हो चला है।

पद्धति, प्रणाली, तौर तरीके शिक्षा के तेज़ी से रहे हैं बदल,

ध्यान देना है मौलिकता पर नहीं करनी है किसी की नकल।

शिक्षक हो या शिक्षार्थी, डिजिटलाइजेशन से साथ निभाना है,

पश्चिमी शिक्षा का पारंपरिक शिक्षा से अनुपम मेल बिठाना है।

शिक्षा और तकनीक का रिश्ता और मजबूत हो चला है,

– मकान नं. 141, गली नं. 1, निकट कमल पब्लिक स्कूल, सेवा नगर, मेरठ रोड, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश-201001

❑❑❑

सौराठ : मिथिला का एक सांस्कृतिक स्थल

रिपुंजय कुमार ठाकुर

सौराठ मिथिला (उत्तर बिहार) के मधुबनी जिले में स्थित एक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक गाँव है। यह मिथिला के उन गाँवों में से एक है, जो मिथिला के सांस्कृतिक इतिहास में अपने विशाल योगदान के लिए जाना जाता है। यह एक प्राचीन स्थान है, जहाँ खुदाई किए गए कुछ टीले पाए गए हैं, जो संभवत: इसके ऐतिहासिक महत्व की अपार जानकारी को अपने गर्भ में समेटे हुए हैं। ब्रिटिश-भारत सरकार के पुरातत्व सर्वेक्षक अलेक्जेंडर कनिंघम ने उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक में इस गाँव का सर्वेक्षण ओईनवार वंशीय महाराजा शिव सिंह के एक अभिलेख की एक छाप या फोटोग्राफी लेने के लिए किया, जो 14वीं सदी से संबंधित है, प्रकृत: यह एक दान अभिलेख है जो महाराजा ने विद्यापति को प्रदान किया था। इस ताम्रपत्र अभिलेख की जानकारी उनके साथ दरभंगा के बाबू लाल नामक एक स्थानीय पंडित ने साझा की थी।

कनिंघम लिखते हैं कि पंडित बहुत बुद्धिमान और विद्वान था, और उन्हीं से सौराठ के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई थी। 1880-81 ई. में अपनी पुरातात्विक सर्वेक्षण यात्रा के बाद उन्होंने इस प्राचीन ग्राम की प्रशंसा में लिखा है- "इस ब्राह्मणवादी गाँव की एंटिक्विटी पर थोड़ा संदेह हो सकता है, और यद्यपि मूल ताम्रपत्र अभिलेख से किसी तरह का स्टांप या संस्करण हासिल न करने पर गंभीरता से निराश होना पड़ा, मुझे सौराठ जाने का दुख नहीं है।"

कनिंघम ने उल्लेख किया है कि यह शिलालेख नान्हू ठाकुर के कब्जे में था और उन्होंने लगभग 20 साल पहले सरकार को यह ताम्रपत्र अभिलेख प्रस्तुत किया था। अन्य गाँव के पंडितों के साथ ठाकुर ने अधिक जानकारी एकत्र करने में उनकी मदद की। उस समय कनिंघम सौराठ में दो डीह को देख सकते थे, जो लगभग एक मील की दूरी पर था। उस स्थल पर कोई पुरातात्विक अवशेष नहीं खोजा जा सका, इसलिए खुदाई का स्थल तय करना मुश्किल था। प्रख्यात सर्वेक्षक लिखते हैं कि ग्रामीण उन टीलों अथवा अवशेषों को प्राचीन नगर या बस्ती का अवशेष मानते हैं और वे उन लोगों के विचार से सहमत भी हैं। उन्होंने बड़े डीह में कुछ सतही खुदाई की जिसमें कुछ ईंटें और मिट्टी की कई गेंदें मिलीं जिसके केंद्र में छिद्र थे, संभवत: जिसका प्रयोग कताई के लिए किया जाता था।

इस गाँव का मूल संस्कृत नाम 'सौराष्ट्र' है। लोक दर्शन अथवा परंपरा में इस नाम की उत्पत्ति दो प्रकारों से वर्णित है। पहली दंत कथा बताती है कि यह गाँव रामायण काल से पहले का है और रामायण काल में यह सौ छोटे देशों के समूह का मुख्यालय था। यहाँ उल्लेखनीय है कि रामायण की कुछ घटनाएँ सौराठ गाँव के आसपास के कुछ स्थानों से भी जुड़ी हुई हैं, जैसे सतालखा, मंगरौनी और कनैल। इस जनश्रुति के आधार पर स्थानीय इतिहासकार इजहार अहमद ने ग्राम जगतपुर की पहचान की है, जो सौराठ के पूर्व में मिथिलापुरी, विदेह साम्राज्य की राजधानी के रूप में स्थित है। यह वही स्थल है जहाँ पर राजा जनक की सभा में वाद-विवाद/शास्त्रार्थ में याज्ञवल्क्य ने कई विद्वानों को पराजित किया था। इस क्षेत्र में टीलों की खुदाई से

भाषा ISSN 0523-1418

रामायण की कलाकृतियों तथा रामायणकालीन संस्कृति की पुरातात्विक साक्ष्य को खोजने की संभावना है, जो भविष्य में मिथिला के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व को एक नवीन दृष्टि प्रदान कर सकता है।

सौराष्ट्र/सौराठ के नामकरण से संबंधित दूसरे उपाख्यान के अनुसार जब 1025 ईस्वी में महमूद गजनी ने गुजरात राज्य के अंतर्गत सौराष्ट्र क्षेत्र में स्थित प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर में लूट-पाट की और ज्योतिर्लिंग को तोड़ा तब सौराठ ग्राम के दो भाई भागीरतदत्त और गंगादत्त को भगवान आशुतोष का स्वप्न आया और महादेव ने उन्हें ज्योतिर्लिंग को कहीं और सुरक्षित स्थान उपलब्ध कराने के लिए कहा और वे शिवलिंग को इस गाँव में ले आए। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जब राजा हरिसिंहदेव ने चौदहवीं शताब्दी ई. (1309-24) के पहले चरण में मैथिल ब्राह्मणों और कर्ण कायस्थों का पंजीकरण शुरू किया था, उस समय सौराठ नाम की कोई उत्पत्ति या मूल नाम का कोई उल्लेख नहीं था। इससे पता चलता है की उस समय गाँव में ब्राह्मणों और कायस्थों का निवास नहीं था।

सौराठ मैथिल ब्राह्मणों के वैवाहिक मिलन केंद्र के लिए प्रसिद्ध रहा है, जिसे लोकप्रिय रूप में सौराठ सभा के रूप में जाना जाता है। सभा-गाछी विवाह मिथिला के सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है जो देश में अन्यत्र और कहीं भी नहीं है। सांस्कृतिक गाँव सौराठ में सभा की संस्था ने पूर्व-आधुनिक मिथिला से संवेग ग्रहण किया। राज्य एवं स्थानीय लोगों की देख रेख में प्रतिवर्ष सौराठ सभा का आयोजन इस गाँव के बाहरी इलाके से गुजरने वाले जयनगर- मधुबनी मार्ग के निकट स्थित सभा-गाछी में आयोजित किया जाता था। जिस स्थान पर लोग इकट्ठा होते थे वह स्थल तपते सूरज से सुरक्षा प्रदान करने वाले पीपल, बरगद, पाकुड़ और आम आदि के पेड़ों से घिरा हुआ था (अभी भी सभा स्थल पेड़ों से घिरा हुआ है), जिन्हें मैथिली में सभा-गाछी कहा जाता है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में इस वैवाहिक सभा की प्रासंगिकता वैश्वीकरण की सांस्कृतिक अस्त्र पश्चिमीकरण के आगमन के साथ घटती गई और यह घटना व्यावहारिक उपयोग से बदलकर सामाजिक परंपरा की सांस्कृतिक वर्षगांठ के रूप में बदल गई है।

यह सभा हिंदू कैलेंडर के ज्येष्ठ-आषाढ़ महीनों में आयोजित होने वाला एक वार्षिक कार्यक्रम था। ऐसा कहा जाता है की लाखों लोग यहाँ आते थे। वर और वधू दोनों पक्ष घटक, पंजीकार, रिश्तेदार या परिचितों के साथ इस मिलन सभा में एकत्रित होते थे। हालाँकि यह एक खुला वैवाहिक आयोजन था लेकिन जाति/वर्ण की स्थिति को बनाए रखा गया था। इस सभा को आयोजित करने का आदेश स्थानीय खंडवाल राजाओं ने पंजीकारों को दिया था और उन्होंने इसका सफलतापूर्वक आयोजन और संचालन किया। सौराठ सभा में विभिन्न गाँवों के रजिस्ट्रार/पंजीकार अपनी-अपनी पंजी प्रबंधों के साथ बैठते थे। धीरे-धीरे कई प्रसिद्ध पंजीकार/वंशावली परिवारों ने गाँव में बसने का फैसला किया और उनमें से कुछ अभी भी वहाँ हैं। सौराठ सभा की उत्पत्ति से पहले इस तरह की सभाएँ समौल और अक्सर पिलखवाड़ (दोनों मधुबनी जिले में स्थित ग्राम हैं) में होती थीं। किसी समय, इस तरह की बैठकें मिथिला के विभिन्न क्षेत्रों में चौदह स्थानों पर होती थीं जिनमें सौराठ और समौल प्रमुखता से शामिल हैं।

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा के अनुसार खंडवाला राजा राघव सिंह (1703- 1739 ई.) ने समौल गाँव के पास सभा का आयोजन शुरू किया। सभा में पंजीकार दोनों पक्षों के मध्य विवाह ठीक हो जाने पर ताड़-पत्र पर लिखकर 'सिद्धांत-पत्र' देते थे। 'सिद्धांत-पत्र' विवाह के लिए स्वीकृति होती है जो यह जाँचने के बाद जारी किया जाता था कि सात पीढ़ियों से वर-वधू पक्ष के बीच कोई रक्त- संबंध नहीं था (अभी भी कुछ लोग विवाह की इस पारंपरिक-साइंटिफिक पद्धति के द्वारा विवाह करते हैं)। महामहोपाध्याय परमेश्वर झा लिखते हैं कि समौल में सभा के लिए नियुक्त रजिस्ट्रार/पंजीकार पर किसी कारणवश ग्रामीणों द्वारा एक बार अत्याचार किया गया था और उन्होंने उस गाँव से पलायन करने का फैसला किया और अंततः सौराठ में बस गए, जहाँ पंजीकारों ने सभा / सभा का गंतव्य चुनने के लिए तरौनी गाँव (दरभंगा जिला) के होराइ झा की सहायता प्राप्त की। राजा माधव सिंह ने इस सभा में शामिल होने के लिए बाहर से आने वाले लोगों की सुविधा के लिए एक सभागृह, मंदिर (माधवेश्वर शिवालय), मंदिर के चारों ओर विशाल धर्मशाला और मंदिर के

इशान कोण में एक बड़े पोखर का निर्माण शुरू किया। माधव सिंह के पुत्र राजा छत्र सिंह के समय में निर्माण कार्य 1832-33 ई. में पूरा हुआ। निर्माण कार्य से संबंधित उपरोक्त वृत्तांत माधवेश्वर मंदिर के कीर्ति शिला में उल्लिखित है। दुर्भाग्य से अभिलेख का दूसरा भाग अब स्पष्ट दिखाई नहीं देता है, इसको पुरातात्विक ढंग से साफ करके पढ़ने की आवश्यकता है।

इस प्रकार सौराठ मिथिला का एक सांस्कृतिक-ऐतिहासिक स्थल है। सोमनाथ मंदिर सहित गाँव में कई मंदिर हैं जो एक आधुनिक वास्तुकला के साथ विराजमान हैं जहाँ लोग बड़ी आस्था से दर्शनार्थ करने जाते हैं। जैसा की पूर्व उल्लिखित है मिथिला के शासक द्वारा निर्मित सभा-गाछी में माधवेश्वर मंदिर नाम का एक बड़ा शिव मंदिर है। मंदिर का परिसर हरा-भरा है, जिसके आँगन में श्रद्धालु-आश्रय के लिए एक विशाल धर्मशाला है, परिसर में ही एक बड़ा पोखर है और पक्का घाट बना हुआ है। अब इस स्थल का रखरखाव नहीं किया जाता है, कोई भी इसकी दयनीय स्थिति को देखते हुए इस पोखर में स्नान नहीं करना चाहता है। कुछ पंजीकार अभी भी हैं, उनका घर भी सभा-गाछी के परिसर में ही है। वे वहाँ नित्य अपनी परंपरागत पंजी-प्रबंध के साथ बैठते हैं और समुदाय के सदस्यों के लंबे वंशावली इतिहास को सुरक्षित रखा हैं। हाल ही में सौराठ सभा गाछी के निकट मिथिला लोक कला केंद्र तथा मिथिला संग्रहालय की स्थापना हुई है। सौराठ ग्राम में विभिन्न जाति/वर्ण के लोग रहते हैं, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से गाँव समृद्ध है। गाँव की कई महिलाओं ने मिथिला पेंटिंग में प्रसिद्धि प्राप्त की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अहमद, इजहार, मधुबनी थ्रू दी एजेसः ए रीजनल हिस्ट्री ऑफ मधुबनी, दिल्लीः इमेज इंप्रेशंस, 2007

2. चौधरी, राधा कृष्णा, सलेक्ट इंसक्रिपशन्स ऑफ बिहार, सहरसाः शांति देवी, 1958

3. चौधरी, पी. सी. रॉय, बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्सः दरभंगा, पटनाः सुपरिंटेंडेंट सेक्रेटेरिएट प्रेस बिहार, 1962

4. कनिंघम, अलेक्जेंडर, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, भाग-XVI, 1880-1881

5. जयसवाल, कशी प्रसाद जयसवाल और ए. बनर्जी शास्त्री, डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑफ मैनुस्क्रिप्ट्स इन मिथिला, पटनाः बिहार रिसर्च सोसाइटी, 1927

6. झा, परमेश्वर, मिथिलातत्वविमर्ष, पटनाः मैथिली अकादमी, 2013 (संस्करण)

7. जर्नल ऑफ बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना, भाग-III

8. ठाकुर, उपेंद्र, हिस्ट्री ऑफ मिथिला, दरभंगाः मिथिला इंस्टिट्यूट ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज एंड रिसर्च इन संस्कृत लर्निंग, 1988 (संस्करण)

9. ठाकुर, विजय कुमार, मिथिला-मैथिलीः एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पटनाः मैथिली अकादमी, 2016 (संस्करण)

– मकान नं. 677, ब्लॉक-ए जी, शालीमार बाग, नई दिल्ली-110088

❑❑❑

रेणु के मैला आँचल में सामाजिक चेतना

राजेंद्र परदेसी

फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास मैला आँचल का कथानक सन् 1942 के बाद से प्रारंभ होकर गांधी हत्याकांड तक चला है। लेखक ने अंचल विशेष की सभी स्थितियों को उभारते हुए देश की राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति और जमींदारी प्रथा के अत्याचारों को उभारा है। उपन्यास का शीर्षक 'मैला आँचल' भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के प्रति एक लगाव की भावना ध्वनित करता है जो उस काल तक उपेक्षित ही थे। यद्यपि सरकारी योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण अंचलों को सुधारने का प्रयास हो रहा था, पर उसका सही लाभ निर्बल वर्ग को न मिलकर संपन्न वर्ग को ही मिल रहा था। प्रतिभा पलायन भी एक बहुत बड़ी समस्या थी। सभी क्षेत्रों में मूल्यहीनता की स्थिति उभर रही थी। जमींदार एवं पूंजीपति जी-भरकर शोषण कर रहे थे। आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही थी। इन विषम स्थितियों का शिकार हो रहा था- आम आदमी, जिसमें सामूहिक संघर्ष शक्ति का अभाव था। सामाजिक चेतना-संपन्न लेखक फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा इन सभी स्थितियों पर गहरी चोट करते हुए उन स्थितियों की प्रतिक्रिया को दिखाकर समाज के सम्मुख कई प्रश्न इस उपन्यास में खड़े किए गए हैं।

रेणु राजनीतिक विसंगतियों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि स्वतंत्रता-संग्राम के कालखंड में ही भारत का राजनीतिक वातावरण मूल्यहीन हो गया था। जो लोग मूल्य-आधारित सिद्धांतों एवं त्याग-तप के पक्षधर थे। उनका जीवन कष्टपूर्ण था। पर जो मूल्यहीन जीवन व्यतीत कर रहे थे, अवसरवादी थे, वे मौज मार रहे थे। देशभक्ति का चोला पहनकर खुला देशद्रोह करने वालों का जमघट हो गया था। इन भीषण विसंगतियों ने राष्ट्र को कितना बौना बना दिया था, यह आज हमारे सामने है। आज भी वह भ्रष्ट राजनीति जिसके बीज स्वतंत्रता के आस-पास बोए गए थे, राष्ट्र का सब प्रकार से अहित कर रही है।

उपन्यास के दो पात्र बालदेव और बावनदास त्यागी, तपस्वी, जनहितैषी, राष्ट्रभक्त, गांधीवादी कांग्रेसी कार्यकर्ता हैं। वे जेल गए, डंडे खाए, बावनदास को तो गांधी, नेहरू, राजेंद्र प्रसाद भी जानते हैं। अच्छा वक्ता है। पर इससे क्या होता है, राजनीति का आधार है- धन और सत्ता पाने के लिए जुटाया गया जनसमर्थन - जो त्याग से नहीं, तिकड़म से जुटाया जाता है। शुद्ध राष्ट्रभक्तों का सम्मान बलिदान के अवसर पर होता है, सुविधा प्रदान करते समय प्रभाव ही आधार रहता है और यही हुआ भी है।

कांग्रेस के साथ चलने वाली सोशलिस्ट पार्टी की स्थिति भी ऐसी ही है। उसका कार्यकर्ता कालीचरन, सच्चा समाजसेवी, निष्ठावान, कार्यकर्ता है जो अपने परिश्रम, त्याग से जनसेवा में लीन रहता है। पार्टी की छवि के लिए सदैव उतावला रहता है, अकारण निरपराध पकड़ लिया जाता है। जनसेवक, त्यागी तपस्वी भी कहीं नेता स्वीकार किए जाते हैं। यदि वह प्रभावशाली व्यक्ति होता, धन-संपन्न जमींदार होता या लड़कियों का व्यापारी होता तो वह भी इलाके का बड़ा नेता होता और पुलिस उस पर हाथ ही न डालती। यदि डाल भी देती तो सारी पार्टी हिल जाती। जब वह जिले के सेक्रेटरी के पास

असलियत बताने जाता है तो वह उसे चोर-डाकू कहकर घर से निकाल देता है और यह भी कहता है कि तुम्हें गोली मार देनी चाहिए।

धर्म के नाम पर हो रहे प्रपंच को देख रेणु टिप्पणी करते हैं कि धर्म का वास्तविक स्वरूप भी तो बिगड़ ही गया था। मठ, मंदिर, उनके मठाधीश, भोग-विलास व अनैतिकता में लिप्त थे। झगड़ा-फसाद, मुकदमाबाजी मठों में यह सब चलता था। महंत सेवादास, रामदास, आचारजगुरु, लरसिंघदास, लक्ष्मी के माध्यम से- धार्मिक क्षेत्र के घोर पतन की ओर संकेत किया है, जिस पर आस्था रखने का क्या कुफल हो सकता है, जिसे बड़े साफ शब्दों में स्पष्ट किया है।

इसके ठीक विपरीत बालदेव, बावनदास, कालीचरन हैं, जो किसी धर्म-संप्रदाय से नहीं बँधे हैं। कोई कंठी नहीं धारण कर रखी है, फिर भी वे मनसा, वाचा, कर्मणा से पवित्र और साधु हैं। उनके बारे में महंत भी स्वीकार करता है और कहता है- "कोठारिनजी! असल चीज है मन! कंठी तो बाहरी चीज है।"

रेणु ने मैला आँचल में व्यावहारिक धर्म को उभारा है। गीता का कर्मयोग, कबीर का चिंतन और विवेकानंद का व्यावहारिक दर्शन ही वर्तमान भारतीय जीवन के लिए उपयुक्त है, जिसमें आचरण की पवित्रता, कर्तव्य के प्रति निष्ठा, सेवा, परहित भावना और त्याग-तपोमय भोगरहित जीवन के साथ अहर्निश राष्ट्रचिंतन और राष्ट्रसेवा ही सच्चा धर्म है।

स्वतंत्रता से पूर्व राजनीति ने नारा दिया- "भारत माता को बंधन मुक्त कराना है, स्वराज्य लाना है।" स्वतंत्रता के बाद नारा बदल गया- "जनता से सबके लिए वोट पाकर, सत्ता में आकर अपने आपको स्वर्ग में बिठाना है।" पहला नारा 'सत्य' और 'आदर्श' था तो दूसरा नारा 'छल'। जनता की सेवा भाषणों में खूब हुई, पर वास्तव में सामने यही आया कि जनहित की भावना शुद्ध रूप से मन में थी ही नहीं, मात्र नारेबाजी थी। उपन्यासकार ने इस भावना का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया है।

राष्ट्रहित की भावना नारों में रह गई थी। उसकी आड़ में सत्ता में बने रहने का मोह था, अपनी तिजोरी भरने की भावना थी। इसके कई रूप उभरकर आए। स्मगलिंग, प्रतिभा पलायन, कमीशन आदि। जिसने राष्ट्र को कर्ज के कगार पर ला खड़ा किया। आज भी यह भीषण रोग राष्ट्र को खाए जा रहा है। यथा-बोफोर्स, स्विस खाते, सीमेंट में रेत नहीं, रेत में सीमेंट मिलाना आदि। प्रस्तुत उपन्यास के पात्र अनेकानेक मानव-सुलभ विकृतियों से ग्रसित होकर भी स्वेदशीपन और राष्ट्रीयता की भावना से युक्त हैं। इसमें दुलाचंद कापरा जैसे देशद्रोही भी हैं और डॉक्टर प्रशांत जैसे राष्ट्रभक्त, बावनदास जैसे शुद्ध राष्ट्रभक्त, कालीचरन एवं बालदेव जैसे राष्ट्रचिंतक भी हैं। उपन्यासकार ने बड़ी गहराई से इस राष्ट्रभक्ति और स्वदेशीपन की भावना को उभारा है और यह शत-प्रतिशत सत्य भी है कि यदि राष्ट्र-जीवन में शुद्ध राष्ट्रभक्ति का अल्पांश भी विद्यमान होता तो भारत जापान और इजराइल जैसा हो गया होता। एटम की भीषण ज्वाला झेलकर भी केवल राष्ट्रभक्ति के कारण ही जापान आज जिस स्थिति में है, उसका आधा भी भारत स्वतंत्रता-प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी नहीं हो सका।

भारत का कण-कण पवित्र है, गौरवमय है, प्रकृति की गरिमा से युक्त है। हर अंचल भारतमाता का ही आँचल हैं- चाहे वह मैला ही क्यों न हो। क्या पुत्र माँ के आँचल में मुँह इसलिए नहीं छुपाता कि उसकी माँ गरीब है, उसका आँचल मैला है। यह धरती हमारे लिए पवित्र है। इसकी रज चंदन है। विवेकानंद विदेशों से लौटकर इसीलिए तो इसकी धूल में लोटे थे। पर यह भाव रहा कहाँ- अब भारतमाता न रहकर इंडिया हो गया। उसकी गरीबी, मैले आँचल हमारे लिए घृणा की वस्तु बन गए। उन इनसानों के प्रति अपनत्व का भाव इसमें नहीं जगा, अपितु उन्हें जाहिल मानकर और अपने को परम सभ्य मानकर हमने उनकी उपेक्षा ही नहीं, उनसे घृणा भी की। गाँव छोड़कर नगरों की ओर पलायन प्रारंभ हुआ। डॉक्टर, मास्टर एवं समाजसेवक गाँवों में जाना अस्वीकार करने लगे। यह स्थिति आज भी है। इंग्लैंड का डॉक्टर भारत आकर आदिवासी क्षेत्रों में सेवाकार्य कर सकता है, पर भारत का डॉक्टर आदिवासी क्षेत्रों में जाने को तैयार नहीं। यह स्थिति राष्ट्रहित, जनहित और विकास की दृष्टि से घातक है। उपन्यासकार ने डॉक्टर प्रशांत तथा बालदेव, बावनदास आदि के माध्यम से धरती के कण-कण से प्यार की

बात उठाई है- "डॉक्टर पर यहाँ की मिट्टी का मोह सवार हो गया। उसे लगता है मानो वह युग-युग से इस धरती को पहचानता है। यह अपनी मिट्टी है। नदी, तालाब, पेड़-पौधे, जंगल-मैदान, जीव-जानवर, कीड़े-मकौड़े सभी में वह एक विशेषता देखता है। बनारस और पटना में भी गुलमोहर की डालियाँ लाल फूलों से लद जाती थीं। नेपाल की तराई में पहाड़ियों पर पलास और अमलतास को भी गले मिलकर फूलते देखा है, लेकिन इन फूलों के रंग ने उस पर पहली बार जादू डाला है।"

नेताशाही भ्रष्ट व कर्तव्यहीन हो गई तो अफसर महाभ्रष्ट हो गए। नेताओं के साथ साँठ-गाँठ करके सब प्रकार से राष्ट्र का अहित करना ही उन्होंने अपना कर्तव्य मान लिया। इस स्थिति का यथार्थ चित्र उभारते हुए उपन्यासकार ने जहाँ उनके भ्रष्ट आचरण और कर्तव्यहीनता को उभारा है, वहीं नई पीढ़ी को एक दृष्टि भी दी है कि यदि ये स्थितियाँ सतत विद्यमान रहीं तो राष्ट्र जीवन कभी गौरव नहीं प्राप्त कर सकेगा। कपड़ा, सीमेंट एवं चीनी से भरी बैलगाड़ियों को पाकिस्तान भिजवाने में सप्लाई इंस्पेक्टर और दरोगा की भूमिका, डॉक्टर को डकैतों के साथ मिला हुआ बताकर गिरफ्तार किया जाना, देशद्रोह, कर्तव्यहीनता और अकर्मण्यता का प्रमाण है। डाकू को तो गिरफ्तार न कर सके, पर किसी को तो गिरफ्तार करके कुछ कार्यवाही दिखानी ही थी।

भारत में सदैव से आमजन का शोषण होता रहा है। 'समाजवाद' का नारा खोखला साबित हुआ। इनके सत्ताबल व धनबल ने इन्हें इतना शक्तिशाली बना दिया कि कालीचरन जैसे बुर्जुआ-विरोधी जो यह कहता है कि 'जमीन जोतने वालों की' वह भी तहसीलदार के झाँसे में आकर संथालों से संघर्ष कर बैठता है। इनके अन्याय के प्रति उपन्यासकार ने आवाज उठाई है।

अवैध संतान समाज का कलंक है, पर उसका क्या कसूर है। समाज में होता यही रहा है कि कसूर करे कोई, भोगे कोई। इस महत्वपूर्ण मान्यता को उपन्यासकार ने कुमार नीलोत्पल के माध्यम से उभारा है। समूचा परिवार, ममता और गाँव के कुछ लोगों (जोतिखीजी जैसे दकियानूस) को छोड़कर शेष उसे सामाजिक मान्यता देते हैं।

किसी देश के नवयुवकों में देश-प्रेम और राष्ट्रोत्थान की भावना जाग्रत करने का एक माध्यम यह हो सकता है कि उनके समक्ष ऐसे युवकों का आदर्श प्रस्तुत किया जाए, जिन्होंने देश-सेवा और राष्ट्रोत्थान का व्रत लिया हो। इस दृष्टि से जब प्रशांत के चरित्र पर विचार होता है तो स्पष्ट हो जाता है कि उसको उपन्यासकार ने निस्वार्थ, कर्मठ तथा देशोद्धार के लिए प्रयत्नशील चित्रित किया है। आजकल ब्रेन-ड्रेन की चर्चा जोरों पर चल रही है, देश के अनेक होनहार वैज्ञानिक और डॉक्टर, जिनकी पढ़ाई-लिखाई पर देश का करोड़ों रुपया व्यय होता है, इंग्लैंड, अमरीका आदि पाश्चात्य देशों में जा बसते हैं, क्योंकि वहाँ पर उन्हें अत्यधिक वेतन मिलता है और भोग- विलास के भी पर्याप्त उपकरण उपलब्ध हैं। दूसरी श्रेणी उन डॉक्टरों की है जो विदेश नहीं जाते, किंतु वे नागरिक सुविधाओं से युक्त शहरी अस्पताल को छोड़कर ग्रामों में स्थित डिस्पेंसरियों और अस्पतालों में जाने का नाम नहीं लेते। इसके सर्वथा विपरीत डॉक्टर प्रशांत अपनी उस स्कॉलरशिप को ठुकरा देता है जो सरकार उसे देना चाहती है और पढ़ने के लिए विदेश भेजना चाहती है।

वह स्कॉलरशिप देने वाले मंत्री महोदय को उत्तर देता है-

"मैं इसी नक्शे के किसी हिस्से में रहना चाहता हूँ। वह देखिए यह है सहरसा का वह हिस्सा जहाँ हर साल कोसी का तांडव नृत्य होता है और पूर्णिया का पूर्वी आँचल, जहाँ मलेरिया और कालाजार हर साल मृत्यु की बाढ़ ले आते हैं।"

मंत्री महोदय उसे समझाते भी हैं कि मलेरिया सेंटर्स पर तो एल.एम.पी. की छोटी डिग्री वाले डॉक्टर नियुक्त किए जाते हैं, जबकि आप एम.बी.बी.एस. हैं। इस पर डॉक्टर प्रशांत का उत्तर है-

"जब तक मैं यह रिसर्च पूरी नहीं कर लेता, मैं कुछ नहीं हूँ। मेरी डिग्री किस काम की?"

उपन्यासकार ने इस तथ्य की ओर उचित ही निर्देश किया है कि अपने इस निर्णय के कारण डॉक्टर प्रशांत अपने साथियों और प्रोफेसरों में पागल के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है, क्योंकि हमारे डॉक्टर गाँवों में जाना जहालत समझते हैं और अपनी ओर से अग्रह करके किसी गाँव में जाना तो वे मूर्खता के अतिरिक्त और क्या समझ सकते थे?

प्रशांत के इस फैसले को सुनकर मेडिकल कॉलेज के अधिकारियों, अध्यापकों और विद्यार्थियों की तरह-तरह की प्रतिक्रिया हुई। मशहूर सर्जन डॉक्टर पटवर्धन ने कहा है- "बेवकूफ है"।

वस्तुतः फणीश्वर नाथ रेणु ने मैला आँचल में अत्यधिक कला-कौशल के साथ, सहज रूप में अनेक विसंगतियों को उभारते हुए उनकी तह तक जाकर दोनों पक्षों को उभारा है- यथार्थ पक्ष और आदर्श पक्ष। क्या है और क्या होना चाहिए- इसी में उपन्यासकार अनेक संदेश और प्रेरणाएँ देता हुआ दिखाई देता है। कहना न होगा कि उपन्यासकार फणीश्वर नाथ रेणु अपने इस उद्देश्य में पूर्णतः सफल हुए हैं।

– 44-शिव विहार, फरीदी नगर, लखनऊ-226015

❑❑❑

हिंदी के पठन-पाठन की समस्याएँ

(दक्षिण भारत के संदर्भ में)

प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू

राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में देश के अधिकांश लोगों द्वारा हिंदी समादृत हुई है। दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार-प्रसार व्यापक तौर पर हो रहा है। कई सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाएँ हिंदीतर प्रांत दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार को प्रोत्साहन देने लगी हैं। हिंदी प्रचार सभाओं की स्थापना हुई। दक्षिण भारत के छात्र अपनी मातृभाषा और अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी का भी अध्ययन करने लगे। त्रिभाषा नीति के समर्थन में कई सरकारी शैक्षिक संस्थाओं ने समय-समय पर जो निर्णय लिए, उनके अनुसार दक्षिण भारत (तमिलनाडु के अलावा) की पाठशालाओं और महाविद्यालयों में हिंदी के पठन-पाठन से संबंधित कई नियम लागू किए गए। पाठशालाओं, महाविद्यालयों और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी भाषा एवं साहित्य के अध्ययन के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करने के कई प्रयत्न हुए। हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विविध आयामों तथा भारत के प्राचीन इतिहास से अवगत होने के लिए हिंदी की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि समेकित रूप में भारतीयता के स्वरूप को जानने-पहचानने के लिए हिंदी भाषा एवं साहित्य के इतिहास से भी परिचित होना आवश्यक है।

हिंदी आर्य भाषा परिवार की प्रतिनिधि भाषा है। संस्कृत इसकी जननी है। पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश के रूप में विकसित होकर हिंदी वर्तमान में उत्तर भारत के अधिकांश राज्यों के लोगों की मातृभाषा के रूप में प्रचलित है। दक्षिण भारत के छात्रों में हिंदी के अध्ययन के प्रति विशेष रुचि होने के बावजूद हिंदी को सीखने में वे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करने लगे। नैसर्गिक वातावरण से वंचित होने के कारण सहजता से हिंदी को सीखने में वे असमर्थ होने लगे। हिंदी का वातावरण केवल कक्षाओं तक सीमित रहा। छात्र जो कुछ हिंदी कक्षाओं में सीखते हैं, वह साहित्यिक भाषा होती है। इसी कारण से दैनंदिन जीवन में उपयोगी कामचलाऊ अर्थात् प्रयोजनमूलक भाषा से वे अपरिचित हैं। हिंदी में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों से भी वे अपरिचित रहते हैं। साग-सब्जियों, रिश्ते-नाते व अन्य साधारण शब्दों से भी उनका अपरिचित रहना एक समस्या है। स्नातक स्तर तक हिंदी सीखने के बावजूद, छात्र को यदि काशी जाना पड़े, तो वह अपने को अपने ही देश में विदेशी समझता है। 'चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी' यह उक्ति सत्य प्रमाणित होती है।

'हिंदी' समझी जाने वाली भाषा में उर्दू, फारसी तथा कई अन्य भाषाओं के शब्द विपुल मात्रा में व्यवहृत होने के कारण दक्षिण भारत के छात्र हिंदी को सीखने में कई कठिनाइयों का सामना करते हैं। कई आंचलिक शब्दों के अर्थ उपलब्ध कोशों में प्राप्त नहीं होते हैं। साधारण छात्रों के लिए ही नहीं, शोधार्थियों के लिए भी कोड मिश्रण तथा कोड परिवर्तन के संदर्भ में हिंदी में व्यवहृत शब्दों का अध्ययन करना कठिन प्रमाणित होने लगा है।

मातृभाषेतर अन्य भाषा को सीखना निश्चय ही कठिन है प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। शब्द संरचना को लेकर प्रत्येक भाषा अपने अलग अस्तित्व को प्रकट करती है। दक्षिण भारत के छात्र हिंदी के व्याकरण को समझने में कठिनाई महसूस करते हैं। विशेषकर प्रत्यय का प्रयोग करने तथा लिंग एवं वचन संबंधी नियमों से अवगत होने में वे कई कठिनाइयों का सामना करते हैं। इसके अलावा संस्कृत भाषा के कई शब्दों का, वे अपनी मातृभाषा में जिस अर्थ में प्रयोग करने के वे अभ्यस्त होते हैं, उन शब्दों का हिंदी में कई संदर्भों में भिन्न अर्थों में प्रयोग करने के अवसर पर कई त्रुटियों के प्रकट होने की संभावना बनी रहती है। इस दोष का निवारण करने के लिए हिंदी तथा अपनी मातृभाषा में प्रचलित समानरूपी भिन्नार्थी शब्दों की भी जानकारी छात्रों को प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

कई पाठशालाओं और महाविद्यालयों के ग्रंथालयों में हिंदी भाषा व साहित्य से संबंधित पुस्तकें अनुपलब्ध होती हैं। पाठ्य पुस्तकों की टीकाओं तथा तत्संबंधी पुस्तकें प्राप्त करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। प्रधान विषय के रूप में हिंदी का चयन कर स्नातक उपाधि प्राप्त करने पर रोजगार प्राप्त होने की न्यूनतम संभावनाएँ होने के कारण हिंदी के अध्ययन की ओर छात्र आकर्षित नहीं होते। स्नातकोत्तर स्तर पर भी हिंदी का अध्ययन करने वालों की स्थिति भी यही रहती है। इन छात्रों को, कम से कम उनके अध्ययन काल में, सरकार की ओर से कोई छात्रवृत्ति देकर उन्हें प्रोत्साहन करने की कोई योजना लागू नहीं है। यदि कुछ योजनाएँ हैं तो भी उनसे लाभान्वित होने वाले छात्रों की संख्या बहुत कम है। हिंदीतर भाषी छात्रों को हिंदी प्रांतों में यात्रा करने हेतु जो सीमित मात्रा में अनुदान देने की योजना है, उससे सीमित समयावधि में हिंदी के व्यावहारिक ज्ञान को प्राप्त करने की बहुत कम संभावना बनी रहती है। सभी विद्यालयों में हिंदी में निबंध लेखन व भाषण प्रतियोगिताएँ नियमित रूप से नहीं होती। स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी का अध्ययन करने और शोध उपाधि के लिए अनुसंधान करने वालों की, हिंदी भाषा एवं साहित्य पर वर्तमान में गंभीर रूप से काम करने वाले विद्वानों व समालोचकों की उपलब्धियों से पूर्णत: अपरिचित रहने जैसी दयनीय स्थिति है। इनके लिए हिंदी साहित्य के सृजन व समीक्षा के संदर्भ में 'समकालीनता' तीस वर्ष पुरानी है। अद्यतन संपन्न शोध-कार्य से भी वे अपरिचित रहने लगे। जब तक किसी महत्वपूर्ण रचना को उनके पाठ्यक्रम में स्थान नहीं मिलता और उस रचना पर टीका व समीक्षा सामग्री नहीं मिलती, तब तक दक्षिण के सामान्य स्तर के छात्र उस रचना के व रचनाकार के नाम से भी परिचित नहीं होते। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की पर्याप्त मात्रा में अनुपलब्धता के कारण भी हिंदी साहित्य की समकालीन स्थिति से वे परिचित नहीं होते। हिंदी साहित्य का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। हिंदी पद्य और गद्य साहित्य को सुसंपन्न एवं सुविख्यात बनाने वाली अनगिनत रचनाएँ हैं। हिंदी को विश्वभाषा के स्तर पर ला खड़ा करने वाली रचनाओं के प्रणेता भी असंख्य हैं। खेद की बात यह है कि दक्षिण भारत के हिंदी छात्र चालीस व पचास हिंदी रचनाकारों का नामोल्लेख मात्र कर सकते हैं।

दक्षिण भारत में हिंदी के अध्ययन की स्थिति भी निश्चय ही संतोषजनक नहीं है। क्योंकि हिंदी भाषा की प्रकृति व व्याकरण के सामान्य नियमों से नितांत अपरिचित छात्रों को गंभीर रूप से प्राचीन तथा आधुनिक हिंदी काव्यकारों और गद्यकारों की प्रतिनिधि रचनाओं को पढ़ाना वास्तव में एक चुनौती है। पाठ्य ग्रंथों की बाजार में अनुपलब्धता के कारण छात्रों को पढ़ाना अत्यंत कठिन साध्य होता है। दक्षिण भारत में इन दिनों कई कार्पोरेट कालेजों में संस्कृत को द्वितीय भाषा के रूप में स्वीकार कर परीक्षा देने वाले छात्रों को न्यूनतम अंक पचासी से नब्बे प्राप्त होने लगे। वे अपने प्रश्नों के जवाब मातृभाषा, अंग्रेजी व संस्कृत में दे सकते हैं। ऐसी स्थिति में इंटरमीडियट व बारहवीं की कक्षाओं में हिंदी की द्वितीय भाषा के रूप में लेने के लिए कोई भी छात्र रुचि नहीं दिखाते। इसका प्रभाव स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी के विभागों पर पड़ने लगा। ग्रंथालयों में हिंदी की पुस्तकों की अनुपलब्धि के कारण भी हिंदी के अध्यापक नवीनतम उपलब्धियों से परिचित नहीं हो पा रहे हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में निष्ठा की कमी स्पष्टत: दिखाई देने लगी। जो छात्र विभिन्न विद्यालयों में हिंदी का अध्ययन करने लगे, वे सतही तौर पर हिंदी सीखने तक सीमित होने लगे। हिंदी के नाम पर नौकरी करने

वालों के लिए हिंदी भजन और भोजन की भाषा बनती जा रही है। इस प्रकार जो संगोष्ठियाँ अथवा कार्यशालाएँ आयोजित होने लगीं, उनमें इस समस्या को लेकर विद्वान कहे जाने वाले प्रतिभागियों द्वारा जो विचार व्यक्त किए जाते हैं, उन्हें एक प्रतिवेदन के रूप में सारगर्भित रूप में तैयार कर पत्रिकाओं में उनका विशेष प्रचार कर समस्या की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए ऐसा मेरा मानना है।

यह सर्वविदित है कि कोरोना महामारी के इस समय में पूरी दुनिया ऑनलाईन हो गई है। लगभग सभी कार्य ई-संसाधनों द्वारा हो रहा है। परंतु हिंदी भाषा व साहित्य से संबंधित जानकारी के लिए गूगल में ढूँढ़ने से बहुत कम जानकारी मिलती है। यह जानकारी न के बराबर है। आजकल हिंदी से संबंधित जानकारी ई-माध्यमों द्वारा देने के लिए अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। मैं भी हिंदी विभाग, तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय के माध्यम से विभिन्न ई-संसाधनों द्वारा हिंदी भाषा और साहित्य की जानकारी देने के लिए कोशिश कर रहा हूँ।

उपर्युक्त समस्याओं को दूर करने के लिए वर्तमान तकनीकी तथा ई- संसाधनों को पूर्णतः उपयोग करने की आवश्यकता है। इस कार्यक्रम के लिए सरकार द्वारा आवश्यक सहयोग देने की आवश्यकता भी है।

– डीन, हिंदी विभाग, स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज एंड ह्यूमैनिटीज़, केंद्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु, थिरुवरुर-610005

❑❑❑

उत्तर-पूर्व भारत की सांस्कृतिक एकात्मता

प्रो. रसाल सिंह

संस्कृति व्यक्ति और राष्ट्र को दृष्टि देती है। जीवन-शैली एवं जीवन-मूल्यों का निर्धारण करती है और विशिष्ट जीवन-दर्शन का निर्माण करती है। संस्कृति ही मनुष्य को मानवीय स्वरूप और गरिमा प्रदान करती है और उसे विशिष्ट बनाती है। मनुष्य के चिंतन, उसके कर्म और जीवन का निर्धारक तत्व संस्कृति ही है। इसलिए राष्ट्र की सबसे बड़ी धरोहर भी संस्कृति ही होती है, जो उसे एक विशिष्ट पहचान देती है। भारतीय संस्कृति विश्वपटल पर अपनी अनूठी विशेषताओं के लिए जानी जाती है। भारतीय जीवन-दर्शन और सांस्कृतिक मूल्य सदियों से मनुष्य का मार्ग प्रशस्त करते आए हैं। 'स्वकेंद्रित' की जगह 'सर्वकेंद्रित' भारतीय संस्कृति भौतिक, आत्मिक और आध्यात्मिक संतोष प्रदान करती आई है। यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम से निर्धारित जीवनक्रम अनवरत चलता रहता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'अतिथि देवो भवः', सांस्कृतिक आत्मसातीकरण एवं सम्मिलन, प्राकृतिक साहचर्य के साथ-साथ सामुदायिकता, समन्वय और संतोष इसकी आधारभूत मूल्य-सरणि हैं।

भारत अपनी 'विविधता में एकता' के लिए जाना जाता है। भारत में अनेक भाषाएँ, जीवन-पद्धतियाँ, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार, रहन-सहन और खान-पान अपने पूरे वैविध्य और वैभव के साथ जीवन में राग-रंग भरते रहे हैं। भारतीय संस्कृति की सबसे अनूठी विशेषता वह अंतःसंबद्धता है जो गहरे स्तर पर समस्त भारतीयों को एकसूत्र में पिरोए रखती है। भारत की भौगोलिक और पर्यावरणीय विविधता भी इसे विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है।

उत्तर-पूर्व भारत अपनी समृद्ध संस्कृति, उन्नत जीवन मूल्यों, प्राकृतिक सुषमा एवं संसाधनों के लिए जाना जाता है। उत्तर-पूर्व भारत का समाज सदियों से प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं का ध्वजवाहक रहा है। किंतु वैरियर एल्विन जैसे अंग्रेज मानवशास्त्रियों ने अपनी औपनिवेशिक नीति के तहत इस विशिष्ट भारतीय समाज को असभ्य, जंगली और आदिम बताते हुए साम्राज्यवादी हितों के अनुकूल 'औपनिवेशिक पाठ' तैयार किया और मिशनरियों के माध्यम से सचेत और सुनियोजित धार्मिक हस्तक्षेप किया। इससे उत्तर-पूर्व भारत न केवल भ्रांत धारणा का शिकार हुआ बल्कि अंग्रेजों की समाज में 'फूट डालो और राज करो' की नीति की भी प्रयोगशाला बना। हम आज उसी बीज को 'अलगाववाद' के रूप में फलते-फूलते देख रहे हैं। "पूर्वोत्तर भारत रंगारंग लोकसंस्कृति का संग्रहालय है। असम तथा पूर्वोत्तर भारत की सभी जातियों, उपजातियों, जनजातियों की अपनी संस्कृति है। इन संस्कृतियों के साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का भी सातत्य है। परंतु आज शेष भारत के लोगों का पूर्वोत्तर की इन संस्कृतियों के साथ परिचय न के बराबर है, जो भारतीय एकता की अवधारणा को बाधित और विच्छिन्न करता है। इस कारण इनके मध्य भावनात्मक संपर्क का भी अभाव है।"[1]

पूर्वोत्तर के समाज ने जंगल, जल और जमीन के साथ सतत, धारणीय और आत्मीय संबंध स्थापित किया;

भाषा ISSN 0523-1418

भारतीय सांस्कृतिक जीवन का पल्लवन किया और प्राकृतिक संसाधनों का जैसा अनुकरणीय और संयमित उपभोग किया वह इन्हें मनुष्यता के पैमाने पर बहुत उच्च स्थान का अधिकारी बनाता है। वर्तमान समय की आवश्यकता है कि उस 'औपनिवेशिक पाठ' को नकार कर और भारतीय सांस्कृतिक एकात्मता के तत्वों को स्वीकार कर हम उत्तर-पूर्व समाज के गौरव को पहचानने और प्रतिष्ठित करने का प्रयास करें। इससे न केवल उत्तर-पूर्व के विभिन्न समुदायों बल्कि संपूर्ण भारत और भारतीय संस्कृति की मूल अवधारणा के साथ भी न्याय हो सकेगा।

भारतीय संस्कृति के विशाल कलेवर तथा भारतीयता की मूल आत्मा की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए आलोचक नामवर सिंह ने लिखा है- "अखंड भारत की परिकल्पना अनेकता में एकता नहीं है, वरन् एकता से निःसृत होने वाली अनेकता है। अर्थात् 'एकोह बहुस्याम', हम एक हैं, अखंड हैं, एक तत्व हैं, शक्ति हैं जैसे आत्मा या ब्रह्म एक है और वह अनेक जीवों में अपने को प्रकट करता है। उसी तरह से अखंड अविभाज्य भारतीय आत्मा है। वह भारतीय आत्मा ही है जो अपने को विविध रूपों में अभिव्यक्त करती है। ये प्रदेश और राज्य, भाषाएँ, संस्कृतियाँ और धर्म उससे उद्धृत होते हैं।"[2] सत्य तो यह है कि नामवर सिंह ने ब्रह्म की जो मीमांसा प्रस्तुत की है वह भारतीय चेतना एवं चिंतन की अवधारणा के विपरीत है क्योंकि भारतीय संदर्भ में जिस ब्रह्म को स्वीकार किया गया है वह नामवर सिंह के बहुस्यामः के ठीक विपरीत एकात्मता के ऐसे सूक्ष्म सूत्र से ग्रंथित है जिसके अंतर्गत जहाँ एक ओर दयासागर भगवान शिव की त्रिशक्ति है तो दूसरी ओर भगवान विष्णु के अवतार रूप में राम, कृष्ण जैसे महामानव हैं। तीसरी ओर, शक्ति स्वरूपा भगवती दुर्गा, काली, सीता आदि की शक्ति की एकात्म अन्विति है। शायद नामवर सिंह की दृष्टि में ब्रह्म की यह अवधारणा समाहित ही नहीं हो सकी। भारतीय संस्कृति की एकात्मता के गूढ़ रहस्य को समझने के लिए भारतीय दृष्टि का आत्मसातीकरण आवश्यक है। भारत की अखंडता के संदर्भ में उन्होंने ऋग्वेद के अग्निसूक्त 'ओऽम अग्निमइले पुरोहितम होतारं रत्नधातमम' जैसे पवित्र उद्घोष का उदाहरण तो दिया परंतु इसकी प्राचीनता, मौलिकता एवं विशिष्टता को देखने-समझने में उनकी दृष्टि असफल रही। विश्व के उपलब्ध प्राचीनतम एवं सर्वसम्मत साहित्य का 'अग्निसूक्त' जिससे कि संपूर्ण ब्रह्मांड आलोकित और उद्भाषित हुआ है, भारतवर्ष की अखंडता में निरंतर निरूपित एवं स्थापित हुआ है।

वास्तविकता यह है कि उत्तर-पूर्व के समाज का सांस्कृतिक स्वरूप भारतीय संस्कृति का ही विस्तार है। वास्तव में संस्कृति या भारतीयता की अवधारणा पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। भगवतशरण उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखा है- "भारतीय संस्कृति अंतहीन विभिन्न जातीय इकाइयों के सुदीर्घ संलयन का प्रतिफलन है।"[3] उत्तर-पूर्व के समाज का निर्माण भी समय के प्रवाह के सापेक्ष विभिन्न जातियों-जनजातियों की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप हुआ है। अतः उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताएँ अनूठी प्रतीत होती हैं। वास्तव में उनकी सांस्कृतिक अस्मिता अखंड भारत की परिकल्पना की ही परिचायक है। उत्तर-पूर्व समाज और संस्कृति के अध्ययन के क्रम में हमें सर्वप्रथम व्यष्टि और समष्टि के अंतःसंबंधों की अवधारणा और सृष्टि और परमेष्टि के पारस्परिक संबंध-बोध को अन्वेषित करने की आवश्यकता है। व्यष्टि ही समष्टि का मूलाधार है जो सृष्टि के सृजन की इकाई है और वही इकाई समष्टि-परमेष्टि में विलीन होती हुई एक सांस्कृतिक-आध्यात्मिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक आकार में मिलकर राष्ट्रीय निधि बन जाती है।

इस तथ्य को समझने के लिए उत्तर-पूर्व के समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं तथा संपूर्ण भारत की सामासिक संस्कृति से पूर्वोत्तर भारत की एकात्मता को स्थापित करने वाले तत्वों, विचारों और भावों का अध्ययन आवश्यक है। तभी वर्षों से औपनिवेशिक कूटनीति के तहत भ्रांत धारणा के शिकार रहे उत्तर-पूर्वी समाज के साथ न्याय किया जा सकेगा। अंग्रेजों ने उत्तर-पूर्व भारत को 'फूट डालो और शासन करो' की कूटनीति के तहत भौगोलिक रूप से भारत के अन्य राज्यों से अलग कर दिया था। इस कूटनीति के दूरगामी प्रभाव के फलस्वरूप उत्तर-पूर्व भारत शेष भारत से राजनीतिक और भौगोलिक रूप से अलग हो गया। भारत के अन्य क्षेत्रों में भी यह सामान्य धारणा घर कर गई कि उत्तर-पूर्व के निवासियों

की सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य-चेतना और जीवन-शैली भिन्न है। लेकिन हमारे पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक ग्रंथ तथा पुरातात्विक साक्ष्य सिद्ध करते हैं कि वैदिक काल से ही उत्तर-पूर्व भारत का अभिन्न अंग रहा है। व्यापक स्तर पर भारतवर्ष की ऐतिहासिकता, पौराणिकता, धर्मपरायणता और मानवता की कहानी एक ऐसे सुगंधित पुष्प की तरह है जिसकी पंखुड़ियों के रूप में अफगानिस्तान, सुमात्रा, जावा, पाकिस्तान, बांग्लादेश, तिब्बत, बर्मा आदि सुवासित थे। यह सत्य भारत के प्राचीन वैदिक साहित्य से सिद्ध होता है।

ॐ नमः परमात्मने, श्री पुराणपुरुषोत्तमस्य श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याध श्री ब्राह्मणों द्वितपरार्द्धे श्री श्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमवंतरेषटाविंशतितमे कलयुगे प्रथमचरणे जम्बुद्विपे भारतवर्षे भरतखंडे आर्यावर्तान्तेर्गतब्रह्मावतैकदेशे पुण्यप्रदेशे बौद्धावतारे वर्तमाने यथानामसंवत्सरे अमुकायने महामांगल्यप्रदे मासनाम उत्तमे।।

विष्णुपुराण में भी भारत की सीमा का उल्लेख कुछ इस प्रकार मिलता है-

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम।

वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।[4]

अर्थात् समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण का भू-भाग भारत कहलाता है और वहाँ के निवासी भारतीय कहलाते हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि एक ओर जहाँ भारतवर्ष के दक्षिणी राज्य धन-धान्य के साथ-साथ सारस्वत एवं सांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण हैं। वहीं, उत्तरी भाग धन-धान्य से परिपूर्ण होने के साथ प्राकृतिक संपदा से समृद्ध, अध्यात्म, वैदिक चिंतन तथा वेदांत के उद्गाता के रूप में प्रकट होता है। क्या उत्तर, क्या दक्षिण, क्या पूरब, क्या पश्चिम सर्वत्र जो एक स्वर निनादित होता है : वह है भारतीय एकात्मवाद का स्वर। अतः भारतीय संदर्भ में किसी प्रकार के विलगाव के सिद्धांत को प्रतिपादित करना या स्वीकार करना औपनिवेशिक मानसिकता को बढ़ावा देना ही कहा जाएगा।

इसके साथ ही दुर्गा सप्तशती, विष्णु-पुराण या कालिका पुराण जैसे महत्वपूर्ण प्राचीन धार्मिक साहित्य में भारत के जिस भौगोलिक विस्तार का उल्लेख मिलता है, उस पर भी पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। भारतीय सभ्यता के उन सूत्रों को पुनः बुनने की आवश्यकता है जिन्हें पाश्चात्य सभ्यता ने स्वयं को स्थापित करने के उद्देश्य से बड़ी निर्दयता से तितर-बितर कर दिया था। सौभाग्य से एकता के ये तंतु विखंडित किए जाने के बावजूद भारतवासियों के जीवन में सूक्ष्म सांस्कृतिक तत्वों के रूप में जीवंत रहे हैं। भारत की भौगोलिक एकता और सभ्यता के संबंधों पर विचार करते हुए निर्मल वर्मा ने लिखा है- "इसीलिए देश की भौगोलिक अखंडता सनातन काल से एक सभ्यता के स्मृति- संकेतों से जुड़ी रही है। भारत के प्राकृतिक परिवेश को भारत के सभ्यता बोध से अलग नहीं किया जा सकता। यूरोप ने जहाँ इकोलॉजी के महत्व को आज समझा है, वह हमेशा से भारतीय संस्कृति का अविभाज्य अंग रहा है।"[5] अतः आवश्यकता इस बात की है कि विदेशी सभ्यता ने हमारा जो विध्वंसक विद्रूपण किया उससे हम छुटकारा पाने का प्रयास करें और अपनी भारतीय सभ्यता के आत्म-बोध का विस्तार करें जो अनेक देशी-विदेशी झंझावातों को सहते हुए, समस्त अवरोधों और ऐतिहासिक विसंगतियों के बावजूद भारतीयता को एक समग्र रूप और अर्थ देता रहा है।

उत्तर-पूर्व भारत में संस्कृतियों को जोड़ने वाले अंतःसूत्रों जैसे- उनके रीति-रिवाज, शादी-विवाह और अन्य धार्मिक-सांस्कृतिक आग्रहों पर विचार करने की आवश्यकता है। इस क्रम में सर्वप्रथम यदि हम पूर्वोत्तर राज्यों के प्रादुर्भाव को देखें तो असम हो या अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा हो या फिर मणिपुर-पूर्वोत्तर के प्रत्येक राज्य से संबंधित तमाम महत्वपूर्ण पौराणिक आख्यान हैं। भारत के प्राचीन साहित्यिक, धार्मिक ग्रंथों में असम के दो नाम 'प्रागज्योतिषपुर' और 'कामरूप' मिलते हैं। 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ नॉर्थ ईस्ट इंडिया' में कर्नल वेदप्रकाश ने विष्णु-पुराण तथा कालिका पुराण में कामरूप से संबंधित आख्यान मिलने की चर्चा की है। अतः पुरातात्विक एवं साहित्यिक प्रमाणों से अनुमान होता है कि असम प्राचीन काल से ही भारत का अभिन्न हिस्सा रहा है। इस संदर्भ में बापचंद्र महंत ने लिखा है. "असम के प्रामाणिक इतिहास का प्रारंभ ई. चौथी शती के गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त के प्रयाग अभिलेख में मिलता है। असम के कई स्थानों में तत्कालीन गुप्त काल के कुछ नमूने खंडहर के रूप में अब भी मौजूद हैं"।[6]

किसी भी समाज के इतिहास, संस्कृति और अभीष्ट आकांक्षा को समझने के लिए उस समाज में प्रचलित लोककथाएँ और आख्यान महत्वपूर्ण स्रोत हो सकते हैं। उत्तर-पूर्व के समाज में प्रचलित विभिन्न धार्मिक और पौराणिक आख्यान भारतीय सांस्कृतिक एकता के महत्वपूर्ण सूत्र हैं। असम के नामकरण से संबंधित एक आख्यान के अनुसार. "असम में राजर्षि जनक को हल चलाते समय मनुष्य की खोपड़ी में 'नरक' नाम का एक पुत्र प्राप्त हुआ था। इस बालक को माता की जिज्ञासा हुई तो गंगा किनारे वसुमति ने दर्शन दिए। अपनी माता से जब नरक ने पिता के बारे में पूछा तो वसुमति ने उसका हाथ पकड़कर गंगा में डुबकी लगा दी। जब वे पानी से बाहर निकले तो वे प्रागज्योतिषपुर (वर्तमान असम) में थे।"[7]

• मनुस्मृति में भी असम के प्राचीन नाम का उल्लेख मिलता है-

सरस्वती दृषइत्योदेवनधोर्यदन्तरम।

तं देवनिर्मितं देशम ब्रह्मवर्त प्रचक्षते।।[8]

• अग्रिम श्लोक में मनु कहते हैं कि उस देश में लोगों का आचार सदाचार कहलाता है-

तस्मिन्देशे य आचार: पारम्पर्यक्तभागत:।

वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते।।[9]

मणिपुर के एक आख्यान के अनुसार- "मणिपुर के राजा चित्रवाहन की एक बेटी थी जिसका नाम चित्रांगदा था। चित्रवाहन ने चित्रांगदा को बेटे की तरह पाला। एक दिन उसने पांडव अर्जुन को देखा और वह उसके प्रति प्रेममोहित हो गई। इस बात से डरकर कि अर्जुन कहीं उसके पुरुषों जैसे तौर तरीके को पसंद न करे उसने देवताओं से यह प्रार्थना की कि वे उसे एक सुंदरी बना दें। देवताओं ने उसकी इच्छा को पूरा कर दिया। जब उसने सुना कि अर्जुन मणिपुर इसलिए आए हैं जिससे वह उस राजकुमारी से मिल पाएँ जो लड़कों की तरह लगती थी, उसने एक बार फिर से देवताओं का आवाहन किया कि वे उसे एक बार फिर से अपने पूर्व रूप में वापस ला दें। देवताओं ने उसकी यह इच्छा भी पूरी कर दी और अर्जुन से मिलने के लिए गई जो उसके शारीरिक सौष्ठव को देखकर तत्क्षण उस पर मुग्ध हो गए। इसके फलस्वरूप उन्होंने चित्रवाहन से चित्रांगदा का हाथ माँग लिया।"[10]

अरुणाचल प्रदेश की लोककथाओं और पुराणों के अनुसार पिता की आज्ञा से माता की हत्या करने के कारण परशुराम को मातृ-हत्या का पाप लगा था। अरुणाचल प्रदेश से कुछ दूरी पर स्थित परशुराम कुंड में स्नान करके परशुराम माता की हत्या के पाप से मुक्त हुए थे। शिव की पत्नी सती के शरीर का एक अंश विष्णु के सुदर्शन चक्र से खंडित होकर त्रिपुरा में भी गिरा था। ये सभी धार्मिक स्थान भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति में मिथकों का अपना महत्त्व है। एक सामान्य भारतीय, प्राय: पौराणिक आख्यानों और मिथकों के सहारे अपनी संस्कृति का निर्माण करता है और उससे अपने जीवन का संबंध और सार्थकता खोजता है।

भारत में मिथकों और परंपराओं के महत्व पर विचार करते हुए निर्मल वर्मा ने लिखा है- "हम संस्कृति को उन बिंबों, प्रतीकों और मिथकों से अलग करके नहीं देख सकते, जो हमारे जीवन के साथ अंतरंग रूप से जुड़े हैं। इनके माध्यम से न केवल हम अपने को पहचानते हैं। बल्कि ये वह आईना हैं, जिसके द्वारा हम बाहर की दुनिया को परखते हैं। ये बिंब और मिथक एक अदृश्य कसौटी हैं जिनसे हम धर्म और अधर्म, नैतिकता और अनैतिकता के बीच भेद करते हैं। संस्कृति मनुष्य की आत्मचेतना का प्रदर्शन नहीं, उस सामूहिक मनीषा की उत्पत्ति है, जो व्यक्ति को एक स्तर पर दूसरे व्यक्ति से और दूसरे स्तर पर विश्व से जोड़ती है"।[11] उत्तर-पूर्व ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारतीय संस्कृति एक समान मिथकों और परंपराओं की वाहक है। उत्तर-पूर्व की संस्कृति अभिन्न रूप से रामायण और महाभारत से जुड़ी हुई है। वहाँ रचित साहित्य रामकथा और कृष्णकथा का आधारभूत उपजीव्य है। कहा जाता है कि रामायण काल में जब लक्ष्मण मूर्छित हुए तो हनुमान जी लंका से आकाश मार्ग से आकर 'तूरा' के धौलगिरी पर्वत को संजीवनी बूटी सहित लेकर लक्ष्मण के उपचारार्थ सुषैण वैद्य के सम्मुख उपस्थित हुए। कुंभकरण के पुत्र भीष्मक ने अपनी माता ज्वाला के साथ नीलांचल पर्वत की घाटी में आकर तपस्या की। आज भी गोरचुक में भीमा शंकर के नाम से एक प्रसिद्ध मंदिर है।

विभिन्न पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि उत्तर-पूर्व के निवासी विभिन्न महत्वपूर्ण हिंदू देवी-देवताओं के अलावा गणेश, इंद्र, लक्ष्मी, सरस्वती जैसे देवी-देवताओं की भी आराधना करते रहे हैं। कालिका-पुराण तथा विष्णु-पुराण जैसे पौराणिक ग्रंथों में असम की तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख मिलता है। बापचंद्र महंत ने कालिका-पुराण की विषय-वस्तु का विस्तृत विवरण देते हुए लिखा है- "यह ई. 10वीं/11वीं शती में लिखित कालिका-पुराण नामक संस्कृत ग्रंथ है। अब तक प्राप्त तथ्यों के आधार पर कहा जाए तो यही असम में रचित प्रथम ग्रंथ है। शाक्त-संप्रदाय के आधार-अनुष्ठानों का वर्णन इस ग्रंथ का मुख्य विषय है। स्थानीय शक्ति पूजकों की विधि-व्यवस्थाओं को तथा शक्ति के स्थानीय विविध रूपों को भारतीय शाक्त संप्रदायों से समेकित करना ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य है।"[12]

भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में मनाए जाने वाले उत्सवों के मूल में प्रकृति के प्रति आस्था का महत्वपूर्ण भाव देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति-देवता सूर्य की देवशक्ति के रूप में उपासना भारत के प्रत्येक राज्य में प्रचलित है। मेघालय में 'सल्जोंग' (सूर्य देवता) की आराधना को समर्पित, पूरे उल्लास के साथ मनाया जाने वाला त्योहार 'वानशाला', अरुणाचल प्रदेश के त्योहार 'मोपिन' और 'सोलुंग', मेघालय में खासियों के पर्व 'शाद मिनसी' के मूल में, ईश्वर की पूजा और प्रकृति-पूजा ही है। इन त्योहारों के अवसर पर पशुओं की बलि चढ़ाने की प्रथा काफी प्राचीन है। फसल की अच्छी पैदावार की प्रार्थना इन त्योहारों की केंद्रीय प्रेरणा है। इस संदर्भ में यह ध्यान देने की बात है कि दक्षिण भारत के पोंगल तथा उत्तर भारत के त्योहार मकर-सक्रांति का संबंध फसलों की नई पैदावार से है। पालतू पशुओं की बलि देने की प्रथा बिहार में काफी प्रचलित है। उत्तर-पूर्व भारत की सांस्कृतिक विशेषताओं पर अपने एक लेख में विस्तारपूर्वक बताते हुए पत्रकार प्रांजल धर ने अरुणाचल प्रदेश की उत्सव संस्कृति के विषय में लिखा है। "यहाँ फरवरी के महीने में मनाए जाने वाले 'तमनाडु' पर्व में 'मिथुन' नाम के जानवर की बलि चढ़ाई जाती है। 'तमनाडु' में पुजारी अच्छी पैदावार के लिए पूजा करते हैं।"[13]

उत्तर-पूर्व भारत का सांस्कृतिक परिदृश्य अपनी सांस्कृतिक संबद्धता, विविधता और जीवंतता के साथ-साथ भारतीय लोकचित्तवृत्ति का प्रतिबिंब है। चाहे मणिपुरी और सत्रीय जैसा शास्त्रीय नृत्य हो; साना लामोक, साइकुती जई, लाई हारओबा त्योहार के गीतरूप में क्षेत्रीय संगीत हो या भाओना आदि परंपरागत नाट्य शैलियाँ - सभी एक ही सांस्कृतिक एकात्मता के अंत:सूत्र में आबद्ध पाई जाती हैं। मणिपुरी नृत्य का उद्भव प्राचीन समय से माना जा सकता है, जो लिपिबद्ध किए गए इतिहास से भी पूर्ववर्ती है। मणिपुर में नृत्य धार्मिक और परंपरागत उत्सवों के साथ जुड़ा हुआ है। मणिपुर में नृत्य कला का विकास और उद्भव मूलत: देवमंदिरों में हुआ है। यहाँ शिव, पार्वती के नृत्य तथा अन्य देवी-देवताओं, जिन्होंने सृष्टि की रचना की थी, की दंतकथाओं के संदर्भ मिलते हैं। वैष्णव काल के आगमन के साथ राधा-कृष्ण के जीवन की घटनाओं को इसके माध्यम से प्रस्तुत किया जाने लगा। मणिपुरी गायन की शास्त्रीय शैली को 'नट' कहा जाता है। जयदेव द्वारा रचित 'गीत गोविंद' की अष्टपदियाँ इस गायन में विशेष प्रचलित हैं जो वस्तुत: प्रकृति के प्रति भारतीय दृष्टिकोण की परिचायक कही जा सकती हैं।

पंद्रहवीं शताब्दी ई. में असम के महान वैष्णव संत श्रीमंत शंकरदेव द्वारा सत्रीय नृत्य को वैष्णव धर्म के प्रचार हेतु एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में प्रचलन में लाया गया। परंपरागत नाट्य-शैली भाओना, असम के अंकिया नाट का विस्तार है। इस शैली में असम, बंगाल, ओड़ीसा, वृंदावन-मथुरा आदि की सांस्कृतिक झलक मिलती है। इसका सूत्रधार दो भाषाओं में अपने को प्रकट करता है- पहले संस्कृत, बाद में ब्रजाबली या ब्रजबुलि अथवा असमिया में; नृत्य-संगीत की इस समृद्ध और सतत परंपरा में भाषाई एकता के सूत्र देखे जा सकते हैं। यह सांस्कृतिक आवाजाही एकता के सूत्रों की पुष्टि करती है।

उत्तर-पूर्वी राज्यों में दो सौ बीस से अधिक नस्लीय-समूहों के लोग निवास करते हैं। जैसाकि हम जानते हैं कि कुल देवता और ग्राम देवता का अस्तित्व भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अभिप्राय रहा है। उत्तर-पूर्वी समाज की जनजातियों की अपनी विशिष्ट जीवन-शैली और परंपराएँ हैं जो एक तरह से भारतीय संस्कृति का

ही विस्तार हैं। सभी जातियाँ-जनजातियाँ प्राय: किसी न किसी ग्राम-देवता या लोक देवता की उपासक हैं। उदाहरण के लिए त्रिपुरा की जमातिया, बराक गुफा की प्रमुख जनजातियों में एक है। इसके द्वारा लगभग चार सौ सालों से गौरिया नामक लोक देवता की पूजा की जा रही है। हर साल चौदह से इक्कीस अप्रैल की अवधि में की जाने वाली इस साप्ताहिक पूजा की पद्धति भारत की प्राचीन और वर्तमान पारंपरिक पूजा पद्धतियों से पूरा सादृश्य रखती है।

उत्तर-पूर्व के समाज में अंतर्निहित भारतीय सांस्कृतिक तत्वों पर विचार-विमर्श के क्रम में भाषा एक महत्वपूर्ण कड़ी है। भाषा जीवन और संस्कृति का मूल आधार है। निर्मल वर्मा ने भाषा और संस्कृति के सह-संबंध पर विचार करते हुए लिखा है "भाषा संप्रेषण का माध्यम होने के साथ-साथ संस्कृति की भी वाहक होती है। किसी देश की संस्कृति, ऐतिहासिक झंझावातों द्वारा क्षत-विक्षत भले ही हो जाए, उसका सत्य और सातत्य उसकी भाषा में बचा रहता है।"[14] यह एक रोचक तथ्य है कि जब कई देशों में सिर्फ एक भाषा बोली जा रही है, तब भारत जैसे विशाल देश में चार भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं - ऑष्ट्रिक भाषा परिवार, तिब्बत-चीनी भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार और भारोपीय भाषा परिवार।

यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि उत्तर-पूर्व भारत में बोली जाने वाली खासी भाषा हो या ओड़ीसा, बिहार, झारखंड प्रांत के छोटा नागपुर क्षेत्र में बोली जाने वाली मुंडा शाखा की भाषाएँ या फिर मध्य प्रदेश की 'कोरकू' भाषा, ये सभी भाषाएँ एक ही ऑष्ट्रिक भाषा परिवार से हैं। इसी प्रकार जम्मू-कश्मीर और हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली लाहुली, कन्नौरी भाषाएँ हों अथवा उत्तर-पूर्व की बोडो, गारो भाषाएँ, ये भाषाएँ एक ही तिब्बती-चीनी भाषा परिवार की भाषाएँ हैं, जो गहरे स्तर पर उत्तर-पूर्व भारत और शेष भारत के बीच भाषिक एकात्मता को स्थापित करती हैं। भाषिक एकात्मता स्थापित करने के क्रम में यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि असमिया भाषा तो भारोपीय भाषा परिवार की 'भारतीय आर्य उपशाखा' वर्ग की भाषा है ही, इसकी लिपि भी देवनागरी लिपि का ही एक रूप है जो बांग्ला से विकसित है। असमिया भाषा का प्राचीनतम साहित्यिक रूप हमें चर्यापदों में मिलता है। इस प्रकार भाषिक और सामाजिक इकाइयों के मूल में विद्यमान एकात्मता के कारण समूचे भारत को एक भाषिक क्षेत्र (लिंग्विस्टिक एरिया) के अंतर्गत भाषा वैज्ञानिकों ने रखा है।

उत्तर-पूर्व भारत की भूमि मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन के प्रभाव से भी अछूती नहीं रही है। हम जानते हैं कि भक्ति-आंदोलन एक अखिल भारतीय सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में भी जाना जाता है। एक ओर, उत्तर भारत में कबीर, तुलसी, सूरदास और मीरा जैसे साधकों ने भक्तिभावना का प्रसार किया। वहीं, असम की धरती पर जन्मे श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव ने अपनी नई भक्ति पद्धति से असम ही नहीं वरन् संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत में अपने नव-वैष्णव धर्म आंदोलन का प्रचार किया। "उनका दर्शन विशेष रूप से भागवत पुराण पर आधारित है। शंकरदेव ने भी अपने पदों में भागवत अनुरूप अद्वैत मत का प्रतिपादन किया है।"[15]

उत्तर-पूर्व भारत के समाज में सांस्कृतिक एकात्मता को रेखांकित करने वाले शंकरदेव ने अपनी साहित्यिक रचना के लिए 'ब्रजाबली' अथवा 'ब्रजबुलि' भाषा का प्रयोग किया है। वह वस्तुत: असमी भाषा और ब्रज भाषा के सम्मिलन से बनने वाली सम्मिश्र भाषा है। "हिंदी के सधुक्कड़ी रूप, बांग्ला की जननी, 'ब्रजबुलि' और 'अंकियानाटों' की भाषा में बड़ा साम्य है। यहाँ असमिया भाषा हिंदी के बहुत निकट है। कुछ उदाहरण देखिए-

1.सहस्त्र वयने गुण गावत भिन्न-भिन्न, वचने करत बखाना, 2.मोहन कनक वेणु उरि धरे हाते।[16]

उत्तर-पूर्व समाज का शेष भारत के साथ कैसा नाभिनाल संबंध है, इसका प्रमाण 'वृंदावनी चीर' भी है जिसका उल्लेख शंकरदेव के साहित्य में है। आज भी इसका प्रयोग सत्र-नामघरों में किया जाता है। शंकर देव ने जिस सांस्कृतिक एकता को प्रतिष्ठित किया है, उसमें बरगीत, भाओना, अंकिया नाट के साथ-साथ सत्रों और नामघरों की विशेष भूमिका रही है। भारत की सांस्कृतिक चेतना बरगीतों में प्रकट होती है। 'भाओना' और 'अंकिया नाट' भारतवर्ष की जातीय संस्कृति को बड़ी सजीवता से प्रस्तुत करते हैं। उल्लेखनीय है कि शंकरदेव ने दो बार संपूर्ण भारत की पैदल यात्रा की। उन्होंने भारत भूमि के

अधिकांश धर्मस्थलों की तीर्थयात्रा में 12 वर्ष का समय लगाया। शंकरदेव के ऐतिहासिक योगदान पर प्रकाश डालते हुए साहित्यकार प्रभाकर माचवे ने लिखा है– "उन्होंने उस समय हिंदुओं की और सीमांत की आदिवासी जाति–उपजातियों की आध्यात्मिक भावनाओं को एक सूत्र में गूँथा। यह ऐतिहासिक नवजागरण का कार्य था। उन्होंने एक श्रेष्ठ कवि के नाते उदार और व्यापक मानवतावादी दृष्टि अपनाई।"[17]

इसी क्रम में यह देखना महत्वपूर्ण है कि उत्तर–पूर्व समाज में स्थापित 'सत्र' केवल धार्मिक गतिविधियों के ही केंद्र नहीं थे, अपितु संगीत, कविता, नृत्य, नाट्य एवं चित्रकला का विकास और अभिव्यक्ति करने वाले विशेष स्थल थे। इसी प्रकार 'नामघर' केवल प्रार्थना घर ही नहीं थे अपितु यहाँ समाज के विभिन्न समुदाय के लोग एकत्र होते थे और लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा एक निष्कर्ष/निर्णय पर पहुँचते थे। इस प्रकार उत्तर–पूर्व भारत में प्रचलित 'सत्र' और 'नामघर' की संकल्पना वस्तुतः प्राचीन भारत में पाणिनि और बुद्ध के काल में फैले शाक्य, लिच्छवी, क्षुद्रक और मालव आदि गणराज्यों की प्राचीन परंपरा और विरासत का ही अधुनातन विस्तार है।

भक्ति–आंदोलन और नवजागरण जैसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं के प्रभाव से उत्तर–पूर्व की धरती अछूती नहीं रही। अंग्रेजी सत्ता और साम्राज्यवाद के विरुद्ध भी वहाँ के निवासियों की भूमिका उल्लेखनीय रही है। यह दुखद तथ्य है कि उन महानायकों का उल्लेख भारतीय इतिहास में न के बराबर है। परंतु पूर्वोत्तर का पूरा लोक साहित्य उन महानायकों की शौर्य गाथाओं से भरा पड़ा है। तिरोत सिंह, नंगबाह, पा तागेम संगमा, कुशल कुंवर, टिकेंद्रजीत सिंह, रानी गाइदिन्ल्यू और रानी रुप्लियानी जैसे वीरों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अंग्रेजी हुकूमत से लोहा लिया। इस संदर्भ का हवाला देते हुए रमणिका गुप्ता ने लिखा है– "अंग्रेजों से सबसे पहला युद्ध 1774 में शुरू हुआ जब मेजर हैनिकर ने जयंतिया पर हमला किया। 1826 तक ऐसे ही चलता रहा। जब 1824 में बर्मा ने कछार पर आक्रमण किया तब अंग्रेजों को जयंतिया राज्य का महत्व समझ में आया। अंग्रेजों ने बर्मा की सेना के विरुद्ध राजा से अपनी सेना की टुकड़ी भेजने की माँग की, पर वहाँ के राजा ऐसा कोई भी समझौता नहीं करना चाहते थे जिससे उनकी स्वतंत्रता को आघात पहुँचे। उन्होंने अंग्रेजों की मदद के लिए अपनी सेना नहीं भेजी।"[18] "मिजोरम की रानी रुप्लियानी ने भी अंग्रेजों को अपने क्षेत्र में न घुसने देने की कसम खाई। अंग्रेजों द्वारा मिजो जनों को जबरन बेगारी कराने ले जाना उन्हें स्वीकार न था। रानी ने इसका सख्त प्रतिकार किया जिसके फलस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन इसके साथ ही चारों ओर से अंग्रेजों की शासन प्रणाली व ईसाइयत के कठमुल्लेपन को चुनौतियाँ मिलने लगीं।"[19] प्रतिरोध के ऐसे अनेक उदाहरणों से उत्तर–पूर्व भारत का इतिहास जगमगाता है। इन वीरों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समाप्त करने में अपनी जान की बाजी लगा दी। उत्तर–पूर्व की संस्कृति और वहाँ के निवासियों के सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि कला, वास्तुकला, संप्रदायों के विकास की दृष्टि से भी उत्तर–पूर्व भारत और शेष भारतीय राज्यों के बीच एकता और अनवरत आदान–प्रदान के संबधसूत्र प्रकट होते हैं। विभिन्न कलारूपों, धार्मिक विषयों, सामाजिक संबंधों (वैवाहिक संबंध आदि) और व्यापारिक वस्तुओं का पारस्परिक आदान–प्रदान भारत के अन्य राज्यों और उत्तर–पूर्व के राज्यों में निरंतर हुआ। असम और त्रिपुरा के मंदिर भारतीय धार्मिक कला का परिचायक कहे जा सकते हैं। भारत की सांस्कृतिक एकता, अखंडता, सार्वभौमिकता और निरंतरता के संदर्भ में पंडित नेहरू के इस कथन से सहमत हुआ जा सकता है। "मैंने तुम्हें बताया है कि सारे इतिहास में संस्कृति के लिहाज से भारत एक रहा है– राजनीतिक लिहाज से चाहे इस देश में कितनी ही आपस में लड़ने वाली रियासतें क्यों न रही हों। जब कोई भी महापुरुष पैदा हुआ या बड़ा आंदोलन उठा, वह राजनीतिक सीमाओं को लांघकर सारे देश में फैल गया।"

निष्कर्ष यह है कि उत्तर–पूर्व समाज का शेष भारत के साथ यह अटूट जुड़ाव न केवल भाषिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्तर पर दिखलाई पड़ता है, अपितु जनजीवन के दैनंदिन क्रिया–व्यापार में भी अभिव्यंजित होता है। अब तक उत्तर–पूर्व भारत की संस्कृति और सभ्यता को अलगाववाद की दृष्टि से देखा

गया है। समस्या यह है कि भारतीय इतिहासकारों का अध्ययन औपनिवेशिक दृष्टि के पुरोधा बैरियर एल्विन जैसे लोगों से प्रभावित रहा है। इसके फलस्वरूप वर्षों से उत्तर-पूर्व का समाज नस्लीय हिंसा, उग्रवाद, हिंदूकरण की आरोपित सिद्धांतों जैसी राजनीतिक समस्याओं को झेलने के लिए अभिशप्त रहा है। इस ऐतिहासिक सम्मिलन और आत्मसातीकरण में सबसे बड़ी बाधा औपनिवेशिक नीतियों द्वारा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए पोषित 'पृथक्कीकरण की संकल्पना' रही है। जबकि सच्चाई यह है कि उत्तर-पूर्व के समाज की सांस्कृतिक पहचान भारतवर्ष की सांस्कृतिक अस्मिता का ही उज्ज्वल पक्ष है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. माता प्रसाद, पूर्वोत्तर भारत के राज्य, पृ. सं-4, नेशनल पब्लिशिंग हाउस

2. नामवर सिंह, जमाने से दो दो हाथ, पृ. सं-131, राजकमल प्रकाशन

3. भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति के स्रोत, प्रस्तावना, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस

4. विष्णु-पुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर

5. निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, पृ. सं-122, वाग्देवी प्रकाशन

6. बापचंद्र महंत, असम के बरगीत, पृ. स.-4, नेशनल बुक ट्रस्ट

7. प्रांजल धर, पराया नहीं पूर्वोत्तर, जनसत्ता, 19 नवंबर, 2006

8. मनुस्मृति, श्लोक 2/17, भाष्यकार- डॉ. सुरेंद्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली

9. मनुस्मृति, श्लोक 2/18, भाष्यकार- डॉ. सुरेंद्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली

10. देवदत्त पटनायक, भारत में देवी- अनंत नारीत्व के पाँच स्वरूप, पृ. सं.-145, राजपाल प्रकाशन

11. निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, पृ. सं. -68, वाग्देवी प्रकाशन

12. बापचंद्र महंत, असम के बरगीत, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत

13. प्रांजल धर, पराया नहीं पूर्वोत्तर, जनसत्ता, 19 नवंबर, 2006

14. निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, पृ. सं. - 90, वाग्देवी प्रकाशन

15. बापचंद्र महंत, असम के बरगीत, पृ. सं.-23, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत

16. बापचंद्र महंत, असम के बरगीत, पृ. सं. -22, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत

17. बापचंद्र महंत, असम के बरगीत, दो शब्द, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत

18. रमणिका गुप्ता (संपादक), पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन स्वर, पृ. सं.-8

19. रमणिका गुप्ता (संपादक), पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन स्वर, पृ. सं.-9

– मकान नं. 358, प्रथम तल, सेक्टर-डी, सैनिक कॉलोनी, जम्मू, जम्मू और कश्मीर-180011

❑❑❑

फकरा-योजना में असमिया समाज-जीवन : एक अवलोकन

उदिप्त तालुकदार

सशक्त भाषिक अभिव्यक्ति द्वारा जैसे-जैसे मनुष्यों ने अपने विचारों को अभिव्यक्त किया वैसे-वैसे साहित्य-रचना की परंपरा का भी विकास हुआ। साहित्य का नाम लेते ही इसके दो प्रमुख भेद हमारे सामने आते हैं- वाचिक और लिखित। वाचिक साहित्य के अंतर्गत ही लोक-साहित्य को रखा जा सकता है। लोक-साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना जनमानस में होती है। यह साहित्य जनजीवन के भावों एवं विचारों की स्वच्छंद अभिव्यक्ति है। इसलिए इसमें जनजीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक समय, प्रत्येक वर्ग और प्रकृति सभी कुछ समाहित हैं। अतः कहा जा सकता है कि किसी एक भौगोलिक परिवेश में एक जैसी सांस्कृतिक विशेषताओं से युक्त जनमानस द्वारा कृत और मौखिक परंपरा में प्रचलित साहित्य ही लोक-साहित्य की संज्ञा प्राप्त करता है। पूरे भारतवर्ष में अलग-अलग भाषाओं में व्यापक लोक-साहित्य का भंडार है। असम एवं असमिया भाषा में भी लोक-साहित्य की एक समृद्ध परंपरा रही है। किसी भी भाषा विशेष के लोकसाहित्य को मुख्यतः पाँच भागों में बाँटकर देखा जा सकता है- (क) लोक-गीत (ख) लोक-गाथा (ग) लोक-कथा (घ) लोक-नाट्य (ङ) लोक-सुभाषित। आगे इन भागों में लोक-सुभाषित के अंतर्गत आने वाले असमिया फकरा- योजना में प्रतिफलित असमिया समाज-जीवन पर एक सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

यहाँ और एक बात उल्लेखनीय है कि हिंदी भाषा के 'य' वर्ण के लिए असमिया भाषा में दो वर्ण प्रयोग में हैं- एक का उच्चारण 'य' जैसा होता है। असमिया 'य' के लिए हिंदी में भी 'य' रखा गया है, पर असमिया के 'य' वाले उच्चारण के लिए लिप्यंतरण में 'य' का प्रयोग किया गया है।

विश्व साहित्य के इतिहास को अगर ध्यान से देखा जाए तो यह स्पष्ट नज़र आता है कि दुनिया की प्रत्येक जाति के साहित्य ने पद्य के जरिए आत्माभिव्यक्ति की है। लोक-साहित्य के भी अनेक पद्यात्मक रूप सामने आते हैं। लोक-साहित्य के उपरोक्त वर्गीकरण के अंतर्गत लोक-गीत और लोक-सुभाषित में खासतौर पर पद्यात्मक लय देखने को मिलता है। ऊपर लोक-साहित्य का वर्गीकरण कर फकरा-योजना को लोक-सुभाषित के अंतर्गत आने वाली विधा माना गया है। लोक-साहित्य की सर्जना लोक-मानस में होने के कारण फकरा-योजना का असमिया जातीय-जीवन के साथ एक निगूढ़ संबंध है। अतः इन लोक-सुभाषितों में राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति, कृषि, शिल्प, गार्हस्थ्य, रहन-सहन आदि के संबंध में कई सारगर्भित उपदेश उपलब्ध होते हैं।

फकरा-योजना शब्द 'फकरा' और 'योजना' दो शब्दों को मिलाकर बना है। जिन असमिया लोक-सुभाषितों में व्यंजनाशक्ति के सहारे किसी धार्मिक उपदेशप्रधान विषयवस्तु को अभिव्यक्ति दी जाती है, उन्हें फकरा कहा जाता है। फकरा में दो अर्थ निहित होते हैं। एक उसका साधारण अर्थ और दूसरा धर्म संबंधी अर्थ। दूसरे अर्थ की व्याख्या धार्मिक एवं नैतिक प्रसंगों में भक्त समाज में होती है। वहीं योजना में एक बात को समझाने

के लिए किसी दूसरे विषय का उदाहरण दिया जाता है। योजना का कोशगत अर्थ है संयोजन करना।

मनुष्य को वास्तविक जीवन के प्रत्येक पल में संघर्ष और समन्वय का सामना करना पड़ता है। फकरा-योजना के माध्यम से कभी इन्हें सरल काव्यात्मक रूप में तो कभी व्यंग्य के सहारे कलात्मक अभिव्यक्ति दी जाती है। फलस्वरूप फकरा-योजना में एक व्यापक वर्ण्य-विषय का फलक निर्मित होता है। लोक-साहित्य क्योंकि मौखिक स्तर पर जन-जन में विद्यमान रहता है तथा अनुभवों की पृष्ठभूमि पर निर्मित होता है, अत: इसमें प्रतिफलित होने वाला समाज-जीवन वास्तविकता से काफी निकट होता है तथा समाज में होने वाले परिवर्तनों की एक स्वच्छ झाँकी प्रस्तुत करता है। असमिया लोक-साहित्य में फकरा-योजना एक ऐसा वाचिक साहित्यिक रूप है, जिसमें असमिया समाज-जीवन की यथार्थता को काफी निकटता से उकेरा गया है। जब हम समाज-जीवन की बात करते हैं, तब इसमें समाज विशेष के लोगों के पारिवारिक संबंध, गार्हस्थ्य जीवन, आर्थिक स्थिति, लोक-विश्वास, आचार-विचार आदि तत्व समाहित होते हैं। आगे इनके आधार पर एक सम्यक अवलोकन किया जाएगा।

समाज की प्राथमिक इकाई है परिवार। समाज में जन्म एवं विवाह के माध्यम से विभिन्न पारिवारिक संबंधों का निर्माण होता है। फकरा-योजना में माता-पिता, भाई-बहन, बेटा-बेटी, सास-बहू से लकर सौतन जैसे असमिया समाज के विविध पारिवारिक संबंधों के चित्रों को खींचा गया है। इन संबंधों के चित्रों को खींचते हुए समाज में संबंधों की अहमियत को भी दर्शाया गया है। जैसे निम्नलिखित फकरा-योजना में पिता, माता, पत्नी और भाई के महत्व को दर्शाया गया है-

पितृ अबिहने संसारर परे भार

मातृर अबिहने भोजनर छारखार

भार्या अबिहने कुचित निदिये ठाई

भातृ अबिहने शत्रुवे लाइ पाय।

(फुकन 2016 : 24)

अर्थात् पिता के बिना घर-परिवार का दायित्व बच्चों पर आ जाता है, तो माता के बिना भोजन की प्रक्रिया विनष्ट हो जाती है। वहीं पत्नी के बिना समाज में पति को सम्मान नहीं मिलता और भाई के बिना शत्रुओं को मौका मिलता है।

प्रत्येक समाज-व्यवस्था में नारी की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चाहे वह नारी समाज में माँ, पत्नी, बेटी या अन्य किसी भी रूप में हो। असमिया समाज-जीवन में इन सभी रूपों में नारी के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

घैणियेइ घर

घैणि नहले घरेइ अथर।

(फुकन 2016:31)

अर्थात् इस फकरा-योजना में पत्नी को ही घर कहा गया है क्योंकि एक घर को चलाने की जिम्मेदारी पत्नी पर ही होती है। पत्नी के बिना घर की हालत अस्थिर बन जाती है।

हालाँकि फकरा-योजना के माध्यम से असमिया जनसमाज के भिन्न पारिवारिक संबंधों के चित्रों को खींचा गया है परंतु इसमें मातृ को सभी रिश्तों में सर्वोपरि रूप में प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति विशेष की ज़िंदगी में चाहे कितने ही लोग क्यों न हो मगर माँ का स्थान सर्वोपरि होता है। माँ के इसी महत्व को दिखाते हुए लिखा गया है-

सांदह हओक चिरा हओक

नहय डाङर समान

माही हओक पेही हओक

नहय आइर समान। (फुकन 2016:39)

अर्थात् हमारी ज़िंदगी में बुआ, मौसी कितनी ही नारियाँ क्यों न हो मगर माँ का स्थान कोई नहीं ले सकता। माँ के समान प्यार कोई और नहीं दे सकता।

फकरा-योजना के असमिया गार्हस्थ्य जीवन की एक सुंदर झाँकी प्रस्तुत हुई है। इससे तत्कालीन असमिया समाज के गृह-परिकल्पना, खान-पान रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का सामान्य आभास होता है। फकरा-योजना के माध्यम से गृह निर्माण संबंधी उपदेश दिए गए हैं। असमिया लोगों द्वारा गृह निर्माण में जरूरतों को प्रधानता देते हुए निर्माण की बात कही गई

है। शायद इसलिए घर के आकार को छोटा करने के लिए कहा गया है और जरूरतों के हिसाब से नए घर बनाने की बात फकरा-योजना में आई है-

सर सरुकै साजिबा घर

यिमान लागे सिमान कर। (फुकन 2016:49)

इसके अलावा असमिया समाज-जीवन में घर के आस-पास ही ज्यादातर जरूरतों को पूरा करने के लिए साधनों को रखने की बात कही गई है। इसका प्रतिफलन फकरा-योजना में इस प्रकार होता है-

उत्तरे चरु, दक्षिणे गरु।

पूबे भँराल । पश्चिमें गँड़ाल।।

(फुकन 2016 : 48)

अर्थात् घर की उत्तर दिशा में रसोईघर, दक्षिण दिशा में गोशाला, पूर्व दिशा में भंडार और पश्चिम दिशा में पालतू पंछियों का घोंसला होना चाहिए। इस प्रकार का और एक उदाहरण है-

आगफाले पुखुरी, पिछफाले बाँहबारी

उत्तरे पान-तामोल, दक्षिणत मुकलि।

(फुकन 2016:47)

अर्थात् घर के सामने तालाब हो ताकि वहाँ से पानी की जरूरत पूरी हो सके। वहीं असमिया समाज में गृह-निर्माण हेतु बाँस की एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है और इस भूमिका को ध्यान में रखते हुए घर के पीछे बाँस के पेड़ रहने की बात कही गई है। इसके उपरांत असमिया समाज के घरों में अतिथि आने पर सबसे पहले पान-तामोल देने की परंपरा है। अत: इस जरूरत को पूरा करने के लिए उत्तर दिशा में पान-तामोल के पेड़ रहने की बात कही गई है। वहीं घर में हवा के बेहतर आवागमन के लिए दक्षिण को खुला रखने का उपदेश है।

गृह निर्माण के अतिरिक्त एक सामान्य असमिया घर सुबह से शाम तक किन रीति-रिवाजों से परिचालित होता है, कौन-कौन से संस्कारमूलक एवं धर्मीय अनुष्ठानों का आयोजन घर में होता है, उन सभी का वर्णन फकरा-योजना में उपलब्ध है। इसके अलावा असमिया समाज-जीवन में प्रचलित खाद्य-रीतियों का आभास भी हमें कई फकरा-योजना के माध्यम से मिल जाता है। जैसे असमिया खाद्याभास में चावल की महत्वपूर्ण भूमिका है। चावल से बनी कई तरह के पकवानों का प्रयोग बिहु आदि विभिन्न उत्सवों में तथा रोजाना होता है। इसलिए चावल से संबंधित फकरा-योजना की बहुतायत है-

आगते चाउलर कथा।

पाछतहे हरिर कथा।। (कलिता 2003:5)

भारत भात, दिन टोलै थाके मात। (कलिता 2003:6)

चारि बेद चौद्‌ध शास्त्र

भात नहले एदिन मात्र। (कलिता 2003:10)

इसके अतिरिक्त असमिया समाज-जीवन में पुरुष एवं नारी द्‌वारा प्रयोग किए जाने वाली वेश-भूषा का आभास भी फकरा-योजना के माध्यम से हो जाता है।

असम की भौगोलिक अवस्थिति एवं जलवायु कृषि-कार्य के अनुकूल होने के परिणामस्वरूप यहाँ आजीविका का मूलाधार कृषि में धान का उत्पादन इस क्षेत्र में सर्वाधिक होता है। फलस्वरूप असमिया समाज-जीवन में खाद्यान्न के रूप में ही नहीं अपितु अलग-अलग क्षेत्र में भी धान की अहमियत है। समय पर इस क्षेत्र में धान को मान-सम्मान का प्रतीक माना जाता है। इसका उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

धान नाइ यार, मान नाइ तार।(कलिता 2003:1)

धानेइ धन धान नहले निष्फल जीवन। (कलिता 2003:5)

कृषि केंद्रित असमिया समाज में मौसम को ध्यान में रखकर किसान खेतों में उतरते हैं तथा अलग-अलग मौसम में अलग-अलग प्रकार की फसलों की खेती करते हैं। इसलिए फकरा-योजना में अनेक मौसम तथा कृषि से जुड़े विभिन्न उपदेश दिखाई पड़ते हैं, जो इस क्षेत्र के कृषि संबंधी प्राचीन मान्यताओं की एक झाँकी प्रस्तुत करता है-

आहिन काति राखिबा पानी

रजाई जेनेकोई राखे रानी (कविता 2003:99)

भाषा ISSN 0523-1418

अर्थात् जिस प्रकार राजा अपनी रानी को बहुत ही प्यार से रखता है उसी प्रकार आश्विन और कार्तिक महीने में खेतों में पानी रखना चाहिए।

असमिया समाज-जीवन में तामोल-पान का सिर्फ एक खाद्य के तौर पर ही नहीं अपितु सम्मान सूचक अर्थ में भी महत्व है। असमिया घरों में अतिथियों के आने पर सबसे पहले उनके सम्मुख एक पात्र में तामोल-पान रखने की परंपरा है।

तामोल-पाणार मान, देवदत्त जान।

(कलिता 2003:35)

फकरा-योजना में समाज के विविध पहलुओं को उठाया गया है। परंतु आर्थिक दृष्टिकोण से असमिया लोकसमाज की जो छवि फकरा-योजना में प्रतिफलित हुई है वह अत्यंत मार्मिक है। बिहु असमिया लोगों का जातीय उत्सव है। साधारण लोगों की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि इस त्योहार को मनाने के लिए भी दूसरे से पैसे उधार लेने पड़ते थे। इस स्थिति का उदाहरण है-

धार करा धनेरे चतर बिहु खाँओ

धरुबाइ निये यदि आगे आगे याँओ

(फुकन 2016:83)

खराब आर्थिक स्थिति को दर्शाने के लिए इस तरह का वर्णन भी फकरा-योजना में आया है कि पति और पत्नी कपड़े के अभाव में एक ही कपड़ा पहनते हैं-

एको डोकर कानि, जेठतो हाल बाय,

मइ आनो पानी। (फुकन 2016:86)

अर्थात् एक ही कपड़े को हल जोतने के समय पति भी पहनता है और पानी लाने के दौरान पत्नी भी पहनती है।

इस प्रकार फकरा-योजना के माध्यम से तत्कालीन आर्थिक स्थिति का एक मार्मिक चित्र हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है। आर्थिक स्थिति के साथ-साथ सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति की झाँकी इन लोक-सुभाषितों में देखने को मिलती है। असमिया समाज-व्यवस्था में वैयक्तित्व वैविध्य के बावजूद भी सामूहिकता की खासियत विद्यमान है। इस खासियत को फकरा-योजना में इस प्रकार दर्शाया गया है-

राइजे जय बुलिलेइ जय

क्षय बुलिलेइ क्षय। (फुकन 2016:95)

अर्थात् जनता या समूह के पास किसी वस्तु और संहार की क्षमता होती है। इस प्रकार का और एक उदाहरण है-

राइजे नख जोकारिले नै बय। (फुकन 2016:96)

अर्थात् लोग अगर मिलकर काम करें तो असंभव को भी संभव कर सकते हैं। समूह को महत्ता देने वाले असमिया लोगों की यह विशेषता आज भी असमिया समाज में विद्यमान है।

फकरा-योजना में विविध राजनैतिक परिदृश्यों को भी उठाया गया है। किसी भी शासन-व्यवस्था में जनता की भूमिका अहम् होती है। राजनैतिक व्यवस्था में जनता के बिना राजा अर्थात् शासक वर्ग का कोई अस्तित्व नहीं। यथा-

राइजेइ रजा, राइजेइ प्रजा

राइज नहले किहरनो रजा। (कलिता 2003:137)

अर्थात् जनता ही राजा है और जनता ही प्रजा है। जनता के बिना राजा का कोई अस्तित्व नहीं। इसके अलावा शासन-व्यवस्था में राजा की ताकत को दर्शाते हुए फकरा-योजना में कहा गया है-

रजाइ भाल बोले याक

हाती घोराओ नालागे ताक। (कलिता 2003:143)

लोक-विश्वासों का लोक-जीवन में काफी महत्व है, क्योंकि इन्हीं के आधार पर समाज में परंपराओं का निर्माण होता है। असमिया फकरा-योजना में असमिया लोक-जीवन में प्रचलित लोक-विश्वासों की एक सुंदर छवि प्रस्फुटित हुई है। इनमें कृषि, मौसम, रोजाना के काम-काज, स्वभाव तथा धर्म संबंधी लोक-विश्वासों की प्रधानता है।

कृषि प्रधान प्रदेश होने के फलस्वरूप इस क्षेत्र में अनेक कृषि संबंधी लोक-विश्वासों का प्रचलन हैं। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

यदि बरषे आघोणे

रजा याय मागने

यदि बरषे माघर शेष

धन्य रजार पुण्य देश। (फुकन 2016:61)

अर्थात् जिस साल माघ महीने के अंत में बरसात होती है उस साल अनाज होता है। लेकिन अगहन महीने में खेतों में धान पक जाता है। अत: इस समय बरसात होने पर नुकसान होता है।

कृषि से जुड़े लोक-विश्वासों के अतिरिक्त प्राकृतिक वातावरण, मानव-स्वभाव, पशु-पक्षी के लक्षण, धर्म संबंधी, खाद्य संबंधी आदि असमिया लोकमानस में प्रचलित कई तरह के लोक-विश्वासों की झाँकी फकरा-योजना में देखने को मिलती है। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

सापे खाय लेखि

बाघे खाय देखि। (फुकन 2016:104)

अर्थात् साँप और बाघ के लक्षण संबंधी लोक-विश्वासों के रूप में कहा गया है कि बाघ अगर किसी अन्य प्राणी को देख लेता है तो सीधे उस पर हमला करता है। लेकिन साँप देखने मात्र से हमला नहीं करता, अपितु उसे खतरा महसूस होने पर आत्मरक्षा हेतु हमला करता है। इस प्रकार मौसम संबंधी एक लोक-विश्वास का उदाहरण इस प्रकार है-

पुबे धेनु धान पश्चिमे धेनु बान।

(फुकन 2016:108)

अर्थात् इंद्रधनुष का निकलना एक प्राकृतिक घटना है। असमिया जनमानस में यह विश्वास है कि अगर इंद्रधनुष पूर्व दिशा में निकलता है तो वह समय कृषि के अनुकूल होगा। वही इंद्रधनुष अगर पश्चिम दिशा में निकलता है तो उस साल बाढ़ की संभावना रहती है। इस प्रकार विभिन्न लोक-विश्वासों की झाँकी इन लोक-सुभाषितों में प्रस्तुत होती है।

तिरोतार कपाले धन,

पुरुषर कपाले जन। (फुकन 2016:121)

अर्थात् असमिया समाज में मान्यता है कि वैवाहिक जीवन में पुरुष के कारण बच्चे और नारी के भाग्य के फलस्वरूप धन-संपदा की प्राप्ति होती है। इसके अलावा ईश्वर संबंधी लोक-विश्वास का एक उदाहरण इस प्रकार है-

हरिये नाराखिले कि जरीये राखिब।

(फुकन 2016:122)

असमिया समाज-जीवन में धर्मीय विश्वासों के अनुसार भगवान को परम शक्तिशाली माना गया है। इसलिए इसमें कहा गया है कि केवल भगवान ही हमें मुश्किलों से बाहर निकाल सकता है। इस प्रकार जीवन से जुड़ी छोटी-बड़ी हर बात को अति सूक्ष्म रूप में फकरा-योजना के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। परिवर्तन ही सृष्टि के कण-कण को प्रवाहमान एवं विकासमान बनाए रखता है। समय के साथ होने वाले परिवर्तन की झाँकी समाज में देखने को मिलती है। प्रत्येक क्षण पुराने मूल्यों के विघटन एवं नवीन मूल्यों के सृजन का साक्षी है। इसलिए एक ही समाज-व्यवस्था में दो भिन्न कालावधि के व्यक्ति में अनुभवों की भिन्नता आती है। ऐसे में अनुभवाश्रित फकरा-योजना जैसे लोक-साहित्य के वर्ण्य-विषयों की प्रासंगिकता अवश्य बदलती रहती है। जिन अनुभवों को आधार बनाकर फकरा-योजना में असमिया समाज-जीवन का चित्र खींचा गया था, वे अनुभव वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हासिल कर पाना मुश्किल है। अत: फकरा-योजना में चित्रित समाज के साथ आज के असमिया समाज का पूर्ण तादात्म्य संभव नहीं है। ऐसा होते हुए भी फकरा-योजना के माध्यम से विभिन्न संदर्भों में जो उपदेश दिए गए हैं तथा व्यंग्यार्थ के सहारे समाज की कुरीतियों की जिस प्रकार आलोचना की गई हैं, वे बेहतर समाज के निर्माण में सहायक हैं। इसके उपरांत समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भाषाविज्ञान आदि अन्य विषयों के सहयोग से फकरा-योजना का व्यापक अध्ययन करने पर असमिया जाति के समाज-जीवन, भाषा, संस्कृति के संबंध के कई नवीन तथ्यों के उद्घाटन की संभावना बनती है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि फकरा-योजना में ऐसे सामाजिक तत्व विद्यमान हैं, जिससे इसकी काल-निरपेक्ष प्रासंगिकता स्पष्ट हो जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कलिता, फुलकुमारी, लोक साहित्यर रह-घरा फकरा योजना, डिगाबाई: निप कुमार डेका, 2003

2. दास, दिलीप कुमार, लोक संस्कृतिर सफुँरा, गुवाहाटी : लयार्स बुक स्टॉल, 2005

3. फुकन, चित्रलेखा, फकरा-योजना आरु असमिया समाज, योरहाट: असम साहित्य सभा, 2016

4. वरुवा, बिरिंचि कुमार, असमिया लोकसंस्कृति,, गुवाहाटी: बीणा लाइब्रेरी, 2011

– के द्वारा गुनवीराम दास, मकान नं.-14, सुंदरबारी, महालक्ष्मी अपार्टमेंट के सामने

ए.इ.सी. रोड, जलुकबारी, जिला-कामरूप, असम-781014

❑❑❑

'मुक्तिपर्व' का मर्म

डॉ. रश्मि मालगी

'मुक्तिपर्व' उपन्यास की कथावस्तु भारत देश के स्वतंत्र होने के बाद सदियों से शोषित दलितों में आने वाले परिवर्तन को लेखक ने इस रचना के द्वारा प्रस्तुत किया है। जब स्वतंत्रता की लड़ाई जारी थी, देश की स्वतंत्रता की लड़ाई में यहाँ वहाँ दलित भी भाग ले रहे थे, लेकिन वे इस आंदोलन की मुख्य धारा में नहीं थे। ये लोग गाँव से बाहर रहते थे, इन्हें कुछ पता नहीं था कि लड़ाई आखिर हम किसलिए लड़ रहे हैं? क्योंकि दलितों को अधिकार या सत्ता-नामक चीज़ की जानकारी ही नहीं थी। देश पर ही अंग्रेज राज करते थे तो दलितों का भी इनकी चपेट में आ जाना स्वाभाविक था, लेकिन इस उपन्यास में लेखक यह बताते हैं कि इस लड़ाई में दलित एक प्रकार से द्वंद्वता में खो गए हैं। लड़ाई में दलित को पता नहीं अब क्या किया जाए? दलित के पास कोई संगठन नहीं था। दलित हज़ारों वर्षो से सवर्णों और जमींदार जैसे लोगों के आधीन थे और जमींदार और सवर्ण अंग्रेजों के आधीन। अर्थात् दलित एक प्रकार से दोहरे गुलाम थे। उपन्यास में लेखक यह प्रश्न उठाते हैं कि "यूँ असमंजस में शहर के दलित भी थे। उन्हें विरासत में ही दोहरी गुलामी मिली थी। वे किंकर्तव्यविमूढ़ थे। आखिर उनके दुश्मन कौन थे? वे किसे मार गिराएँ? जिससे दलितों को भी गुलामी से छुटकारा मिल जाए। देश के मालिक अंग्रेज थे, लेकिन उनके मालिक जमीनदार, नवाब और काश्तकार थे।[2]" गुलामी करना उनके खेतों में काम करना, गंदगी उठाना, मरे जानवरों को खाना या उसकी खाल निकालकर अपनी रोजी-रोटी चलाना दलितों का काम था। गुलामी के बारे में उपन्यास का नायक कहता है- "उनके खेतों और हवेली पर दस-दस, बारह-बारह घंटे कमर तोड़कर काम करना पड़ता था, तब जाकर उन दलित परिवारों को रोटी नसीब होती थी। मालिकों के हाथ या लात चलते थे। पीढ़ी-दर-पीढ़ी दलितों ने जुल्म सहा था।[3]" इन गुलामों को मारना, पीटना, जमींदार के बच्चों के लिए कभी भी दलितों की माँ-बेटियों की इज्जत लूटना या उनपर बलात्कार कर देना आम बात थी।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है सुनित। सुनित आधुनिक पीढ़ी का नवयुवक है, वह पढ़ना चाहता है लेकिन दलितों को पढ़ने पर प्रतिबंध है। सुनित सोचता है कि शिक्षा पाकर कुछ बने, लेकिन पाठशाला का शिक्षक पांडे जाति से ब्राह्मण है। वह दलित छात्रों को पढ़ाना नहीं चाहता। दलित छात्रों की उपेक्षा करता है। लेकिन सुनित पढ़ना चाहता है। सुनित मन लगाकर घर से बाहर रास्ते पर जाकर बिजली के खंबे के प्रकाश में पढ़-लिखकर शिक्षक बनकर पांडे के सामने जाता है। डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर को भी इस समस्या का सामना करना पड़ा था, बालक भीमा पाठशाला में सवर्ण छात्र जहाँ पर अपने चप्पल जूते छोड़ा करते थे, महात्मा अंबेडकर को वहाँ पर बैठकर पाठ सुनना पड़ता था। बाबा साहेब को यह भली-भाँति मालूम था, कि शिक्षा ही हर समस्या का समाधान कर सकती है। जब सुनित अपनी निष्ठा के साथ शिक्षा पाता है, शिक्षित सुनित सभी के साथ समता लाना चाहता है, लेकिन गाँव के गैर-दलितों को यह ठीक नहीं लगता है।

भाषा ISSN 0523-1418

लेखक ने उपन्यास में दलित कहलाने वाले हरिजन पर होने वाले अत्याचारों को खूब बारीकी के साथ चित्रित किया है। धर्म का अर्थ होता है हर जीव का कल्याण करना। सभी को समान रूप से देखना। कोई धर्म ग्रंथ यह नहीं कहता है कि किसी को उपेक्षित करो, किसी का बुरा करो, लेकिन हिंदू धर्म ने वह काम किया है। हजारों सालों से दलितों की जिंदगी के साथ खिलवाड़ किया है। भारत देश का इतिहास गवाह है कि वर्ण व्यवस्था ने हिंदू धर्म को जातियों में बाँटकर, कई अनेक ऐसी जातियों को उनके अधिकारों से वंचित रखा है। दलित लेखक जय प्रकाश 'छप्पर' में कहते हैं- "धर्म ग्रंथ ही हमारे अत्याचार और शोषण की जड़ें हैं। इन जड़ों को उखाड़ फेंकने की जरूरत है। इसके लिए जरूरी है की लोग अधिक से अधिक पढ़े ताकि इन धर्म ग्रंथों में निहित अन्याय और असमानता के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए स्वयं को तैयार करें।[4]" उपन्यास में दलित छात्र सुनित और हबिबुला पाठशाला से मंदिर देखने जाते हैं तो मंदिर का पुजारी इन छात्रों को डाँटता है। कहता है- "एक माँस काटने वाला और दूसरा माँस खिंचने वाला है। हे भगवान! सत्यानाश हो तुम्हारा। हमारा तो मंदिर ही भ्रष्ट हो गया।" उपन्यास में दलितों पर मंदिर में होने वाले शोषण का चित्रण किया गया है। बच्चे कोई धर्म, या जाति के न होकर, वे भगवान के रूप होते हैं, लेकिन गैर-दलित बच्चों को भी मारते-पीटते हैं। हिंदू धर्म में व्याप्त असमानता इस उपन्यास में दिखाई पड़ती है।

उपन्यास में लेखक ने तीन पीढ़ी की कथा को दर्शाया है- उपन्यास का नायक बंसी, बंसी का पिता और उसका पुत्र सुनित। बंसी दलित है और परंपरा से जो दलित काम करते आए हैं उसी प्रकार बंसी जमींदार नवाब साहब की गुलामी करता है। बंसी रावसाहब की गुलामी बहुत सालों से करता है उसका पिता भी उसी काम को करता था। एक दिन नवाब साहब की हवेली पर एक घटना होती है नवाब साहब को जब उल्टी आती है और बंसी से उल्टी करने के लिए बर्तन (कटोरा) मँगवाता है। बंसी को ढूँढ़ने पर भी वह कटोरा नहीं मिलता। तब नवाब साहब उसपर उल्टी कर देते हैं और बंसी मजबूर होकर उस अत्याचार को चुपचाप सहता है। आखिर बंसी ठहरा गुलाम। गुलाम दलित अपने मालिकों की किसी भी बात को टाल नहीं सकते। बंसी सोचता है कि अगर मैं नवाब के खिलाफ आवाज उठाऊँ तो मेरा चूल्हा आज नहीं जलेगा, आखिर बहुत क्रोधित होता है बंसी।

बीता समय दलितों के लिए बहुत ही खराब वक्त था। उन्हें किसी प्रकार की आजादी नहीं थी। इन समस्याओं से अंबेडकर जी भली-भाँति परिचित थे, इससे दलित समाज को मुक्त करवाने के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व त्यागकर दलितों को न्याय दिलाने के लिए आजीवन काम किया। इस मनुवादी विचारधारा की निंदा करते हुए हिंदू धर्म व्यवस्था पर प्रहार करते हुए बाबा साहेब अंबेडकर कहते हैं कि- "जो धर्म एक को ज्ञानी बनाकर, दूसरे को अज्ञानी रखे, वह धर्म नहीं बल्कि लोगों को बौद्धिक गुलाम बनाकर रखने वाला मंदिर रूपी जेलखाना है, जो धर्म एक हाथ में शास्त्र देता है और दूसरों के हाथ निःशास्त्र रहने का आदेश देता हैं। वह धर्म न रहकर परतंत्रता की बेड़ी है। जो धर्म कुछ लोगों को धनोपार्जन की खुली छूट देता है वही धर्म कुछ स्वार्थियों का धर्म हैं।[5]" इस प्रकार कोई धर्म एक समाज को शोषित करता है वह हिंदू धर्म दलितों के लिए गुलामी का धर्म हैं। बंसी के मन में इस प्रकार के परिवर्तन से देश की आजादी की लड़ाई से तंग आकर, बंसी पर क्रोधित होता जाता है नवाब और कहता है- "तुम गुलाम थे, गुलाम हो और गुलाम रहोगे।[6]" नवाब की इन बातों से बंसी का स्वाभिमान जागता है। बंसी के मन में अब बदलाव की भावना जाग उठी है, वह अब गुलामी को ठोकरें मारना चाहता है, मालिक नवाब को मुँह-तोड़ जवाब देता है "जनाब, सुनो! न हम गुलाम थे, न गुलाम हैं, न गुलाम रहेंगे।" बंसी उसी दिन से नवाब की हवेली से चला जाता है।

मोहनदास नैमिषराय का यह उपन्यास दलित चेतना का दस्तावेज है। बंसी व उसका पुत्र सुनित एक प्रकार से दलितों में स्वाभिमान जगाकर अपने अधिकारों के प्रति सजग रहकर गुलामी जैसी प्रथा को त्यागने की प्रेरणा देते हैं। जब बंसी का पुत्र सुनित का जन्म होता है, उसके मुंडन संस्कार पर जिन पंडितों को बुलाया जाता था, उस प्रथा को तोड़ना चाहते हैं। सुनित के

नामकरण के संदर्भ में पंडितों से बंसी कहता है "आज के बाद इस बस्ती में पंडितों की जरूरत नहीं पड़ेगी।[7]" पंडित का काम दलितों के पैसों से चलता है लेकिन वे दलितों के घर पानी तक नहीं पीते हैं। उपन्यास में लेखक ने इस गुलामी जैसी प्रथा जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मालिकों की गुलामी करती चली आ रही है, उसे बंसी तोड़ता है, जब मालिक नवाब बंसी के घर सुनित को देखने के लिए आता है जो बंसी मालिक से कहता है "नवाब साहेब अब से हम नवाबों की हवेली में काम नहीं करेंगे। न अब मैं किसी की गुलामी करूँगा न ही मेरा बच्चा। मुझे गुलाम बने रहने की आदत नहीं है साहेब। वैसे भी देश आजाद हो गया है। अब न कोई किसी का गुलाम है न कोई किसी का मालिक[8]" कहकर नवाबों की मानसिकता पर चोट करता है, बंसी की बातें सुनकर नवाब परेशान हो जाता हैं।

इस उपन्यास में नैमिषराय ने शिक्षा पर ज्यादा जोर देते हुए अंबेडकर के सिद्धांतों को दिखाया है। बंसी के पुत्र सुनित द्वारा नैमिषराय ने शिक्षा के महत्व को दर्शाया है। सुनित के मन में शिक्षा पाने की लालसा है लेकिन पंडित उपाध्याय उन्हें शिक्षा देने के लिए आगे-पीछे देखता है। सुनित शिक्षा प्राप्त करना चाहता है और समाज में अपना अधिकार पाना चाहता है। सुनित को भी छुआछूत का अपमान पाठशाला में झेलना पडता हैं, हर कोई सुनित को तिरस्कार की नज़र से देखता है लेकिन सुनित का एक ही मकसद रहता है शिक्षा प्राप्त करना। जिस प्रकार अंबेडकर शिक्षा पाकर दलितों को शिक्षित करना चाहते थे उसी प्रकार सुनित भी समाज को शिक्षित करना चाहता है। सुनित को प्रथम श्रेणी में पास होकर पाठशाला में दाखिला लेते वक्त भी उसे अपमानित होना पड़ता है। अध्यापक कहता है- "तुम शेडुल्ड कास्ट हो फार्म कहाँ है[9]?" कहकर सुनित को लज्जित करता है। उपन्यासकार ने सुनित को एक प्रकार से संघर्षशील व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है।

इस उपन्यास को एक प्रकार से गुलामी जैसी प्रथा से मुक्ति का दस्तावेज कह सकते हैं, यह एक प्रकार से दलित चेतना का सफल उपन्यास है 'मुक्तिपर्व'। इस उपन्यास को लिखने की प्रेरणा शायद नैमिषराय को दलित का सूरज अंबेडकर से मिली है। यह उपन्यास एक प्रकार से दलित में जागती हुई चेतना कहे या परिवर्तन को लेकर चलता है। इस उपन्यास में जो शोषक थें, जमींदार, नवाब, मालिक, आदि के अन्याय व अपमान का खुलकर विरोध दिखाया गया है।

नैमिषराय ने इस 'मुक्तिपर्व' उपन्यास के द्वारा दलितों में आए एक प्रकार के परिवर्तन को दर्शाया है। आज दलित युवक शिक्षा पाकर कोई परंपरा जैसी रूढ़ि, संप्रदाय का विरोध करते हुए अपने ऊपर होने वाले शोषण का मुहतोड़ जवाब देते हैं। देश में आज शिक्षा के कारण एवं आरक्षण के चलते हुए दलितों में स्वाभिमान की लहर जोर पकड़ रही है। दलित आज किसी के आधीन नहीं रहना चाहते हैं। संविधान के चलते अंबेडकर का नारा शिक्षा, संघटन और संघर्ष जैसा नारा के कारण दलितों को एक प्रकार की शक्ति मिली है, जो सदियों से वातावरण या गुलामी को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते हैं। जो शिक्षा के क्षेत्र में केवल ब्राहमण का काम था वह अब खत्म हो गया है। इस शिक्षा के संदर्भ में सुनित कहते हैं- "वे दिन बीत गए, जब पढ़ाना, पढ़ना, ब्राह्मणों का काम था। अब तुम भी पढ़ सकते हो।[10]"

मोहनदास नैमिषराय कथा साहित्य के इस कार्य को पूरी तरह अंजाम दे रहे हैं। दलित कहानी व उपन्यासों में शैक्षिक शोषण, आर्थिक शोषण, धार्मिक शोषण, बहिष्कारों, सांस्कृतिक कूपमंडूकता तथा भारतीय गाँवों में व्याप्त वर्ण व्यवस्था और सामंती व्यवस्था में पिसते दलितों की हाहाकार है। वहीं छोटे शहरों में बहिष्कारों, समाज में परिवर्तन और समाजिकता का संकेत दे रही हैं। 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में संघर्षशील दलित परिवार की विषमता, दोहरी गुलामी, शिक्षा, संघर्ष और संगठन के विविध पक्ष उभरकर सामने आते हैं। भारतीय समाज की विषमता में अपने उलझाव के साथ दलित पात्र अपने आत्मविश्वास के साथ जीना सिखाते हैं।

आज इस दिशा में अनेक दलित आरक्षण, दलित चेतना, रहन-सहन, खान-पान, पहनावा और हिंदू मुसलमानों में सांप्रदायिकता जैसी समस्याएँ उभरकर सामने आती हैं। यदि कुल मिलाकर दलित विमर्श पर चर्चा करते समय सामाजिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक संदर्भ तलाशा जाएँ, तो सभी में मूल स्वर मुख्य धारा से अलग रहने की छटपटाहट दिखाई देती है। लेकिन इस दिशा में आज तक संपन्न हुए सभी प्रयास निकट भविष्य में

स्वयं ही मुख्य धारा बन जाने की दिशा में आश्वस्त करते हैं और यह आश्वस्ति, दलित चेतना के संघर्ष जिजीविषा सहित उनकी संकल्प शक्ति से बल प्राप्त करती है।

आजादी के पचास साल के बाद भी देश की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है। पर दलितों ने सामाजिक विषमता और जातिगत आधार पर होते भेदभाव, छुआछूत के विरुद्ध अपना स्वर तीव्र कर दिया है। वे अपनी अस्मिता और पहचान के लिए निरंतर संघर्ष करने लगे हैं। लेखक अपने अनुभवों से जानता है कि "पैदा होने से पहले ही उनके हिस्से में बाप के व्यवसाय का नाम लिख दिया जाता है। और जाति का नाम तो माथे पर पहले से ही गोद दिया जाता था। इसीलिए जूनियर हाईस्कूल में दाखिला लेने के लिए वंशी व उसके बेटे सुनित को जातिगत अपमान व तिरस्कार झेलना पड़ता है। इस प्रकार संकट, संघर्ष तथा वर्ण व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं।[11] "

श्रम, विभाजन के आधार पर भारतीय वर्ण व्यवस्था की नीवं रखी गई थी और भारतीय व्यक्ति का श्रम विभाजन उसकी जाति पर निर्धारित किया जाता है। घृणित भारतीय समाज व्यवस्था के कारण निम्न जाति में जन्में मनुष्य की प्रतिभा व योग्यता का कोई मोल नहीं था। निम्नवर्ग तथा पिछड़ी जनजातियों में जन्मा व्यक्ति भयानक मानसिक व शारीरिक कष्ट सहने पर विवश था। परिणामस्वरूप भारतीय समाज जातिवाद, छुआछूत और सामंती व्यवस्था में घिरता चला गया। उच्चवर्ग के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों ने समाज के तिरस्कृत चतुर्थ वर्ग अर्थात् पिछड़ी जनजातियों के श्रम का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें गुलामी की बेड़ियों में जकड़ लिया।

भारतीय समाज के इस पिछड़े दलित वर्ग में डॉ. अंबेडकर का जन्म होता है। सदियों से दासता की बेड़ियों में जकड़े गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने के मुक्तिपर्व का प्रारंभ था। इस उन्यास में अंबेडकर की लक्ष्यपूर्ति का लेखक ने सफल प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सं. प्रा. श्रीराम वर्मा 'समकालीन हिंदी साहित्य विविध विमर्श पृ.सं. 10
2. मोहनदास नैमिषराय- 'मुक्तिपर्व' - पृ. 46
3. वही - पृ. 47,
4. जयप्रकाश- 'छप्पर' पृ. 56
5. मोहनदास नैमिषराय- 'मुक्तिपर्व' - पृ. 46
6. वही - पृ. 48
7. मोहनदास नैमिषराय- 'मुक्तिपर्व' - पृ. 53
8. वही - पृ. 56
9. वही - पृ. 63
10. मोहनदास नैमिषराय- 'मुक्तिपर्व' वही - पृ.
11. मोहनदास नैमिषराय- 'मुक्तिपर्व' - पृ. 82

– प्लॉट नं. 9, सिद्धारूढ़ कॉलोनी, शिवगिरी, धारवाड, कर्नाटक-580007

❑❑❑

मूल्यों की अवधारणा एवं कालिदास के साहित्य में लोकवादी मूल्यों की प्रासंगिकता

निशि त्यागी/आकांक्षा श्रीवास्तव

मूल्य शब्द 'मूल' से व्युत्पन्न हुआ है। वनस्पतिशास्त्र के अनुसार 'मूल' शब्द का अर्थ वृक्ष या पादप की जड़ होता है। जड़ का कार्य वृक्ष का आधार बनकर उसे टिकाए रखना होता है। 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखं' जैसे वाक्य प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि शाखा के विलोम अर्थ में 'मूल' शब्द का प्रयोग होता है। 'मूल' शब्द के अर्थ की आधार-प्रवृत्ति को लेकर अन्य आधारभूत पदार्थों के विशेषण के रूप में भी 'मूल' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसलिए जो सृष्टि के विकास का सर्वप्रथम आधारभूत होता है उसे मूल प्रकृति कहा जाता है। ठीक इसी प्रकार किन्हीं भाष्य या व्याख्यानों के आधारग्रंथों को भी मूलग्रंथ कहकर पुकारते हैं। किसी मूलवस्तु के बदले में जो वस्तु चुकानी होती है उसे भी मूल्य कहा जाता है। व्युत्पत्ति से मिलने वाले इसी अर्थ में हमारे रात-दिन के लेन-देन अर्थात् क्रय-विक्रय के व्यवहार में मूल्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। यही मूल शब्द अपने अर्थ का कुछ विस्तार करते हुए उन उपलब्धियों और लक्ष्यों के लिए प्रयोग में आने लगा जिन्हें पाने के लिए मनुष्य कभी-कभी जीवन तक दाँव पर लगा देता है, जिन्हें पा लेने में वह अपने जीवन की सार्थकता समझता है। अंग्रेजी भाषा में मूल्य शब्द के इन दोनों अर्थों का अंतर कभी-कभी Price और Value शब्दों के प्रयोग से किया जाता है। वाणिज्यशास्त्र में वस्तु विशेष को खरीदने के लिए दिए गए द्रव्य के वाचक मूल्य शब्द तथा जीवन को सार्थक बनाने वाले उद्देश्य या लक्ष्य के वाचक मूल्य से तथा इन दोनों के अर्थों के अंतर से हम भलीभाँति परिचित हैं। इन दोनों ही अर्थों में हम यथाप्रसंग मूल्य शब्द का प्रयोग अपने दैनिक प्रभाव में बहुधा करते रहते हैं।

मूल्यों की समाजशास्त्रीय दृष्टि

समाजशास्त्र की दृष्टि से मानवजीवन को सार्थकता देने वाले लक्ष्यों को ही मूल्य कहा जाता है। हमारे परंपरागत स्मृतिशास्त्रों, दर्शनशास्त्रों और नीतिशास्त्रों में समाजशास्त्रीय जीवनमूल्यों को ही पुरुषार्थ नाम दिया गया है। इस पुरुषार्थ शब्द का सीधा-सीधा अर्थ होता है मनुष्य जीवन की औसतन सौ वर्ष की आयु में अवस्था के अनुसार प्राप्त किए जाने वाले अर्थ अर्थात् अभीष्ट लक्ष्य अर्थात् मूल्य। हमारे प्राचीन समाजशास्त्रियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नाम के चार पुरुषार्थ तय किए हैं।

समाजशास्त्रीय और नीतिशास्त्रीय दृष्टि से चार पुरुषार्थों के रूप में मनुष्य के सामाजिक जीवन को सार्थक बनाने वाले चार पुरुषार्थों का निर्धारण मूल्यों का एक अत्यंत सरलीकृत रूप है। यह तो सच है कि इस निर्धारण के पीछे मनुष्य मात्र को समान रूप से इन्हें प्राप्त करने का अधिकारी माना गया है और सभी को इन मूल्यों के बीच संतुलन बैठाकर जीने के संदेश दिए गए हैं। वह एक सैद्धांतिक आदर्श दृष्टि तो कही जा सकती है परंतु यह एक व्यावहारिक और यथार्थवादी दृष्टि नहीं मानी जा सकती। सभी को धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष की समान घोषणा कर देने से इनकी उपलब्धि सभी सामाजिक जन को समान रूप से प्राप्त हो सके यह संभव नहीं लगता। व्यावहारिक यथार्थ यह है कि

पुरुष जीवन को इस प्रकार की सभी उपलब्धियों की प्राप्ति मनुष्य की व्यक्तिगत क्षमताओं और उसकी सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं। यही वे दो कारण हैं जो व्यक्तियों और व्यक्ति समुदायों के बीच विषमता पैदा करते हैं तथा उनके जीवन मूल्यों की रूपरेखा तय करते हैं।

मनुष्य और मनुष्य के बीच विषमता क्यों और किन रूपों में मिलती है, इस प्रश्न के उत्तर की खोज में सामान्यत: दो प्रकार की विचारधाराएँ मिलती हैं। एक विचारधारा मनुष्य के पूर्वजन्म के अच्छे-बुरे कर्मों को कारण बताकर विषमता की नियतिवादी व्याख्या कर देती है। दूसरी वह विचारधारा है जो इस विषमता का कारण भौतिक कारक और परिस्थितियों में देखती है। मनुष्यों के बीच व्यक्तिगत अंतर तथा सामाजिक अंतर को अलग-अलग बताते हुए यूरोप के प्रसिद्ध विचारक रूसो ने कभी लिखा था- "मेरी धारणा है कि मनुष्य जाति के सदस्यों में दो प्रकार को असमानताएँ हैं एक जिसे मैं प्राकृतिक एवं भौतिक असामनता कहता हूँ, क्योंकि उसकी स्थापना प्रकृति ने की है तथा जो आय, स्वास्थ्य, शारीरिक शक्ति, मस्तिष्क और आत्मा के गुणों के अंतर में निहित है तथा दूसरी को नैतिक अथवा सामाजिक असमानता कहा जा सकता है क्योंकि वह एक प्रकार के रिवाज या परिपाटी पर आधारित होती है, तथा उसकी स्थापना मनुष्यों की सहमति से होती है अथवा कम-से-कम उनके द्वारा उसे अधिकृत रूप प्राप्त होता है। यह दूसरी असमानता उन विभिन्न सुविधाओं में निहित है जिनका उपयोग कुछ लोग दूसरों को उनसे वंचित रखकर करते हैं जैसे अधिक धनी, अधिक सम्मानित, अधिक शक्तिशाली अथवा ऐसी स्थिति में होना जहाँ से दूसरों को आज्ञापालन के लिए विवश किया जाए। समाज की प्रमुख असमानताएँ मुख्यत: समाज की ही उपज होती हैं, उनका सृजन और संरक्षण संपत्ति और उत्तराधिकार को संस्थाएँ तथा राजनीतिक और सैनिक शक्तियाँ करती हैं। विशिष्ट आस्थाएँ और सिद्धांत उनका समर्थन करते हैं।"

मनुष्यों के बीच दिखने वाली सामाजिक विषमताओं को रूसो ने समाज के वर्गों की स्थिति से जोड़कर आँका है। अकेले रूसो ही नहीं संसार में और भी-अनेक ऐसे विचारक हुए हैं जो मनुष्य की सामाजिक विषमताओं का कारण पूर्व जन्म के कर्म, भाग्य अथवा ईश्वर जैसे किन्हीं अदृष्ट शक्तियों को नहीं मानते अपितु समाज की सारी विषमताओं का कारण समाज के कुलीन-अकुलीन, शासक-शासित, संपन्न और विपन्न जैसे वर्ग-भेदों को मानते हैं। इस श्रेणी के विचारकों में कार्लमार्क्स सबसे प्रमुख विचारक माने जाते हैं। उसने मानव समाज के ऐतिहासिक विकास को द्वंद्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या की कुंजी प्रस्तुत करके दार्शनिक और समाजशास्त्रीय विचारधाराओं के संसार में एक विप्लवकारी क्रांति पैदा कर दी। उसने अपनी द्वंद्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या के द्वारा मानव समाज के विकास की एक बहुत ही तर्कसंगत और वैज्ञानिक रूपरेखा विश्व के सामने प्रस्तुत कर दी।

कार्लमार्क्स की भौतिकवादी विचारधारा के वैचारिक जगत में जड़ जमाते ही विश्व का संपूर्ण दार्शनिक, सामाजिक और नैतिक चिंतन बहुत ही स्पष्ट रूप से एक-दूसरे की विरोधी दो दृष्टियों में बँट गया। भाववादी दृष्टि और भौतिकवादी दृष्टि कालिदास के साहित्य में आभिजात्य और लोकवादी मूल्यों का अंतर समझने के लिए इन दोनों दृष्टियों का सार समझ लेना अत्यंत प्रासंगिकता रखता है।

भाववादी दृष्टिकोण

अंग्रेजी भाषा के 'Idealism' के पर्याय के रूप में भाववाद और आदर्शवाद का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द 'Idea' से संबंधित है, जिसका मूल अर्थ विचार या भाव है। आदर्शवाद या भाववाद एक प्रकार का दृष्टिकोण है जिसकी सहायता से समाज और संसार का मूल्यांकन किया जाता है। इस विचारधारा में जड़ रूप भौतिक पदार्थों की अपेक्षा मूल सत्य चेतन को अधिक महत्ता प्राप्त होती है। आदर्शवाद की दृष्टि वैसे तो बौद्धिक है किंतु वह जीवन के सूक्ष्मतर मूल्यों को अधिक महत्व देती है। इस दृष्टि से वह आध्यात्मिक है।

भाववाद की धारणा है कि आसपास का जो दृश्यमान जगत है, वह किसी चेतन सत्ता की सृष्टि है। मस्तिष्क के विचार और आदर्श भौतिक पदार्थ और इंद्रियों से अधिक उच्च स्थान के अधिकारी होते हैं। इस दृष्टि से आदर्शवाद का भौतिकवाद और यथार्थवाद से मौलिक मतभेद है। आदर्शवाद प्राचीन दर्शनशास्त्रों में

प्रमुख स्थान रखता है। दार्शनिक विचारधारा के रूप में उसका स्वतंत्र विकास हुआ है। यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने एक ऐसे संसार की कल्पना की है जिसमें शाश्वत और चिरंतन विचारों को ही सत्य के रूप में ग्रहण किया गया है। परिवर्तनशील भौतिक जगत में उन्हें अलग रखा गया है। आदर्शवाद के एक अन्य विचारकार की धारणा है कि विचार केवल बुद्धि के क्रिया व्यापार हैं, किंतु पदार्थ का संबंध मानव के इंद्रिय अनुभव से है। कान्ट दृश्यजगत से भिन्न एक अन्य मूल तत्व को भी स्वीकार करता है। उनका कहना है कि वह तत्व अगम्य है। उसका बोध केवल उस बुद्धि से संभव है जिसका दूसरा रूप इच्छाशक्ति है।

आदर्शवाद या भाववाद के प्रमुख चिंतनों में जर्मन दार्शनिक हीगेल तथा भारतीय उपनिषदों की विचारधारा अग्रणी है। इस विचारधारा के अनुसार विश्व जीवन की उत्पत्ति और संचालन व्यवस्था एक चेतन सत्ता करती है। उसे हम परम प्रत्यय या परमात्मा कुछ भी कह सकते हैं।

भाववादी विचारधारा के अनुसार जगत का वास्तविक स्वरूप अभौतिक अर्थात् चिन्मय या मनोमय है। भौतिक द्रव्य को प्रधानता न देकर यह विचारधारा चेतना अथवा मानसिकता को प्राथमिकता और प्रधानता देती है। जबकि भौतिकवादी विचारधारा भौतिक द्रव्य को जगत का मूल तत्व मानती है। इस विचारधारा के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभवों में आने वाला मन कल्पना मात्र नहीं है। यह एक ठोस भौतिक सत्ता है. यह मनोमय या चिन्मय नहीं है। यह विचारधारा मन अथवा चेतना को स्वयं भौतिक पदार्थ का उत्पाद बताती है। चेतना की व्याख्या वह भौतिक उपादानों से करती है। इसके ठीक विपरीत आदर्शवादी या भाववादी विचारधारा की स्थिति है। वह मन अथवा चेतना को परम सत्य या परम तत्व मानती है। और भौतिक द्रव्यों को उससे उद्भूत बताती है। वह यह स्वीकार नहीं करती कि जगत एक विराट जड़ यंत्र मात्र है और उसकी परिपूर्ण व्याख्या भौतिक यांत्रिक और वैज्ञानिक पद्धति से की जा सकती है। उसकी मान्यता है कि परम तत्व मन जैसा चेतन है। जगत के विधान में चेतना और बुद्धि मूल कारण हैं। भौतिक प्रगति की स्वयं पूर्णता एक भ्रम है। भौतिक प्रगति चैतन्य पर अवलंबित है। जो जगत संवेदनाओं के माध्यम से इंद्रियों से प्रत्यक्ष होता है, उसका सत्य स्वरूप नहीं है उसका सच्चा स्वरूप और अर्थ इस गोचर प्रपंच में ही छिपा है। मनुष्य के मन मस्तिष्क की प्रक्रिया मात्र नहीं है। मन का अस्तित्व प्रथम है। मस्तिष्क की प्रक्रिया उसकी अनुगामिनी है। अतः मनुष्य नैतिक और आत्मिक दृष्टि से स्वतंत्र है। जगत के चिन्मय होने के कारण उसमें कुछ भी अर्थहीन नहीं हैं। मानव प्राणी उसके अंग हैं, अतः वे भी अर्थहीन नहीं हैं। मानवीय मूल्य मनुष्य की सीमाओं से सापेक्ष और सीमित भले ही हों वे निरपेक्ष परम मूल्यों के विरोधी और उनसे असंबद्ध नहीं है। ईश्वर जगत का आंतरिक जीवनीय तत्व है। वह परात्पर परमात्मा है। समस्त प्रकृति परमात्मा ईश्वर पर ही आश्रित है और उसी के द्वारा संचालित है।

भाववादी विचारधारा के अनुसार प्रकृति और परमात्मा का भेद असत्य है। अद्वितीय परमात्मा चेतन ही एकमात्र सत्य सत्ता है। इस अद्वितीय आदर्शवाद के अनुसार ईश्वर अनंत और समस्त सत्ता का अधिष्ठान है। मनुष्य जीवन ईश्वर की सृजनशील विश्वप्रक्रिया का अंश है। प्रत्येक मनुष्य परम चेतन का रूप है और उसे अपने इस पूर्ण रूप को ही समझना है।

जीवनमूल्यों की दृष्टि से भाववादी विचारधारा की मूल प्रवृत्ति व्यक्तिवादी है। व्यक्तिवाद का अर्थ है कि हर एक व्यक्ति अपने प्रत्येक कार्य का स्वयं लक्ष्य है। उसका संपूर्ण स्नेह समूचा लगाव 'अहम्' के जीवित संपर्क से ही संभव है। यह शुद्ध रूप से व्यक्तिवादी धारणा है। यह भाववादी व्यक्तिवाद समाज के प्रति एक नकारात्मक दृष्टिकोण की स्थापना करता है। उसकी दृष्टि में समाज एक सावयविक अस्तित्व नहीं है प्रत्युत स्वतंत्र व्यक्तियों का योग ही समाज है। अतः समष्टि की शक्ति को व्यक्ति के अधिकारों और स्वतंत्रताओं पर बल प्रयोग का नैतिक अधिकार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों और स्वार्थों को जितनी अच्छी तरह से समझ सकता है उतना समाज कदापि नहीं। इस तर्क की दृष्टि से सामाजिक बंधन और परंपराएँ, रीति-रिवाज, सामूहिक संस्थाएँ और मान्यताएँ निरकुंशता के साथ व्यक्ति पर शासन नहीं कर सकती। व्यक्तिमूलक व्यापारों का साध्य व्यक्ति का हित है और उसका एकमात्र ज्ञाता व्यक्ति ही है। इस विचारधारा के अनुसार समाज और

राज्य को व्यक्तिगत स्थानों की प्राप्ति का साधन मात्र बताया गया है। भाववादी व्यक्तिवाद की विचारधारा में दो प्रधान तत्व एक साथ दिखाई पड़ते हैं। पहला यह कि प्रत्येक मुनष्य का एकमात्र लक्ष्य व्यक्तिगत सुख है और दूसरा यह कि समाज और राज्य आवश्यक दोष हैं। इस विचारधारा के अनुसार हर एक व्यक्ति स्वार्थों का समूह है और निसर्ग उन स्वार्थों का सम्मेलन है। व्यक्तियों के स्वार्थों का समन्वय समाज या राज्य द्वारा नहीं, निसर्ग द्वारा ही संभव है।

राजनीतिक क्षेत्रों में स्वार्थों की विविधरूपता संघर्ष को जन्म दे सकती है। अतः स्वार्थों में एकरूपता लाने के लिए मनुष्य को स्वतः ही प्रयास करना पड़ेगा। इस प्रकार व्यक्तिवादी विचारकों ने राजनीतिक क्षेत्र में हितों को नैसर्गिक एकरूपता के स्थान पर हितों का कृत्रिम एकरूपता का सिद्धांत सामने रखा है। इस सिद्धांत के आधार पर विधि निर्माता का उत्तरदायित्व है कि यह अभिजात समाज के सदस्यों के विभिन्न स्वार्थों में समन्वय स्थापित करे। इस भाववादी व्यक्तिवादी विचारधारा ने एक ऐसे दर्शन का रूप ग्रहण कर लिया जो समाज के अभिजात वर्ग के हितों की रक्षा के लिए एक राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन करता है।

वस्तुवादी और यथार्थवादी दृष्टि

वस्तुवादी सोच या विचारधारा भौतिकवाद का आश्रय लेकर चलती है। भौतिकवाद दर्शन का एक निकाय है। इसकी तीन बुनियादी मान्यताएँ हैं। प्रथम यह कि बाह्य जगत हमारे प्रत्ययों या भावों का समुच्चय मात्र न होकर एक स्वतंत्र सत्ता है। दूसरे यह है कि वह किसी चेतन तत्व का अर्थात् आत्मा या परमात्मा का निर्माण न होकर भौतिक तत्वों अर्थात् जड़ पदार्थो का ही परिणाम है। तीसरे यह कि मनुष्य में जो चेतना दिखाई देती है वह भी भौतिक द्रव्यों का ही परिणाम है। भौतिकवादी विचारधारा के रूप में कार्लमार्क्स का सिद्धांत अप्रतिम है। मार्क्स न तो आदर्शवादियों की तरह यह मानता है कि मनुष्य की चेतना ही सब कुछ है और जड़ पदार्थ उसकी छाया मात्र है और न दूसरे भौतिकवादियों की तरह यह मानता है कि जड़ पदार्थ ही सब कुछ है और चेतना केवल अनुभवों का निष्क्रिय भोक्ता है। उसके अनुसार चेतना और बाह्य परिस्थितियों का परस्पर संघर्ष होता है। यह संघर्ष निश्चित भौतिक परिस्थितियों में जन्म लेता है। इसलिए मुनष्यों को समझने के लिए उनकी ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को जान लेना तथा उसका सही-सही विश्लेषण करना आवश्यक है। मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मनुष्यों के गुण-दोषों को उनकी ठोस परिस्थितियों की सापेक्षता में ही देखता है।

मार्क्स के अनुसार बँटे हुए आर्थिक वर्गों की अपनी-अपनी आवश्यकताएँ हैं। इन्हीं आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप उनके धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक स्वार्थ भी द्वंद्वात्मक रूप से बँटे होते हैं। वर्ग स्वार्थ ही वह धुरी है जिसके चारों और अन्य सामाजिक स्वार्थ चक्कर काटते हैं। मार्क्स के अनुसार वर्ग स्वार्थ एक बहुत बड़ी मनोवैज्ञानिक शक्ति है। पूंजीपति सामंत, किसान और श्रमिक सभी अपने वर्ग स्वार्थ की प्रेरणा से ही प्रेरित होते हैं। समाज के नैतिक मानदंडों में न कुछ शाश्वत है, न कुछ निरंतर। अच्छे और बुरे का निर्धारण साधारणतः वर्ग स्वार्थों की सापेक्षता में ही किया जाता है। अतः समाज में जितने वर्ग हैं उतने ही प्रकार की वर्गगत नैतिकताएँ होती हैं। हम उन्हीं कार्यों को नैतिक समझते हैं, जो हमारे वर्ग स्वार्थों को पूरा करते हैं। वर्ग वैषम्य से ही श्रेणी संघर्ष का जन्म होता है और उसी से वर्गयुद्ध प्रारंभ होता है। वर्ग संघर्ष की इसी परिकल्पना पर मार्क्स का ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद खड़ा हुआ है।

ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मनुष्य के इतिहास और समाज की एक विशेष व्याख्या करने का प्रयास करता है। इसके अनुसार मनुष्य का सामाजिक जीवन उसकी आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा अनुशासित होता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद इतिहास के प्रति एक वस्तुवादी और यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

भौतिकवादी विचारधारा की मुख्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं-

1. सांस्कृतिक परिस्थितियाँ और भौगोलिक परिस्थितियाँ मनुष्य के चरित्र का निर्माण अवश्य करती हैं, किंतु केवल उन्हींका उसके चरित्र का निर्माण नहीं होता और न यह परिस्थितियाँ उसके परिवर्तन का प्रधान

कारण हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार जीवन यापन के जो साधन हैं और उसके उपार्जन के लिए जिस उत्पादन प्रणाली की आवश्यकता है वह हमारे समूचे सामाजिक अस्तित्व का अनुशासन करती है। प्रत्येक मनुष्य को जीने के लिए भोजन, वस्तु और अन्य सामाजिक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इसके उत्पादन के औजारों तथा उत्पादक हाथों के संयोग से उत्पादन शक्तियों की सृष्टि होती है। इसके अतिरिक्त उत्पादन के संबंध में मनुष्य एक-दूसरे के निकट आते हैं जिससे आर्थिक तथा मानवीय संबंधों की सृष्टि होती है। अत: उत्पादन प्रणाली और मानवीय संबंधों के समन्वय से ही समाज का इतिहास निर्मित होता है।

2. उत्पादन एक निरंतर गतिशील प्रक्रिया है जो निरंतर परिवर्तन ग्रहण करती है।

3. उत्पादन के समूचे परिवर्तन उत्पादन शक्तियों के परिवर्तन के नाते होते हैं। इन परिवर्तनों का प्रभाव मनुष्य के आर्थिक संबंधों पर भी पड़ता है और इस प्रकार से सामाजिक वातावरण में इन दोनों की अंतरक्रियाएँ चलती रहती हैं। अब तक इन्हीं अंतरक्रियाओं के कारण मनुष्य ने चार प्रकार की सामाजिक अवस्थाओं का निर्माण किया है- प्रारंभिक साम्यवाद, दास व्यवस्था. सामंतवाद तथा पूंजीवाद।

वर्तमान समय में जब उत्पादन शक्तियाँ नए रूपों में परिवर्तित हो रही हैं तो हम पाँचवें प्रकार की एक नई आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की सूचना पा रहे हैं, वह व्यवस्था है समाजवाद।

4. ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार इतिहास की एक मूल एकता है। इस मूलभूत एकता का कारण यह है कि समूचा इतिहास नियमों से परिचालित है। ये नियम द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को दर्शाते हैं।

5. ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार आथक व्यवस्था के अनुकूल ही सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व्यवस्थाओं की रचना की जाती है।

6. ऐतिहासिक भौतिकवाद यह नहीं मानता कि केवल सामाजिक परिस्थितियाँ ही मानव-मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं. प्रत्युत यह स्वीकार करता है कि भौतिक परिस्थितियाँ और मानव-मस्तिष्क दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन्हीं की पारस्परिक अंतरक्रियाएँ इतिहास की गतिविधि का नियंत्रण करती हैं।

मूल्यों को अवधारणा के विषय में आदर्शवादी और भौतिकवादी दृष्टिकोण से अब तक जो चर्चा की गई है उससे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि आदर्शवादी विचारधारा 'धर्म' को सर्वोपरि मूल्य मानती है और भौतिकवादी विचारधारा 'अर्थ' को सर्वोपरि मूल्य बताती है। जहाँ तक लोकवादी मूल्यदृष्टि का प्रश्न है, वह इन दोनों विचारधाराओं में जो भी लोककल्याणकारी तत्व है उन सभी को मानवीय मूल्य मानकर चलती है।

अभिजातवर्ग और लोकवर्ग

भाववादी चिंतनदृष्टि से और भौतिकवादी दृष्टि से विचार करें तो प्रत्येक समाज मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त पाया जाता है-अभिजातवर्ग तथा लोकवर्ग। इन्हीं दोनों को कुलीन-अकुलीन तथा शासक और शासित वर्ग भी कहा जाता है। समाज में अभिजातवर्ग संख्या की दृष्टि से तो कम होता है लेकिन समाज का सारा अर्थतंत्र और सत्तातंत्र इस वर्ग के हाथों में ही रहता है।

इसके विपरीत दूसरा वर्ग बहुसंख्यक है। वह प्रथम वर्ग द्वारा कभी वैधानिक तरीकों से और कभी स्वेच्छापूर्ण हिंसक तरीकों से चालित और नियंत्रित होता है। समाज का शासक यह अल्पसंख्यकवर्ग ही अभिजन वर्ग होता है। समाजशास्त्रियों ने इस अभिजनवर्ग के मुख्यत: चार उपसमूह माने हैं- धनिक, सामंत, सैनिक तथा पुरोहित।

समाज का दूसरा वर्ग साधारण लोक होता है। यह वर्ग सामूहिक श्रम करता है और अभिजातवर्ग उस श्रम का व्यक्तिगत उपभोग करता है। समाज में अपने-अपने वहितों को लेकर दो मूल्य दृष्टियाँ आपस में टकराव को लेकर विकसित होती हैं, जो दो विचारधाराओं को सामने लाती हैं। जो अल्पसंख्यकवर्ग है, लेकिन संगठित होने के कारण शक्तिशाली है, वह अभिजनवर्ग की अपनी जीवनप्रणाली को संपोषित करने वाली मूल्यदृष्टि को समाज में प्रभावी बनाए रखने का संघर्ष करता है। वह सभी जीवनमूल्यों की व्याख्या अपने वर्गीय हितों के अनुसार करते हुए समाज के मानस पर अपनी विचारधारा के वर्चस्व को कायम रखना चाहता है। इसके विपरीत बहुसंख्यक शासितवर्ग अपने वर्गहितों की रक्षा के लिए

प्रतिरोधी वैचारिक संघर्ष में उदारता रखता है और जीवनमूल्यों की व्याख्या अपने वर्गहितों को संपोषित करने के लिए करता है। इस साधारण लोक के वर्ग में कृषक, खेतिहर श्रमिक, शिल्पी तथा दूसरे प्रकार के शारीरिक श्रम में समाज उपयोगी उत्पादन करने वाले जनसमूह आते हैं।

आधुनिक विश्व की समाज संरचना को ध्यान में रखकर हमने जिसे अभिजातवर्ग कहा है वही प्राचीन युगों के भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था में क्षत्रीय और ब्राह्मण नाम के अग्रणी वर्गों का शासक वर्ग था तथा जिस वर्ग को हमने आज के समाज में किसान-मजदूर वर्ग के रूप में लोक बताया है वही वर्णव्यवस्था वाले प्राचीन समाज में वैश्व तथा वर्णों के रूप में सामान्य लोक था।

आभिजात्य और लोकवादी मूल्य

समाज का अभिजातवर्ग अपने हितों का पोषण करने के लिए जिन सामाजिक मूल्यों की पक्षधरता करता है और जिनका उल्लेख करके वह लोक की अपेक्षा अपना उत्कर्ष और वर्चस्व अनुभव करता है वे सभी अभिजातीय मूल्य कहे जाते हैं। इसके विपरीत जो जीवन मूल्य साधारण जन की मानवीय आकांक्षाओं, भौतिक आवश्यकताओं तथा उनकी पीड़ाओं को न्यायसंगत अभिव्यक्ति देते हैं, उनके सहज निश्छल और श्रमशील जीवन के साथ आत्मीयता प्रकट करते हैं। वे लोकवादी मूल्य कहलाते हैं।

कालिदास साहित्य में लोकवादी मूल्य

कालिदास के साहित्य की मूल्यपरक समीक्षा करने से पूर्व हमें यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि हमारा यह कवि एक संपूर्ण कवि है। समग्र लोकजीवन इसके काव्य का विषय है। खंड-खंड करके इसकी मूल्य दृष्टि की सही समीक्षा नहीं की जा सकती है। वैसे भी लोकजीवन चाहे जितने वर्गों में विभक्त हो, उसका ताना-बाना एक-दूसरे से गुँथा ही होता है। कुलीन-अकुलीन, संपन्न-विपन्न, अभिजात और सामान्य लोक वर्गविरोधों के बावजूद परस्पर गुँथे रहते हैं और वर्गविहीन समाज रचना न होने तक घुल-मिलकर जीने को बाध्य रहते हैं। विरोधी वर्गों में भी बहुत कुछ सामान्य होता है, अन्यथा सहजीवन मूल्यों की अवधारणा संभव ही नहीं हो सकती। कालिदास के साहित्य में अभिजात और सामान्य लोक का सहजीवन ही अभिव्यक्त हुआ है और वह समग्रता में हुआ है। यह कैसे हुआ है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर कालिदास की सभी रचनाओं की विषयवस्तु अभिजात जीवन से ग्रहण की गई है किंतु उस विषयवस्तु के साथ रचनाकार का ट्रीटमेट अर्थात् उपचार बहुत बड़ी सीमा तक लोकवादी रहा है। अभिजातवर्ग के पात्रों के चरित्र में उनके अभिजातीय मूल्यों की अभिव्यक्ति करते हुए कालिदास ने उन्हें अनेक स्वरूपों में सामान्य लोक की भूमि पर खड़ा कर दिया है। अर्थात् उन्हें अभिजातीय दंभ के आसमान से उतार कर आम आदमी की धरती पर ला खड़ा किया है। अमानवीय अभिजात्य की पक्षधरता कालिदास के साहित्य में कहीं नहीं मिलती है। उसकी पक्षधरता मानवीय मूल्यों के साथ है, उसकी संवेदनाओं का उत्स लोकजीवन की धरती में समाया है।

कालिदास के साहित्य में लोकवादी मूल्यों की चर्चा छेड़ते ही यह प्रश्न उठ सकता है कि जिस कवि ने सामान्य लोक के जीवनवृत्तों को अपनी रचनाओं की विषयवस्तु बनाया ही नहीं है, जिसकी रचनाओं के सारे चरित्र और घटनाचक्र राजवंशों और दिव्यपात्रों के घेरे में बंद हैं, उसकी रचनाओं में लोकवादी मूल्यों की क्या संभावना हो सकती है? सतही तौर पर यह प्रश्न निराधार नहीं कहा जा सकता है। परंतु इसे पूर्ण सत्य भी नहीं माना जा सकता है। साहित्य रचनाओं की विषयवस्तु के चयन में बहुत से कारकों का दबाव रहता है। इसमें कवि व्यक्तित्व को बनाने वाले परिवेश, परंपरा और युगीन परिस्थितियों तथा सामाजिक व्यवस्था का निर्णायक प्रभाव पड़ता है। कालिदास युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों को आधुनिक लोकतंत्र के युग के प्रतिमानों से ज्यों का त्यों नहीं मापा जा सकता है। उन्हें समझने के लिए सामंतयुग की समाजव्यवस्था के चरित्रों को समझना होगा, उस युग के लोकजीवन की सीमाओं को पहचानना होगा। इतिहास की भी इस सच्चाई को अच्छी तरह जान लेना जरूरी है कि सभी युगों के साहित्य और कलारूपों में समाज का सत्ताधारी और अग्रणीवर्ग प्रभावी रहता है। इस प्रभाव से आज के लोकतंत्र का समाज भी मुक्त नहीं है। साहित्य और कलाओं के केंद्र में सामान्यलोक

अभी भी केंद्रीय नहीं बन सका है। परंतु इतना सच है कि वह सामंतयुग के लोक की तरह पूरी तरह उपेक्षित भी नहीं किया जा सका है।

जहाँ तक कालिदास का प्रश्न है उसका कवि यों तो अभिजातवर्ग में रचा-बसा, पनपा और पोषित लगता है परंतु उसका अनुभव संसार उतने में ही कैद नहीं रहा है। कुछ ऐसा लगता है कि कालिदास का बचपन, कैशोर्य और तरुणाई का पूर्वार्ध ग्रामजीवन का रहा है और प्रौढ़ अवस्था में वह राजधानी का चरित्र बना है। हमारा यह निष्कर्ष कवि की रचनाओं में प्राप्त होने वाले कुछ सूत्र संकेतों पर आधारित है। कालिदास साहित्य के मूल्यपरक चरित्र पर प्रकाश डालते हुए राधावल्लभ त्रिपाठी ने जो कुछ कहा है वह इस संदर्भ में सारी स्थिति को पूरी तरह स्पष्ट कर देता है। डॉ. त्रिपाठी के शब्दों में कालिदास मूलत: अभिजात परंपरा के कवि हैं पर उनकी कविता की व्याप्ति और परिधि इतनी बड़ी है कि दूसरी परंपरा की अंतरक्रिया वहाँ देखी जा सकती है। शाकुंतलम में थोड़ी देर के लिए मंच पर अवतरित होने वाला एक अदना मछुआरा ही सारी व्यवस्था पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगा देता है और राजा के अधिकारी उसके आगे बौने प्रतीत होने लगते हैं। राजपुरुषों के आगे घिघियाता, रिश्वत देने को विवश वह मछुआरा भी पूरी व्यवस्था पर पैनी चोट कर डालता है।

कालिदास की प्रथम रचना 'ऋतुसंहार' के गीतों का स्वर ग्रामजन के ऋतुगीतों से निकला है। शाकुंतलम का मुग्ध शिशु सर्वदमन, उसका रंगबिरंगा मिट्टी के मयूर का खिलौना तथा रक्षाकरंडक (ताबीज) कवि को ग्राम्य लोकजीवन से मिला है। मछली के पेट से राजा की अंगूठी पाने वाले मछुआरे का स्वाभाविक चित्रण तथा दुष्यंत एवं सिपाहियों का चित्रण भी साधारण लोकवर्ग के जीवन तथा मूल्यों की सीधी समझ कवि की लेखनी बताता है। 'मेघदूत' में धरती की सौंधी गंध, बादल को देख पथिक वनिताओं के मन में परदेस गए पतियों के लौटने की आशा, जनपद वधुओं के लोचनों में अच्छी फसल देने वाले मेघ को देखकर छलकता उछाह, वर्षा से भीगे हरे-पीले कदंब पुष्पों पर मंडराते भौंरे, दलदली धरती में नई फूली-कंदली चरते हरिण, वर्षा से भीगी जंगली धरती की तीखी गंध सूँघते हाथी, गाल पर चू रहे पसीने से कुम्हलाए मालिनों के कर्णोत्पल तथा अवंती के कथाकोविद ग्रामवृद्धों के उल्लेख यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि कालिदास का कवि सामान्य लोक की धरती से जन्मा है। उसकी संवेदनाओं का असली झरना वहीं से फूटा है। उसके काव्यों में विषयवस्तु के रूप में साधारण लोक का जीवन अधिक न सही परंतु संवेदनाओं और मूल्यों के रूप में वह है। उसके काव्यों में प्रकृति और कुछ नहीं, लोकजीवन की मुक्त रंगस्थली है, उसकी सुंदरता में, उसकी क्रियाओं में कालिदास ने लोकजीवन की संवेदनाओं और मूल्यों का ही अनुभव किया है।

निष्कर्ष

कालिदास संस्कृत भाषा के महान कवि और नाटककार थे। उन्होंने भारत की पौराणिक कथाओं और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएँ कीं और उनकी रचनाओं में भारतीय जीवन और दर्शन के विविध रूप और मूल तत्व निरूपित हैं। कालिदास अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण राष्ट्र की समग्र राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने वाले कवि माने जाते हैं।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसके साहित्य में अभिजातवर्ग और सामान्यलोक दोनों को अत्यंत गहरी एक-समान मानवीय संवेदनाओं की धरती पर खड़ा कर दिया गया है। हम समझते हैं इस तरह की मानवीय संवेदनाओं वाला साहित्यकार ही एक सच्चा लोकवादी साहित्यकार होता है। अत: उसकी रचनाओं के इस उदात्त पक्ष को उजागर करना अपनी एक विशिष्ट प्रासंगिकता रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राधावल्लभ त्रिपाठी : संस्कृत कविता की लोकधर्मी परंपरा, 518.

2. अभिज्ञानशाकुंतलम, अंक 7

3. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका कालिदास भारतीय लेखक

4. मोहनदेव पंत (2001). हर्षचरितम् (खंड 1) 1-4 उच्छ्वास. मोतीलाल बनारसीदास. पप. 46-15 BN 978-81-208-2615-1

5. पंडित नवीन चंद्र विद्यारत्न द्वारा संपादित शब्दावली, अंग्रेजी एवं बांग्ला अनुवाद विभिन्न पाठों एवं कमेंट्री आदि का नवीन संस्करण। 1822/ पप. 2

6. जैन, अनीता (2000) कालिदास के काव्यों में वर्णित वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कृत स्मारिका, संस्कृत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ ।

7. https://www.myguru.in/diety_ details. php?deity =Kalidasa

8. 37. रघु. 15.49-53 तथा कालिदास का भारत पृ. 287.

9. कमलेश माथुर(2015) कालिदास साहित्य में जीवन मूल्य, प्रकाशक : ईस्टर्न बुक लिंकर्स शैली : साहित्य और कथा साहित्य।

– स्कूल ऑफ एजुकेशन, शारदा यूनिवर्सिटी, ग्रेटर नोएडा, गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश

❑❑❑

'सरोज-स्मृति' में ध्वनि स्तरीय समांतरता

डॉ. विजय विनीत

'सरोज-स्मृति' महाप्राण 'निराला' की एक विशिष्ट काव्यकृति है। इसका रचना-काल 09-10-1935 है। यह हिंदी की एकमात्र प्रसिद्ध 'एलिजी' (शोक-गीति) है, जिसे जीवन की समस्त पीड़ाओं, संघर्षों एवं अंतर्दवंदवों से गुजरे हुए कवि 'निराला' ने अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु पर लिखा है। पुत्री के वियोग में कवि को जो मूक-व्यथा हुई, उसी का उच्छ्वास है 'सरोज-स्मृति'। यहाँ वात्सल्य अपनी पूरी शक्ति लगाकर करुणा की वल्लरी पर चढ़कर रो गया है। इसमें जीवन के वसंत में प्रवेश करते ही सहसा शाश्वत विराम पा जाने वाली तनया के प्रति वत्सल पिता के स्नेह-वंचित हृदय का आकुल विस्फोट बड़ा ही मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। इसमें कवि के व्यक्तिगत जीवन के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ साहित्यिकों के प्रति समाज की निर्दयता का भी प्रकाशन है।

'सरोज-स्मृति' में अग्रप्रस्तुति

'सरोज-स्मृति' कविता में अग्रप्रस्तुति कौशल समांतरित, विचलित, विपथित और विरल- इन चारों रूपों में क्रियाशील है।

समांतरता

समांतरता 'सरोज-स्मृति' में अग्रप्रस्तुति का एक प्रमुख अभिकरण है। यह भाषा के प्राय: सभी स्तरों पर क्रियाशील है। यहाँ इस अभिकरण के आधार पर प्रस्तुत कविता का विश्लेषण ध्वनि-स्तर पर किया जा रहा है।

ध्वनि-स्तर की समांतरता

'सरोज-स्मृति' कविता में ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता घोष, अल्पप्राण, नासिक्य व्यंजन ध्वनियों की आकृति तथा दीर्घ स्वर ध्वनियों की आवृत्ति में प्राप्त होती है।

'आ' विवृत और दीर्घ स्वर ध्वनि के आवर्तन से प्राप्त ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता-

इस तरह की ध्वनि-स्तरीय समतामूलक समांतरता के निम्नलिखित उदाहरण प्राप्त होते हैं-

1. श्रावण-नभ का स्तब्धांधकार

शुक्ला-प्रथमा, कर गई पार (पृ. 122)

यहाँ आ- आ- आ- आ- आ- आ- आ की आवृत्ति होने के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो अग्रप्रस्तुत होकर अंधकार की गाढ़ता, उसकी प्रसूति, उसके फैलाव को उजागर करती है।

2. लौटी रचना लेकर उदास

ताकता हुआ मैं दिशाकाश (पृ. 126)

यहाँ आ- आ- आ- आ- आ- आ की आवृत्ति होने के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो आकाश की व्यापकता और अंतर्मन की गहन उदासी को एक साथ उजागर करती है।

3. बह चली एक अज्ञात वात

चूमती केश-मृदु नवल गात (पृ. 131)

यहाँ आ- आ- आ की आवृत्ति होने के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है। यहाँ ई- ए- उ- ई- ए दीर्घ स्वर ध्वनियों की भी आवृत्ति हुई है। दीर्घ स्वरों की कुल आठ बार आवृत्ति

भाषा ISSN 0523-1418

से उत्पन्न ध्वनि-स्तरीय समतामूलक समांतरता वायु के अबाध प्रवाह का बोध कराती है।

व्यंजन ध्वनियों के आवर्तन से प्राप्त ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता-

विवेच्य कविता में व्यंजन ध्वनियों के आवर्तन से ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता के निम्नलिखित उदाहरण प्राप्त होते हैं-

1. चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण
कह- "पितः, पूर्ण आलोक वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण
'सरोज' का ज्योतिः शरण-तरण।" (पृ. 121)

यहाँ र- ण- र- ण- र- ण- र- ण- र- ण- र- ण- र- ण- र- ण जैसी घोष प्राण ध्वनियों की आवृत्ति के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है, जो अर्थ के उत्कर्ष में सहायक है।

2. जीवित-कविते, शत-शर-जर्जर
छोड़कर पिता को पृथ्वी पर (पृ. 122)

यहाँ 12 घोष ध्वनियों की प्रयुक्ति में चार बार 'र' तीन बार 'व' और तीन बार 'ज' का प्रयोग है। यहाँ ज- र- ज- र की आवृत्ति अग्रप्रस्तुत होकर सांसारिक अभावों, बाधाओं, संघर्षों, संकटों के सैकड़ों बाणों से विद्ध जर्जरित पिता की असमर्थता और गहन पीड़ा को अभिव्यक्त करती है। दो बार 'श' महाप्राण ध्वनि उपर्युक्त आवृत्ति से मिलकर दुख को और भी बढ़ा देती है।

3. क्षीण का न छीना कभी अन्न
मैं लख न सका वे दग विपन्न (पृ. 123)

यहाँ नौ बार नासिक्य घोष ध्वनियों की आवृत्ति से ध्वनिस्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो अग्रप्रस्तुत रूप में कृशकाय की क्षीणता और विपन्नता को अपनी पुरस्सरता में उजागर करती है।

4. एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते ये मुझ पर तुले तूर्ण (पृ. 123)

यहाँ र्- ण- र्- ण घोष अल्पप्राण ध्वनियों के आवर्तन से ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो अग्रप्रस्तुत होकर अभावों के तीर से शरीर और मन के क्षत-विक्षत हो जाने का बोध कराती है।

5. व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल
क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध कंठ फल (पृ. 124)

यहाँ द् + ध, द् + ध, द् + ध के आवर्तन से ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है, जो अग्रप्रस्तुत रूप में क्रोधित और रुद्ध जीवन को वाणी प्रदान करती है। 'द' और 'ध' दोनों ही घोष ध्वनियाँ है। दोनों की आवृत्ति संघर्ष की विभीषिका को चित्रित करती है और ध्वनि-प्रवाह को ऊर्जस्वित बनाती है।

6. जागे जीवन-जीवन का रवि (पृ. 124)

इस वाक्य में प्रयुक्त सभी व्यंजन ध्वनियाँ अल्पप्राण होने के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता उत्सृष्ट करती है। यहाँ तीन बार 'ज' तीन बार 'व' दो बार 'न' और एक-एक बार क्रमशः 'ग' और 'र' जैसी अल्पप्राणता अग्रप्रस्तुत होकर जीवन के सौंदर्य प्रकाश और अखंडित प्रवाह को अभिव्यक्त करती है।

7. बाल्य की केलियों का प्राङ्गण
कर पार, कुंज-तारूण्य सुधर (पृ. 129-130)

यहाँ तीन बार 'य' पाँच बार 'र' दो बार 'ल' पाँच बार नासिक्य, एक-एक बार क्रमशः 'ग' और 'घ' घोष ध्वनियों के आवर्तन से ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है। जो अग्रप्रस्तुत होकर सरोज के बाल्यकाल की क्रीड़ाओं के आँगन से बढ़कर उसे पारकर यौवन के रम्य निकुंज में पदार्पण करने का बोध कराती है।

8. नैश स्वप्न ज्यों तू मंद-मंद
फूटी ऊषा जागरण छंद, (पृ. 130)

यहाँ कुल 18 घोष ध्वनियाँ प्रयुक्त हैं जिनमें पाँच बार 'न' तीन बार 'द', दो बार 'म', दो बार 'ज' तथा एक-एक बार 'ग', 'य', 'र', 'ण', 'त' का प्रयोग हुआ है। यहाँ म- न्- द- म- न्- द- न्- द की आवृत्ति के कारण ध्वनि स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो अग्रप्रस्तुत होकर रात्रि के स्वप्न के समान प्रातःकालीन जागरण के छंद की लय में धीरे-धीरे मुखरित होने, गुंजित होने का बोध कराती है। यहाँ 'म'

और 'न' के साथ 'द' ध्वनि सुखद भाव को व्यक्त करती है।

9. काँपी भी निज आलेक-भार

काँपा वन, काँपा दिक् प्रसाद (पृ. 130)

यहाँ कँ-प-कँ-प-कँ-प-कँ-प अल्प प्राण ध्वनियों के आवर्तन से ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो जागरण के छंद के मंद रव से वन और दिशाओं के काँप उठने, गुंजित हो उठने का बोध कराती है।

10. उमडता ऊर्ध्व को कल सलील

जल टलमल करता नील-नील (पृ. 130)

यहाँ क-ल, ल-ल, ज-ल, ट-ल, म-ल, न-ल, न-ल की आवृत्ति होने के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो जलधारा की सुंदर लीला को उजागर करती है। 'ल' में लालित्य का गुण है।

11. उन्मनन-गुंज सज हिला कुंज

तरु-पल्लव कलिदल पुंज-पुंज (पृ. 131)

यहाँ 22 घोष अल्पप्राण ध्वनियाँ प्रयुक्त हैं जिनमें 3 बार 'न', 4 बार ञ्, 4 बार ज, 5 बार ल का प्रयोग हुआ है। यहाँ न्-न-न, ञ्-ज, ञ्-ज-ञ्-ज की आवृत्ति के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो तरु-पल्लवों और कलिकाओं के कंपन और उनपर ध्वनित गुंजार को उजागर करती है। यहाँ नासिक्य ध्वनियाँ गुंजार को साकार करने में पूर्ण समर्थ है।

12. सुनकर, गुनकर चुपचाप रहा

कुछ भी न कहा, न अहो, न अहा

(पृ. 132)

यहाँ स-न, क-र,ग-न-क-र, च-प-च-प, र-ह-क-ह-अ-ह-अ-ह की प्रयुक्ति द्रष्टव्य है। यहाँ क, च, प, ह अघोष ध्वनियाँ है जो चुप्पी या मौन के अर्थ को उत्कर्ष प्रदान करती हैं। यहाँ चार बार प्रयुक्त 'ह' महाप्राण ध्वनि कवि के भीतर उठने वाली भावनाओं को उस गहन चुप्पी में भी ध्वनित कर उजागर करती है।

13. गाया स्वर्गीया-प्रिया-संग

भरता प्राणों में राग-रंग (पृ. 136)

यहाँ 24 बार अल्पप्राण और तीन बार महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग हुआ है। यहाँ पाँच बार 'ग', तीन बार 'य', छह बार 'र', छह बार नासिक्य अल्पप्राण घोष ध्वनियों के प्रयोग के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो प्रिया की सुखद-मादक-स्मृति, राग-रंग को उजागर करती है, सुख की अतिशयता को ध्वनित करती है।

14. वह लता वहीं की, जहाँ कली

तू खिली, स्नेह से हिली, पली (पृ. 137)

यहाँ क-ल, ख-ल, ह-ल, प-ल की प्रयुक्ति में 'ल' अल्पप्राण घोष ध्वनि के आवर्तन के कारण ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो लता और कली के लालित्य को व्यंजित करती है।

15. कन्ये गत कर्मों का अर्पण

कर करता मैं तेरा तर्पण

यहाँ कर-अर-कर-कर-तर पाँच बार एक ही ध्वनि-खंड की आवृत्ति हुई है। इसी तरह प-ण, प-ण की आवृत्ति भी द्रष्टव्य है। यह आवृत्ति अर्थ के उत्कर्ष में सहायक होती है।

विवेच्य कविता में कुल 3895 बार व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग हुआ है। इनमें 2275 बार घोष ध्वनियों का प्रयोग हुआ है। अघोष ध्वनियों की कुल संख्या 1620 है। 'र' घोष ध्वनि का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है 436 बार 'र', 350 बार 'क', 266 बार 'त', 265 बार 'न', 240 बार 'ह', 230 बार 'स', 206 बार 'म', 186 बार 'व', 185 बार 'प', 169 बार 'ल', 163 बार 'य', 120 बार 'द', 117 बार 'ज', 91 बार 'ग', 78 बार 'ब', 68 बार 'श', 64 बार 'भ', 64 बार 'च', 61 बार 'ण', 59 बार 'थ', 56 बार 'ख', 51 बार 'ध', 36 बार 'ह', 29 बार 'ड', 20 बार 'ट', 20 बार 'ष', 15 बार 'घ', 12 बार 'ञ', 12 बार 'ठ', 11 बार 'द' तथा 122 बार अनुस्वार और 43 बार अनुनासिक व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग हुआ है। डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला की ध्वनि-संरचना पर विचार करते हुए अपनी टिप्पणी दी है कि "निराला की ध्वनि-संरचना के मूलतंतु ग-ज-द हैं; इनमें सबसे शक्तिशाली 'ग' है[1]" किंतु विवेच्य कविता में सबसे शक्तिशाली 'र' है तथा र - क - त - न की आवृत्ति सर्वाधिक हुई है।

प्रस्तुत कविता में दीर्घ 'आ' स्वर ध्वनि सर्वाधिक आवर्तित है। पूरी कविता में 461 बार 'आ', 272 बार 'ए', 238 बार 'ई', 230 बार 'इ', 184 बार 'उ', 148 बार 'ओ', 67 बार 'ऊ', 61 बार 'ऐ', 12 बार 'औ' का प्रयोग हुआ है। डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन सही है कि "उन्हें (निराला के) दीर्घ 'आ' स्वर अत्यंत प्रिय है, 'ग' वर्ण की तरह इस स्वर को साधे बिना वह उदात्त स्तर तक पहुँच नहीं सकते। दुख, ग्लानि, वीरता आदि भावों के उदात्त चित्रण में इस स्वर की आवृत्ति अनिवार्य है। शृंगार आदि के कोमल भावों के चित्रण में यह अन्य स्वरों का सहायक सिद्ध होता है, उन्हें उदात्त के निकट ले जाता है। 'आ' के बाद 'ए' की ध्वनि उन्हें प्रिय है उसके बाद 'ई' की। 'उ' और 'ऐ' उससे कम, 'औ' का प्रायः अभाव है।[2]"

पूरी कविता में कुल 726 बार नासिक्य ध्वनियों की आवृत्ति हुई है जो कवि की पीड़ा को गहराने में सहायक है।

पूरी कविता 318 पंक्तियों में रचित है जिनमें 282 पंक्तियाँ ह्स्व मात्रा में अंत होती हैं और 36 पंक्तियाँ दीर्घ मात्रा में अंत होती है। ह्स्व मात्रा के इस आवर्तन से भी ध्वनि-स्तर की समतामूलक समांतरता प्राप्त होती है जो अग्रप्रस्तुति रूप में पुत्री के प्रति कवि की प्रेम- वात्सल्य-भावना और पुत्री की मृत्यु से उत्पन्न स्मृति-वेदना को व्यक्त करती है। पूरी कविता में 3895 बार प्रयुक्त व्यंजन-ध्वनियों में 2275 घोष ध्वनियाँ अग्र प्रस्तुत हुई हैं, जो कथ्य को तीव्रतर गहरी अर्थवत्ता प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामविलास शर्मा, 'निराला की साहित्य साधना', (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1981) पृष्ठ- 368

2. वही, पृष्ठ- 369

– सलेमपुर, सूर्यगढ़ा, लखीसराय, बिहार-811106

❑❑❑

स्वतंत्रतापूर्व हिंदी पत्रकारिता: एक अवलोकन

राहुल राज आर्यन

जिस समय से हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाता है ठीक वही समय हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत का भी है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो हिंदुस्तान में आधुनिक चेतना और पत्रकारिता दोनों एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। साहित्यिक पत्रकारिता का स्वतंत्रता-संग्राम से गहरा रिश्ता रहा है। आधुनिक जीवन-मूल्य और उसकी चेतना को विस्तृत फलक देने में पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज जबकि हर चीज, हर वस्तु, हर विचार, हर बहस, हर विमर्श 'माध्यम' आधारित है तो यह समझना अनिवार्य हो जाता है कि संपूर्ण भारतीय इतिहास ही नहीं बल्कि मानव सभ्यता के इतिहास में अपने गुणों और प्रभावों के कारण विशिष्ट स्थान रखने वाले भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान पत्रकारिता का स्वरूप और कलेवर कैसा रहा था।

आधुनिक चेतना के प्रसार ने सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह दिया कि बहस और विमर्श के केंद्र कुलीनतावादी, सामंतवादी दायरे से बाहर विस्थापित होने लगे। इस कार्य में पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने न केवल इस विमर्श के दायरे का विस्तार किया है बल्कि पाठक-वर्ग को बदलने का कार्य किया है। पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्य और विमर्श को जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य किया। भारतीय स्वाधीनता संग्राम जन-आंकाक्षाओं की अभिव्यक्ति का संगठित प्रयास था। इस प्रयास को तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने न केवल अभिव्यक्ति दी है बल्कि अनेक बार आगे बढ़कर उनका नेतृत्व किया है। भारत में लोकतंत्र की स्थापना और संस्थाओं का लोकतंत्रकरण भले ही 26 जनवरी 1950 से शुरू हुआ हो लेकिन जन भावनाओं का लोकतंत्रकरण काफी पहले शुरू हो गया था। जन भावनाओं के लोकतंत्रकरण और उनकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी स्वाधीनता संग्राम युगीन पत्रकारिता महत्वपूर्ण है।

स्पष्ट है कि साहित्य की विभिन्न विधाओं और अभिव्यक्ति के विविध रूपों के उद्‌भव और विकास में पत्र-पत्रिकाओं का अप्रतिम योगदान है। हिंदी की 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'ब्राह्मण', 'हिंदी प्रदीप', 'सरस्वती', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस', 'प्रभा', 'मतवाला', 'कल्पना', 'धर्मयुग' आदि पत्र-पत्रिकाओं का हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं के आविर्भाव और अभिव्यक्ति के लोकतंत्रकरण में महत्वपूर्ण योगदान है।

मानवीय अस्मिता को दुर्बल करने वाली किसी भी प्रकार की परतंत्रता, परवशता के विरुद्‌ध निर्भीकतापूर्वक आवाज उठाना पत्रकारिता का मुख्य उद्‌देश्य है। इस उद्‌देश्य की पूर्ति स्वतंत्र व स्वाधीन पत्रकारिता द्‌वारा ही संभव है। स्वाधीनता का तात्पर्य व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं दार्शनिक मूल्यों तथा शक्तियों के सहज, स्वाभाविक, स्वच्छंद, संयमित एवं सर्वांगीण विकास से है, जो राष्ट्रीय स्वाधीनता के बिना संभव नहीं और राष्ट्रीय स्वाधीनता पत्रकारिता की स्वाधीनता के बिना अपूर्ण है।

वर्तमान भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण का प्रत्यक्ष संबंध भारत के मुक्ति संग्राम से है। यह मुक्ति संग्राम भारतीय जनता और ब्रिटिश उपनिवेशवाद के हितों के

भाषा ISSN 0523-1418

बीच आधारभूत अंतर्विरोधों का परिणाम था। राष्ट्रीय आंदोलन की ऐतिहासिक प्रक्रिया में भारतीय जनता ने अपने को राष्ट्र के रूप में संगठित किया। दूसरे शब्दों में कहें तो राष्ट्रीय आंदोलन उभरते हुए राष्ट्र की प्रक्रिया का परिणाम और उस प्रक्रिया का सक्रिय कारण दोनों ही था। इस राष्ट्रीय आंदोलन के बहुआयामी प्रभाव को उत्पन्न करने व फैलाने में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

वस्तुतः स्वतंत्रतापूर्व की पत्रकारिता महज कुछ लिख देने, कुछ छाप देने या कुछ पूंजी अथवा नाम कमा लेने का उपक्रम नहीं है। यह विशुद्ध नई चेतना, नई आकांक्षा, नए सपनों से लबरेज है। आप चाहें इसे पुर्नजागरण कह लें, नवजागरण कह लें अथवा राष्ट्रीय जागरण। इसका सार यही रहेगा। अरविंद घोष के अनुसार, "नवजागरण वस्तुतः पुनर्जन्म है और पुनर्जन्म न केवल बुद्धि से, न पूर्ण आर्थिक समृद्धि से, न ही नीति या सिद्धांत से या न प्रशासनिक परिवर्तन से होता है, वह तो नया हृदय प्राप्त करने, त्याग की अग्नि में अपना सर्वस्व होम करने और माँ के गर्भ से जन्म लेने से होता है।"[1]

प्रारंभिक पत्रकारिता अर्थात् भारतेंदु से पूर्व अधिकतर पत्र-पत्रिकाएँ हिंदी-उर्दू में प्रकाशित होती थीं। यह तत्कालीन सामाजिक ताने-बाने के अनुरूप अभिव्यक्ति थी। सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम हिंदू-मुस्लिम नेताओं तथा जनता ने कंधे से कंधा मिलाकर लड़ा था। मो. अब्दुल कलाम के शब्दों में-

"सभी भारतीय, चाहे मुसलमान हो या हिंदू, हर बात को एक ही दृष्टिकोण से देखते थे और घटनाओं को एक ढंग से ही आंकते थे। सदियों तक इकट्ठे रहने के परिणामस्वरूप हिंदू-मुसलमानों के स्थायी संबंध हो गये थे।"[2]

उस सद्भावनापूर्ण परिवेश में ही स्वाभाविक था कि हिंदू-उर्दू पत्रकारिता भी संयुक्त रूप से होती। दोनों भाषाएँ तब तक, धार्मिक एवं सांप्रदायिक आधार पर नहीं बंटी थी। हिंदू-मुसलमान-दोनों ही हिंदी-उर्दू पत्रों का एक साथ संपादन तथा प्रकाशन करते थे।

यद्यपि अंग्रेज सरकार ने फारसी लिपि तथा उर्दू भाषा का संबंध इस्लाम धर्म एवं मुस्लिम संप्रदाय के साथ तथा हिंदी भाषा एवं देवनागरी लिपि का संबंध हिंदू धर्म तथा हिंदुओं के साथ जोड़ने का प्रयास किया था। लेकिन तब भी प्रतिक्रियास्वरूप पत्रों के हिंदी तथा उर्दू संस्करणों में भारत के प्राचीन सांस्कृतिक गौरव एवं ग्रंथों को प्रकाशित कर भारतीय जन-मानस में भारतीय संस्कृति के गौरव की महत्ता को प्रतिष्ठित किया।

इस काल में द्विभाषी पत्रों की लंबी शृंखला चली जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है-

सन्	पात्र का नाम	संपादक/प्रकाशक	स्थान	भाषा रूप
1847	ग्वालियर गजट	लक्ष्मनदास भट्नागर	ग्वालियर	हिंदी–उर्दू
1854	समाचार सुधा वर्षण	श्यामसुंदर जैन	कोलकाता	हिंदी–बांग्ला
1856	राजपूताना अखबार	कन्हैयालाल	जयुपर	हिंदी–उर्दू
1857	पयार्य अजादी	पं. अजीमुल्ला	दिल्ली	हिंदी–उर्दू
1864	प्रजाहित	पं. जवाहरलाल	प्रयाग	हिंदी–उर्दू
1865	तत्वबोधिनी	गुलाबशंकर	बरेली	हिंदी–उर्दू
1867	विद्यानिवास	वैंटराम शास्त्री	जम्मू	हिंदी–उर्दू
1873	जबलपुर समाचार	कृष्णराव	जबलपुर	हिंदी–संस्कृत
1875	काशी पत्रिका	बालेश्वर प्रसास	काशी	हिंदी–उर्दू
1876	हिंदू बांधव	पं. शिवनारायण	लाहौर	हिंदी–उर्दू
1883	हिंदुस्तानी	गंगाप्रसाद शर्मा	लखनऊ	हिंदी–उर्दू
1890	ब्राह्मण समाचार	प्रतापनारायण मिश्र	मुजफ्फरनगर	हिंदी–उर्दू
1897	भार्गव पत्रिका	गौरी शंकर	अजमेर	हिंदी–उर्दू
1898	रसिक वाटिका	ब्रजभूषण लाल	कानपुर	हिंदी–उर्दू
1898	रसिकमित्र	गुप्ता तथा पं. मनोहर लाल मिश्र	कानपुर	हिंदी–उर्दू[3]

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की असफलता से भारतीय जनमानस निराश और हतोत्साहित हो गया था। कंपनी का शासन अब ब्रिटिश संसद के हवाले था किंतु सरकारी नीति पूर्ववत् रही। समाचार पत्रों की स्वाधीनता पर पहले 'गैंगिग एक्ट' (1857) और बाद में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' (1878) से प्रहार किया गया। इस विषम परिस्थिति में भी भारतेंदु, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, केशवराम भट्ट, गोविंद नारायण मिश्र आदि ने जन-मानस में राष्ट्रीय चेतना को प्रवाहित रखा। 28 मार्च 1968 में प्रकाशित 'कविवचन सुधा' से भारतेंदु ने निर्भीक, निष्पक्ष, ठोस व सजग पत्रकारिता की आधारशिला स्थापित कर एक नए युग की नींव रखी। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में- "भारतेंदु ने 'कविवचन सुधा' के द्वारा हिंदी में निर्भीक पत्रकार-कला का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहले भी लोगों ने पत्र निकाले थे लेकिन उनमें से कोई इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए नहीं लड़ा था।"[4] कविवचन सुधा पत्रिका के महत्व पर रामविलास शर्मा ने लिखा है- "इस पत्रिका का महत्व हिंदी में राष्ट्रीय भावों को जाग्रत करने, हिंदी पत्रकारों को प्रेरणा देने तथा हिंदी भाषा और पत्रकारिता को सहज जातीय स्वरूप प्रदान कर पाठकों की अभिरुचि जाग्रत करने में हैं।"[5] भारतीय काल राष्ट्रीय स्वाभिमान की जागृति का काल है। गांधी जी के आगमन से लगभग तीन दशक पहले ही स्वदेशी की गूँज सुनाई पड़ती है- "हम लोग सर्वांतयामी, सर्वस्थल में वर्तमान सर्वदृष्टा और नित्य परमेश्वर को साक्ष्य मानकर यह नियम मानते हैं कि हम आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे।"[6] जिस साम्राज्यवादी इंगलैंड का कभी सूरज नहीं डूबता था उसके विरुद्ध उनकी लेखनी दहाड़ती हुई कहती है- "भाइयों! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोंक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो, भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे, वह उपाय करो।"[7] इसी प्रखरता को आगे 'हिंदी प्रदीप' ब्राह्मण, भारत मित्र, सार सुधानिधि, उचित वक्ता आदि पत्र-पत्रिकाओं ने आगे बताया।

अंग्रेजी शासन एंव शिक्षा नीति ने भारतीय सांस्कृतिक एकता को विभाजित कर अनेक प्रकार के विष फैलाने का काम किया था। लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति (1835 ई.) के दुष्प्रभाव से शनैः शनैः भारतीय सांस्कृतिक चेतना लुप्त हो रही थी। भारतेंदु के अंदर का पत्रकार कहता है- "हे देशवासियो! इस निद्रा से चौको... ये विद्या कुछ काम न आएगी"।[8]

विविध पत्र-पत्रिकाओं ने धार्मिक बुराईयों, कट्टरता आदि का खुलकर विरोध किया। आधुनिक चेतना से युक्त इस युग की पत्रकारिता के लिए धर्म बैंकुठ के माध्यम से ज्यादा राष्ट्रीय उत्थान, पारस्परिक प्रेम एवं सौहार्द तथा एकता की भावना का परिचायक था। 'सार सुधानिधि' (कोलकाता) में प्रकाशित धर्म विषय यह दृष्टिकोण वैज्ञानिक चेतना से अणुप्राणित है- "प्रकृति के उत्कर्ष साधन का नाम धर्म है- अतएव दोनों प्रकार के उत्कर्ष साधन का नाम धर्म है- अतएत दोनों प्रकार के उत्कर्ष करना ही मनुष्य का उचित कर्तव्य है।"[9] 21वीं सदी के टी आर पी लोलुप पत्रकारों को ऐसी पत्रकारिता से सीखना चाहिए।

भारतीय समाज दीर्घकाल तक पराधीनता और अंधकार में रहने के कारण अपने अस्तित्व को भूल चुका था। तत्समय की पत्रकारिता ने समाज से इस रुग्णता को निकालने का हर संभव प्रयास किया था। जातिगत भेद, पर्दा प्रथा, स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह का समर्थन, बाल-विवाह का नकार, दहेज प्रथा का विरोध, बाल शिक्षा को बढ़ावा, आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का प्रचार आदि के द्वारा उस समय की पत्रकारिता आज की पत्रकारिता के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करती है।

20वीं शदी के प्रारंभिक दशक में हिंदी साहित्य का नेतृत्व द्विवेदी जी और सरस्वती के हाथों में था। सरस्वती के साथ-साथ 'वंदेमातरम्', 'मराठा', 'केसरी', 'युगांतर', 'संध्या', भारत मित्र', 'विशाल भारत', 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस', 'जागरण', 'मतवाला', 'आज' आदि पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका रही है। राजनीतिक परिदृश्य तिलक, गोखले, गांधी, भगत सिंह, आजाद, नेहरू के प्रवेश से पहले ही उफान पर था। इन पत्र-पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय चेतना को और भी मुखर कर दिया। नवोदित मध्यवर्ग पाश्चात्य सामाजिक-राजनीतिक दर्शन को भारतीय

सांचे में ढाल रहे थे। लोकतंत्र में आस्था बढ़ती जा रही थी। इस पूरे समय में गांधी अनेक रूपों में हिंदी पत्रकारिता को प्रभावित कर रहे थे। चाहे स्वदेशी हो, स्वराज हो, असहयोग हो, अछूतोद्धार हो। सविनय अवज्ञा हो, ट्रस्टीशिप का सिद्धांत हो, हिंदी पत्रकारिता गांधी के प्रभाव में थी। 'प्रताप', 'कर्मवीर', 'वीणा', 'चाँद', 'मतवाला', 'माधुरी', 'हिमालय', 'जागरण', 'हंस', 'विशाल भारत' जैसी पत्र-पत्रिकाओं पर गांधीवादी स्वाधीनता आंदोलन का स्पष्ट प्रभाव था। मतवालों के संपादक ने आग्रह किया था- "यदि स्वतंत्रता के अभिलाषी हैं, अपने देश में स्वराज की प्रतिष्ठा चाहते हैं, तो तन-मन और धन से अपने नेता महात्मा गांधी के आदर्शों का पालन करना आरंभ कीजिए।"[10]

गांधी युग के हिंदी पत्रकारों के बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, शिवपूजन सहाय, झाबरमल शर्मा, लक्ष्मण नारायण गर्दे प्रमुख थे। 'आज' की एक-एक पंक्ति कभी-कभी हजार क्रांतिकारियों का काम कर जाती थी-

क्या सचमुच स्वराज चाहते हो?

क्या कांग्रेस के सदस्य बने?

क्या 'तिलक स्वराज-कोष' को दिया?

क्या चरखा चलाया?[11]

प्रेमचंद ने पहले 'स्वदेश', फिर 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस' और 'जागरण' के माध्यम से स्वराज और आजादी के मायनों को और भी व्यापक और जनोपयोगी बनाया। उन्होंने स्वराज को सिर्फ सत्ता परिवर्तन के उपक्रम बन जाने का अंदेशा आज से 80 वर्ष पहले 'हंस' में जताया था। प्रेमचंद का स्वराज आज भी कहीं खोया हुआ सा है, फर्क सिर्फ इतना है कि सत्ता की चाशनी में डूबे रीढ़विहीन आज के पत्रकार, संपादक का उनसे वास्ता नहीं।

स्पष्ट है, आजादीपूर्व की पत्रकारिता पेशा नहीं मिशन थी। निष्पक्ष, निर्भीक, निस्वार्थ पत्रकारिता ने अंग्रेजी राज का हर कदम पर मुकाबला किया। लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में आज की पत्रकारिता से 15 अगस्त 1947 को बाबूराव विष्णु पराड़कर द्वारा की गई यह प्रार्थना हमें बहुत कुछ कह जाती है-

कथनी और करनी में आया जो वैषम्य आज,

मानव के जीवन में अंधकार आज आया है।

स्वार्थ और भोगों की अति लालसा है भारत में,

त्याग की भावना को प्रायः सबने भुलाया है।[12]

सहायक सामग्री

1. ज्योतिष जोशी, साहित्यिक पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. कैलाश नाथ पांडेय, हिंदी पत्रकारिता संवाद और विमर्श, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. डॉ. कृष्णदेव 'अरविंद', हिंदी पत्रकारिता और स्वतंत्रता संग्राम, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

4. अनामी शरण बबल, प्रेमचंद की पत्रकारिता (समय, समाज, और साहित्य) भाग-2, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली।

5. डॉ. रत्नाकर पांडेय, हिंदी पत्रकारिता प्रेमचंद और हंस, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

6. मिनाक्षी सिंह, हिंदी पत्रकारिता का इतिहास, ओमेश पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

7. डॉ. देवीसिंह राठौर, डॉ. हेमलता राठौर, हिंदी पत्रकारिता की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वंदे मातरम्-साप्ताहिक, 23 अप्रैल, 1980 (से अनुवाद)।

2. अब्दुल कलाम आज़ाद, अट्ठारह सौ सत्तावन, भूमिका, पृष्ठ 16

3. स्रोत-हिंदी पत्रकारिता और स्वतंत्रता संग्राम, डॉ. देव अरविंद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 19-20

4. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृष्ठ 117

5. वही, पृष्ठ 117

6. 'कविवचन सुधा', 8 जून, 1871

7. 'कविवचन सुधा', 8 जून, 1874

8. हिंदी पत्रकारिता और स्वतंत्रता संग्राम, डॉ. कृष्णदेव अरविंद, पृष्ठ 54

9. 'सार सुधानिधि', 27 जनवरी, 1879, पृष्ठ 34-35

10. 'मतवाला', 21 मई 1924

11. 'आज', 27 जून 1921

12. संपादकः पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर, संपादकीय वक्तव्य, 'आज' 15 अगस्त, 1947

– मकान नं.-89, द्वितीय तल, गली नं.-06, भगत कॉलोनी, संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली-110084

❑❑❑

साहित्येतिहासकारों की दरिया विषयक उदासीनता

विवेक शर्मा

तय कौन करेगा।
नैतिक-अनैतिक के मानदंड।
वे जो आसीन हैं।
विशाल पदवियों पर।
या इतिहास के उलझे सूत्रों में निष्कर्ष ढूँढ़े जाएँगे।
यदि ऐसा है तो शायद...।
संदेह है मेरी नैतिकता पर।

हिंदी साहित्य का सूर्य जब परवान चढ़ा तो क्षितिज तो दैदिप्यमान हुआ किंतु इसके बरक्स अधिकांश भाग को उसकी प्रतिछाया ही मयस्सर हुई।

इतिहास और आलोचना के चश्में से हमने जाना कि इतिहास मुख्यत: विजेताओं का पक्षधर रहा है और पक्षधरता की छाप प्रत्येक युग एवं साहित्य पर किसी-न-किसी रूप में स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती रही है।

यदि हम अपना रुख पश्चिमी देशों की ओर करें तो पाएँगे कि पश्चिमी जगत ने 'White Man's BURDEN'[1] (रूडयार्ड किपलिंग द्वारा गठित मुहावरा) की जो वैचारिकी गढ़ी थी, उसका अंधानुकरण वहाँ के अधिकांश इतिहासकारों ने किया किंतु यह शगूफ़ा पश्चिमी देशों में अधिक विकसित न हो सका और जल्द ही इस विचारधारा को ध्वस्त करने पाश्चात्य विद्वान वाल्टर बेजहॉट का यह बयान आया-

"अंधानुकरण की संस्कृति दुनिया के अधिकांश समाजों में है किंतु स्वतंत्र चर्चा का वरदान कुछ ही समाजों को मिला है और आश्चर्य की बात नहीं है कि कुछ ही समाज विकास के रास्ते पर आगे बढ़ पाए हैं! जबकि बाकी नहीं।"[2]

हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा भी इससे अछूती न रह सकी।

इस ग्रहण की छाया हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा पर भी पड़ी। यही कारण है कि इतिहास लेखन की जो वैचारिकी विकसित हुई, उसमें कुछ कवि एवं आलोचक तो 'लाइमलाइट' के घेरे में जगमगाए किंतु अधिकतर परदे के पीछे ही रह गए।

ऐसे ही एक प्रमुख संत कवि दरिया साहब (बिहार वाले) हमारे शोध विषय के केंद्रीय बिंदु हैं।

हिंदी रीति संत काव्यधारा के प्रमुख व्यक्तित्व के बतौर संत दरिया साहब उस विशाल संत परंपरा (150 मठ, 600 साधु और लगभग 5000 भक्त) के आदि स्रोत हैं। जिसे 'दरियापंथी संप्रदाय' कहा जाता है। यह जीवित संत परंपरा आज भी बिहार की गलियों में धमनियों में लहू की बानिग बहती है और धरकंधा, तेलपा, डंसी तथा मिर्जापुर आदि के अधिकांश लोक-जन इस संत के भजनों में अपनी रोज़मर्रा की थकान मिटाने का ठौर पाते हैं।

यह खेद का विषय है कि हिंदी साहित्य के तथाकथित इतिहासकारों की लेखनी इस संत पर बिंदु मात्र ही स्थायित्व पा सकी।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के प्रारंभिक दौर में जब प्रथम इतिहास ग्रंथ अर्थात् गार्सा द तासी कृत 'इस्तवार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' का हिंदी

अनुवाद डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय द्वारा 'हिंदुई साहित्य का इतिहास' (1952 ई.) के रूप में प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने इसमें "783 कवियों का 'जीवनवृत्त' उकेरा। इस संपूर्ण ग्रंथ में संत दरिया साहब (बिहार वाले) को विशिष्ट स्थान देते हुए उन्होंने इस संत को 'नए आकाश पंथ'[3] के प्रवर्तक के रूप में स्थापित किया था किंतु इसके बाद की परंपरा के साहित्येतिहास-ग्रंथकारों ने इन्हें महत्व नहीं दिया। उदाहरणस्वरूप शिव सिंह सेंगर ने हिंदी भाषा के द्वितीय महत्वपूर्ण इतिहास ग्रंथ शिवसिंह सरोज[4] (1883 ई.) में कवि अवधेश से आरंभ करके कवि हुलास राम तक लगभग 838 कवियों के रूप में वृत्त-विस्तार किया है किंतु दरिया साहब यहाँ भी नदारद ही मिलते हैं।

इसी प्रकार डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने जिस समयकाल में 'द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' का हिंदी अनुवाद 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' के रूप में पाठकगण के सम्मुख प्रस्तुत किया तो उसमें 'रीतिकाव्य' शीर्षक के अंतर्गत केशवदास सनाढय मिसर (बुंदेलखंड वाले) से शुरू करके नाथ कवि तक समग्र परंपरा का बखान किया किंतु रीतिकालीन भक्तिधारा के संत कवि दरिया साहब सहित समस्त सरभंगपद संप्रदाय का कहीं भी ज़िक्र नहीं किया गया, और-तो-और अपनी पुस्तक में निहित अन्य राम कथाएँ[5] शीर्षक के अंतर्गत मानदास कृत 'रामचरित्र' से शुरू करके पूरनचंद जूथ कृत 'राम रहस्य रामायण' सदृश 'लघु रामचरित' कृतियों को तो स्थान दिया किंतु दरिया साहब कृत 'ज्ञान रत्न' रूपी विस्तृत राम काव्यात्मक ग्रंथ का वर्णन करना विस्मृत कर बैठे!

मिश्रबंधुओं ने इस कविवृत्त वर्णन के अभाव को समझा और चार-खंडों में मिश्रबंधु विनोद नामक इतिहास ग्रंथ की रचना की! इस संपूर्ण ग्रंथ में मिश्रबंधुओं द्वारा '4591 कवियों' का विस्तृत कविवृत्त प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने दरिया सागर[6] नाम से इस कवि के साहित्यिक महत्व को स्वीकार किया है।

विडंबना की स्थिति और अधिक जटिल उस समय बन गई जब इस कवि को हिंदी-साहित्य के 'प्रारंभिक कच्चे ढाँचे' में तो महत्वपूर्ण स्थान दिया गया किंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत सर्वश्रेष्ठ कच्चे ढाँचे के दायरे से बाहर कर दिया गया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ('हिंदी साहित्य का विकास') नाम से 1929 में 'हिंदी शब्दसागर' की भूमिका के रूप में प्रकाशित 'प्रकरण 3' के तहत 'रीतिकाल के अन्य कवि' शीर्षक के अंतर्गत 'छठा वर्ग' रीतिकालीन भक्त कवियों का निर्धारित किया और मात्र प्रथम ही पंक्ति में इन समस्त रीतिभक्त कवियों की उपेक्षा कर बैठे। "छठा वर्ग कुछ भक्त कवियों का है जिन्होंने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तों के ढंग पर गाए हैं।"[7]

एक दशक पश्चात् डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'[8] (1938 ई.) में इनके साहित्यिक योगदान को महत्व देते हुए 'दरियासागर' तथा 'ज्ञानदीपक' पर विस्तृत चर्चा की थी। किंतु अग्रसरित इतिहास परंपरा में इस कवि को क्रमशः उपर्युक्त स्थान न मिल सका।

आचार्य हजारी प्रयाद द्विवेदी ने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (1940 ई.) ग्रंथ में 'रीति-काव्य' शीर्षक के अंतर्गत 'स्वतंत्र उद्भावना शक्ति' के अभाव को सबसे अधिक खतरनाक बात स्वीकार किया है। साथ-ही-साथ एक प्रमुख शीर्षक पर विस्तृत लेखनी को भी कमलबद्ध किया है। वह शीर्षक है- 'स्वाधीन चिंता के प्रति अवज्ञा का भाव'[9] किंतु यह कृति भी रीतिभक्त कवि दरिया की चर्चा के अभाव की क्षतिपूर्ति नहीं कर पाती।

तत्पश्चात्, हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रथमतः दरिया साहब पर स्वतंत्र ग्रंथावली संपादन तथा आलोचनात्मक साहित्यिक ग्रंथ प्रकाशित करने का जीवट कार्य आचार्य धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री द्वारा 'दरिया ग्रंथावली : भाग 1, दरिया ग्रंथावली : भाग 2' तथा 'संत कवि दरिया : एक अनुशीलन' के रूप में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की मोहन प्रेस के सहयोग द्वारा पूर्ण किया गया।

इस अभाव की पूर्ति हेतु डॉ. भागीरथ मिश्र भी प्रयासरत दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा की महत्वाकांक्षी शोध परियोजना के तहत प्रकाशित 'हिंदी-साहित्य का बृहत् इतिहास : सातवाँ भाग'[10] (रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य पर आधारित) में संपादक

के बतौर इस कवि को उल्लेखनीय स्थान प्रदान किया था!

नागरी प्रचारिणी सभा की शोध-परियोजना पर कार्य करने के दौरान अवश्य साहित्य मर्मज्ञ डॉ. नगेंद्र का ध्यान इस ओर केंद्रित हुआ होगा। यह प्रमुख कारण भी रहा कि 'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास : साँतवा भाग' के प्रकाशनोपरांत, अगले ही वर्ष 1973 ई. में डॉ. नगेंद्र कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' प्रकाशित होता है। जिसमें डॉ. नगेंद्र ने संत दरिया पर विस्तृत टिप्पणी लिखी है-"बिहार वाले दरिया साहब प्रसिद्ध संत हुए हैं। इनका जन्म 1664 ई. और स्वर्गवास 1780 ई. में बताया जाता हैं। इनके छत्तीस शिष्य थे, जो बड़े प्रतिभाशाली थे और इनकी प्रतिष्ठा तथा यश के स्तंभ थे।"[11] डॉ. नगेंद्र ने संत दरिया पर कबीर का प्रभाव बताते हुए लिखा है कि-

निम्नलिखित पंक्तियों से इनकी विचारधारा का संकेत मिल जाता है और साथ में यह भी विदित हो जाता है कि ये कबीर से कितने प्रभावित थे-

भीतर मैलि चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है।

अवगति सुरति महल के भीतर, वाका पंथ न जोवै है।

जुगति बिना कोई भेद न पावै, साधु संगति का गेवै है।

कह दरिया कुटते बे गोदो, सीस पटकि का रोवै है।[12] "

डॉ. नगेंद्र द्वारा उद्धृत इस पद का महत्व प्रतिपादित करते हुए वर्ष 1991 में प्रकाशित पुस्तक हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल: रीतिकाल में डॉ. महेंद्र कुमार लिखते हैं- "निर्गुण ब्रह्म की उपासना का प्रतिपादन करने वाले प्रभावशाली संत दरिया साहब अपनी विपुल साहित्य-संपदा के कारण इस युग में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।[13] "

इस संपूर्ण परंपरा में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की पुस्तक उत्तरी भारत की संत-परंपरा एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसमें आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा 'दरियादासी संप्रदाय' पर विस्तृत लेख लिखा गया है और दरिया साहब को संत कबीरदास के अवतार के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है-

"इनके आविर्भाव की सूचना संत दादू दयाल ने एक सौ वर्ष पहले ही दे रखी थी। उन्होंने कह दिया था कि ये अनंत जीवों को इस संसार से तारने वाले होंगे।"[14]

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत तो स्वयं अपनी पुस्तक 'हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि' में स्पष्ट घोषित करते हैं कि- "बिहार वाले दरिया साहब का साहित्यिक महत्व मारवाड़ वाले दरिया साहब से अपेक्षाकृत अधिक है।"[15]

वर्ष 1975 में गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा निर्गुण संत साहित्य पर किए गए शोध कार्य के दौरान संत मनीषी आचार्य विष्णुदत्त राकेश द्वारा अपनी पुस्तक 'उत्तर भारत के निर्गुण पंथ साहित्य का इतिहास' में संत दरिया साहब के 'मुस्लिम धर्म परिवर्तन' का मसला भी उठाया गया था। वह लिखते हैं- "दरिया साहब का जन्म एक दर्जी के कुल में हुआ था जो पूर्णतया इस्लाम में परिवर्तित न हो पाया था और जिस पर हिंदुत्व की छाप सदा बनी रही। यही कारण है कि दरिया साहब हिंदुओं की परंपराओं और गाथाओं से पूर्णतया परिचित थे।"[16]

संत साहित्य मर्मज्ञ विद्वान डॉ. रामेश्वर प्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक 'संत वचनावली'[17], भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' ने 'संत साहित्य'[18] तथा डॉ. रवींद्र कुमार सिंह ने 'संत-काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता'[19] नामक साहित्य ग्रंथों के माध्यम से दरिया साहब के साहित्यिक महत्व को ध्यान में रखते हुए इनकी संपूर्ण रचनाओं के 'लघु-परिचय' तथा 'पद-संग्रह' अपने-अपने ग्रथों में उद्धृत किए हैं।

पं. दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव के निर्देशन में प्रकाशित 'मध्यकालीन हिंदी काव्य के परिप्रेक्ष्य में भक्ति आंदोलन'[20] नामक वृहद् इतिहास ग्रंथ में लेखक द्वारा 'दरियापंथी संप्रदाय' की ब्रह्म विषयक दृष्टि एवं प्रासंगिकता पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। ठीक यही कार्य आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपनी कृति 'भारतीय मध्य युगेर साधनार धारा'[21] के माध्यम से करने का प्रयास किया है। अत: इस प्रकार डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य क्षितिमोहन सेन, डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल तथा आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रभृत संत साहित्य के विद्वतजनों द्वारा अपने साहित्येतिहास ग्रंथों में संत दरिया साहब को विशिष्ट

स्थान प्रदान किया गया है। जो न्यायोचित भी जान पड़ता है।

शोध लेख के आरंभ में हम संकेत कर आए हैं कि 'भारत में सर्वप्रथम' आचार्य धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री द्वारा 1954 ई. में स्वतंत्र रूप से दरिया साहब के व्यक्तित्व को अपने शोध विषय का आधार बनाया गया। जब हम 'भारत में सर्वप्रथम' कह रहे हैं तो हमारा संकेत भारत के साथ ही अन्य देशों पर भी है। अभिप्राय यह है कि जो कार्य 'शास्त्री जी' बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की मोहन प्रेस द्वारा लगभग 6 दशक पूर्व 1954 ई. में करा रहे थे ठीक वही कार्य अमेरीकी हवाई विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रो. काशीनाथ उपाध्याय सन् 1987 ई. में स्वयं करते नज़र आते हैं। इस सूचि में और भी कई नाम हमें आजकल नज़र आ जाते हैं किंतु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहा जाए तो 'डुप्लिकेशन वर्क'[22] की चर्चा करना व्यर्थ है।

शोध कार्य के दौरान हमारी मुलाकात बिहार के रोहतास प्रांप्त में ज्योतिषाचार्य सत्यवान मौर्य से हुई थी। जिनका कार्य उनकी मौलिकता की बानगी स्वत: प्रस्तुत कर देता है। ज्योतिषाचार्य सत्यवान मौर्य के अथक प्रयासों के बावज़ूद, इस पंथ के साहित्य का अधिकांश भाग मठों व आश्रमों में ही बंद रह गया। इनके पुन: हस्तक्षेप पर कहा गया- "जो स्वत: ही प्रतिष्ठित हैं, उन्हें प्रतिष्ठित करने की क्या आवश्यकता?" अंतत: यह 'दरियासागर' की टीका में लिख बैठे- "यदि यह कहा जाए कि दरियापंथी रूढ़िवादिता को अपनाए हुए हैं तो कोई अतिश्योक्ति न होगी।"[23]

इस संदर्भ में एक पंक्ति (जो मूल ग्रंथों के मुख-पृष्ठ पर अंकित है।) इस प्रकार से है-

"केवल दरियापंथी साधू या भक्त ही इस ग्रंथ को पढ़ें, समझें, बूझें या रखें। दरियापंथी से इतर अनधिकृत व्यक्ति इसे 'बाँचे' या रखे तो उसे सौगंध। इस आदेश को न मानने वाला, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, फिरंगी हो या बैरागी, निस्संतान मरेगा अथवा विनाश को प्राप्त होगा / सतनाम / सतनाम //"[24]

दरिया साहब पर विस्तृत शोध कार्य की उदासीनता का एक प्रमुख कारण 'हस्तलिखित मूल ग्रंथों का अभाव' भी माना जाता रहा है।

इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए- डॉ. धमेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने अपने शोध ग्रंथ की भूमिका में साहित्येतिहासकारों की समस्याओं के संदर्भ में स्पष्ट लिखा था- "परंतु हस्तलिखित ग्रंथों की मूल निधि के अभाव में संत दरिया के इन सिद्धांतों की उपयुक्त व्याख्या करने अथवा उनके जीवन और उनकी कृतियों का विशद विवेचन करने में समर्थ न हो सके।"[25]

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'हिंदुई साहित्य का इतिहास' में इस मत को इस रूप में कहा था- "बुकानन साहब ने ये ग्रंथ देखे थे, किंतु वे उन्हें प्राप्त नहीं कर सके क्योंकि यह लोग उन्हें पवित्र समझते हैं।"[26]

इतिहासकारों की उदासीनता का एक दूसरा बड़ा कारण हम इतिहासकारों द्वारा वैश्विक परिदृश्य पर किए गए दरिया विषयक शोधकार्यों की अनदेखी को अधिक मानते हैं। उदाहरणस्वरूप शोध के दौरान साहित्यिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथों का तो बखूबी प्रयोग किया गया किंतु इसके इतर किसी भी इतिहासकार द्वारा संत कवि दरिया पर अन्य देशों में हुए शोध-कार्यों (प्रमुखत: अमरिकी हवाई विश्वविद्यालय अथवा ऑस्ट्रेलियन नैशनल यूनिवर्सिटी) का गहन विश्लेषण व उल्लेख नहीं किया गया। और-तो-और दरिया साहब पर लिखित अंग्रेजी लेख- 'जर्नी अगेंस्ट वर्डली करंटस्', 'पाथ टू फ्रीडम' आज तक अनुवाद की बाट जोह रहे हैं। डॉ. डोमन के दरिया विषयक लेख तो अब तक साहित्येतिहासकारों की आलोचना का विषय भी नहीं बन सके हैं।

यह मत सर्वविदित है कि- दुर्बलता को दुलारने वाली प्रतिभा अत्यंत दुर्लभ होती है। अस्तु, संत परंपरा के जिस विशाल वंशवृक्ष के अछूते पुष्पों के रक्षण का दायित्व जिन श्रेष्ठ साहित्य मनीषी- साहित्येतिहासकारों के रूप में लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, शिव सिंह सेंगर, किशोरीलाल गुप्त, मिश्रबंधु, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री, डॉ. नगेंद्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, आचार्य महेंद्र कुमार, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, आचार्य क्षितिमोहन सेन, डॉ. गोविंद त्रिगुणायत तथा प्रकांड दर्शनशास्त्री डॉ. काशीनाथ उपाध्याय ('संत दरिया साहब' ग्रंथ के रचनाकार/हवाई विश्वविद्यालय, अमरिका)[27] द्वारा संत दरिया साहब (बिहार वाले) को हिंदी साहित्येतिहास परंपरा में विशिष्ट स्थान प्रदान-कर प्रस्तुत

किया गया था। वर्तमान समय में, उसे हम समग्र मूल ग्रंथों की उपस्थिति में प्रथमतः साकार रूप देने हेतु निरंतर प्रयासरत हैं ताकि इस विशिष्ट एवं समृद्ध संत परंपरा के कुछ चुनिंदा 'संत-पुष्प' साहित्येतिहासकारों की उदासीनता का ग्रास न बन जाएँ। अपितु इसकी अजस्र निर्मल धारा 'प्रवाह-स्वरूप' निरंतर अपने अमरत्व एवं समृद्धि को प्राप्त करती रहे....।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कल्चर एंड इंपेरियलिज्मः एडवर्ड डब्ल्यू. सेड : विंटेज बुक्स् : प्रथम संस्करण, जून 1994; न्यूयार्क; पृष्ठ 163

2. भारतीय इनकम टैक्स की कहानी : मिलिंद संगोराम; प्रथम संस्करण : 2016; प्रभाव प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ 27

3. हिंदुई साहित्य का इतिहास : गार्सां द तासीः लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (अनुवाद); प्रथम संस्करण : 1953; हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 105

4. शिव सिंह सरोज : शिव सिंह सेंगर; प्रथम संस्करण 1883; नवल किशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित; लखनऊ, पृष्ठ 105

5. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास : डॉ. किशोरीलाल गुप्त; प्रथम संस्करण : 1957; हिंदी प्रचारक पुस्तकालय; वाराणसी, पृष्ठ 144

6. मिश्रबंधु-विनोद : मिश्रबंधु; प्रथम संस्करण : 1913 ई.; गंगा पुस्तक माला; लखनऊ, पृष्ठ 224

7. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल; प्रथम संस्करण : 2002; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 223

8. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ. रामकुमार वर्मा; प्रथम संस्करण : 1938 ई.; रामनारायण लाल प्रकाशन; इलाहाबाद पृष्ठ 281

9. हिंदी साहित्य की भूमिका : हजारी प्रसाद द्विवेदी; प्रथम संस्करण : 1940; हिंदी-ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बंबई, पृष्ठ 125

10. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास : साँतवा भाग (रीतिकाल : रीतिमुक्त) : डॉ. भगीरथ मिश्र; प्रथम संस्करण : 1972; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

11. हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेंद्र; प्रथम संस्करण : 1973; मयूर पेपर बैक्स; दिल्ली, पृष्ठ 345

12. हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेंद्र; प्रथम संस्करण : 1973; मयूर पेपर बैक्स; दिल्ली, आवृत्ति-पृष्ठ 345

13. हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल : रीतिकालः डॉ. महेंद्र कुमार; तृतीय संस्करण : 1991; आर्य बुक डिपो; नई दिल्ली, पृष्ठ 214

14. उत्तरी भारत की संत-परंपरा : आचार्य परशुराम चतुर्वेदी; तृतीय संस्करण : 1972; भारती भंडार लीडर प्रेस; इलाहाबाद, पृष्ठ 651

15. हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि : डॉ. गोविंद त्रिगुणायत; प्रथम संस्करण : 1961; साहित्य निकेतन; कानपुर, पृष्ठ 47

16. उत्तर भारत के निर्गुण पंथ साहित्य का इतिहास : डॉ. विष्णुदत्त राकेश; प्रथम संस्करण : 1975; साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड; इलाहाबाद, पृष्ठ 175

17. संत-वचनावली : डॉ. रामेश्वर प्रसाद सिंह; प्रथम संस्करण : 1986; अनुपम प्रकाशन; पटना, पृष्ठ 307-315

18. संत-साहित्य : भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'; द्वितीय संस्करण : 1956; ग्रंथमाला-प्रकाशन; पटना पृष्ठ 258-262

19. संत-काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता : डॉ. रवींद्र कुमार सिंह; प्रथम संस्करण : 1994; वाणी प्रकाशन; नई दिल्ली, पृष्ठ 93-98

20. मध्यकालीन हिंदी काव्य के परिप्रेक्ष्य में भक्ति आंदोलन (भाग-2) : दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव; प्रथम संस्करण : 2009; ईस्टर्न बुक लिंकर्स; दिल्ली; पृष्ठ 474-494

21. भरतीय मध्य युगेर साधनार धारा : आचार्य क्षितिमोहन सेन; प्रथम संस्करण : 1957; किताब महल; इलाहाबाद, पृष्ठ 239

22. हिंदी में शोध कार्य : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित लेख; अनुसंधान का स्वरूप : डॉ. सावित्री सिन्हा (पुस्तक में संकलित), पृष्ठ 13

23. दरिया साहब (बिहार) के काव्य में भक्ति और जीवन दर्शन : ज्योतिषाचार्य सत्यवान मौर्य; प्रथम संस्करण : 2011; सद्गुरु दरिया आश्रम, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 69

24. ब्रह्म चैतन्य टीका : ज्योतिषाचार्य सत्यवान मौर्य; प्रथम संस्करण : 1998; सद्गुरु दरिया आश्रम, उत्तर प्रदेश, मुख-पृष्ठ

25. संत कवि दरिया : एक अनुशीलन : डॉ. धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री; प्रथम संस्करण : 1954; बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्; मोहन प्रेस; पटना, पृष्ठ 2

26. हिंदुई साहित्य का इतिहास : गार्सां द तासी : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (अनुवादक); प्रथम संस्करण : 1953, हिंदुस्तानी अकादमी; इलाहाबाद, पृष्ठ 106

27. संत दरिया साहब (बिहार वाले) : डॉ. काशीनाथ उपाध्याय; प्रथम संस्करण : 1992; राधास्वामी सत्संग ब्यास; पंजाब, प्राक्कथन-भाग

– बी-1911, स्ट्रीट नं.-26/7, 2nd पुश्ता, सरकुलर रोड, सोनिया विहार, दिल्ली-110090

❑❑❑

ममता

जयशंकर प्रसाद

1

रोहतास-दुर्ग के प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गंभीर प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिए, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास-दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिए कुछ अभाव होना असंभव था, परंतु वह विधवा थी- हिंदू-विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी है- तब उसकी विडंबना का कहाँ अंत था?

चूड़ामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कल-नाद में अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेह-पालिता पुत्री के लिए क्या करें, यह स्थिर न कर सकते थे। लौटकर बाहर चले गए। ऐसा प्रायः होता, पर आज मंत्री के मन में बड़ी दुश्चिंता थी। पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास आए। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिए हुए खड़े थे; कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन ममता ने घूम कर देखा। मंत्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रखकर चले गए।

ममता ने पूछा- "यह क्या है, पिता जी?"

"तेरे लिए बेटी! उपहार है।"- कहकर चूड़ामणि ने उसका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली संध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी-

"इतना स्वर्ण! यहाँ कहाँ से आया?"

"चुप रहो ममता, यह तुम्हारे लिए है!"

"तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया? पिता जी यह अनर्थ है, अर्थ नहीं। लौटा दीजिए। पिता जी! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे?"

"इस पतनोन्मुख प्राचीन सामंत-वंश का अंत समीप है, बेटी! किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर सकता है; उस दिन मंत्रित्व न रहेगा, तब के लिए बेटी!"

"हे भगवान! तब के लिए! विपद के लिए! इतना आयोजन! परम पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस! पिता जी, क्या भीख न मिलेगी? क्या कोई हिंदू भू-पृष्ठ पर न बचा रह जाएगा, जो ब्राह्मण को दो मुठ्ठी अन्न दे सके? यह असंभव है। फेर दीजिए पिता जी, मैं काँप रही हूँ- इसकी चमक आँखों को अंधा बना रही है।"

"मूर्ख है"- कहकर चूड़ामणि चले गए।

दूसरे दिन जब डोलियों का ताँता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण-मंत्री चूड़ामणि का हृदय धक्-धक् करने लगा। वह अपने को रोक न सका। उसने जाकर रोहिताश्व दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा। पठानों ने कहा- "यह महिलाओं का अपमान करना है।"

बात बढ़ गई। तलवारें खिंचीं, ब्राह्मण वहीं मारा गया और राजा-रानी और कोष सब छली शेरशाह के

हाथ पड़े; निकल गई ममता। डोली में भरे हुए पठान-सैनिक दुर्ग भर में फैल गए, पर ममता न मिली।

2

काशी के उत्तर धर्मचक्र विहार, मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खंडहर था। भग्न चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीर, ईंटों के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म की चंद्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।

जहाँ पंचवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने के लिए पहले मिले थे, उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी-

"अनन्याश्चिन्तयन्तो माँ ये जनाः पर्युपासते....."

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मंद प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बंद करना चाहा। परंतु उस व्यक्ति ने कहा- "माता! मुझे आश्रय चाहिए।"

"तुम कौन हो?"- स्त्री ने पूछा।

"मैं मुगल हूँ। चौसा-युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।"

"क्या शेरशाह से?"- स्त्री ने अपने ओठ काट लिए।

"हाँ, माता!"

"परंतु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिंब, तुम्हारे मुख पर भी है! सैनिक! मेरी कुटी में स्थान नहीं। जाओ, कहीं दूसरा आश्रय खोज लो।"

"गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है-इतना थका हुआ हूँ-इतना!" कहते-कहते वह व्यक्ति धम-से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्मांड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई! उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी- "ये सब विधर्मी दया के पात्र नहीं- मेरे पिता का वध करने वाले आततायी!" घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा- "माता! तो फिर मैं चला जाऊँ?"

स्त्री विचार कर रही थी- "मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म-अतिथिदेव की उपासना-का पालन करना चाहिए। परंतु यहाँ...नहीं-नहीं ये सब विधर्मी दया के पात्र नहीं। परंतु यह दया तो नहीं .... कर्तव्य करना है। तब?"

मुगल अपनी तलवार टेककर खड़ा हुआ। ममता ने कहा- "क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो; ठहरो।"

"छल! नहीं, तब नहीं-स्त्री! जाता हूँ, तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा? जाता हूँ। भाग्य का खेल है।"

ममता ने मन में कहा- "यहाँ कौन दुर्ग है! यही झोपड़ी न; जो चाहे ले-ले, मुझे तो अपना कर्तव्य करना पड़ेगा।" वह बाहर चली आई और मुगल से बोली- "जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ। मैं ब्राह्मण-कुमारी हूँ; सब अपना धर्म छोड़ दें, तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ?" मुगल ने चंद्रमा के मंद प्रकाश में वह महिमामय मुखमंडल देखा, उसने मन-ही-मन नमस्कार किया। ममता पास की टूटी हुई दीवारों में चली गई। भीतर, थके पथिक ने झोंपड़ी में विश्राम किया।

प्रभात में खंडहर की संधि से ममता ने देखा, सैकड़ों अश्वारोही उस प्रांत में घूम रहे हैं। वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी।

अब उस झोंपड़ी से निकलकर उस पथिक ने कहा- "मिरजा! मैं यहाँ हूँ।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार-ध्वनि से वह प्रांत गूँज उठा। ममता अधिक भयभीत हुई। पथिक ने कहा- "वह स्त्री कहाँ है? उसे खोज निकालो।" ममता छिपने के लिए अधिक सचेष्ट हुई। वह मृग-दाव में चली गई। दिन-भर उसमें से न निकली। संध्या में जब उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ, तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा है- "मिरजा! उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में यहाँ विश्राम पाया था। यह स्थान भूलना मत।"- इसके बाद वे चले गए।

चौसा के मुगल-पठान-युद्ध को बहुत दिन बीत गए। ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है। वह अपनी झोंपड़ी में एक दिन पड़ी थी। शीतकाल का प्रभात था। उसका जीर्ण-कंकाल खाँसी से गूँज रहा था। ममता की सेवा के लिए गाँव की दो-तीन स्त्रियाँ उसे घेर कर बैठी

थीं; क्योंकि वह आजीवन सबके सुख-दुख की सहभागिनी रही।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया। सहसा एक अश्वारोही उसी झोपड़ी के द्वार पर दिखाई पड़ा। वह अपनी धुन में कहने लगा- "मिरजा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिए। वह बुढ़िया मर गई होगी, अब किससे पूछूँ कि एक दिन शहंशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई!"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा- "उसे बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक-रुककर कहा- "मैं नहीं जानती कि वह शहंशाह था, या साधारण मुगल पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा। मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था! भगवान् ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल, मैं अपने चिर-विश्राम-गृह में जाती हूँ!"

वह अश्वारोही अवाक खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पक्षी अनंत में उड़ गए।

वहाँ एक अष्टकोण मंदिर बना और उस पर शिलालेख लगाया गया- "सातों देश के नरेश हुमायूँ ने एक दिन यहाँ विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगनचुंबी मंदिर बनाया।"

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं।

❑❑❑

लट्टू की माँ

मनीष कुमार सिंह

बच्चों से बचपन छीना जा सकता है पर बचपना नहीं। जामुन के पेड़ के नीचे बनी झुग्गी के बाहर तीन बच्चे पकड़ा-पकड़ी खेल रहे थे। पक्षियों की तरह चहचहाकर नाचते हुए बोल रहे थे। तोता-मैना जामुन गिरा दे। लेकिन जामुन भला ऐसे कैसे गिर जाएगा। पहले के गिरे हुए जामुन बीने जा चुके थे। सबसे छोटा तीन साल का था। दो लड़कियाँ क्रमशः सात और दस की होगीं। उनका कलरव सुनकर पास में चूल्हा जलाती माँ मुस्कुराने लगी। पानी की बाल्टी पर एक कौआ आकर बैठ गया। कई रोज से सूखे पड़े सरकारी नल से बूँद-बूँद पानी आँसू की तरह टपक रहा था। पीने और खाना पकाने के लिए सुबह-शाम पानी चाहिए। कौआ को उड़ाने की बजाय आटे की एक लोई फेंक कर माँ बगल की झाड़ी में फैलाए कपड़े उठाने के लिए आवाज देने लगी। बड़ी लड़की उसकी बात सुनकर कपड़े उठाने लगी।

नाम कुछ और था लेकिन पूरे-मुहल्ले में लट्टू की माँ के नाम से जानी जाती थी। लट्टू यानी उसका छोटा बेटा।

झुग्गियों का एक झुंड खाली प्लॉटों में अवस्थित था। आसपास अज्ञातकुलशील पेड़-पौधों और झाड़ियों का झुरमुट बन गया था। दिन भर बच्चे इनके बीच खेलते और कुछ खाने की चीज ढूँढ़ते। कुदरत की हर चीज को स्त्रीलिंग या पुलिंग में नहीं बाँटा जा सकता है। कुछ वनस्पतियाँ, खटमिट्ठे फल और झरबेरियाँ बालरूप होते हैं। निम्मी जरा लंबी थी। टहनियों पर लगे फल को उचककर या कंटीली झाड़ी में एकाध खरोंच पाकर भी आधे पके अज्ञात गोत्र का फल तोड़कर वह भाई-बहन में बाँटने लगी। खुले आसमान के नीचे बच्चों ने अपना खजाना सजाया था। चमकीले पत्थर, चिड़ियों के पंख, कंचे वगैरह पेड़ के नीचे गड्ढे में रखे हुए थे। यह मुक्ताकामी संग्रहालय तीनों की साझी संपत्ति थी।

उस रोज झुग्गी से जोर-जोर से लड़ाई-झगड़े की आवाज आती रही। आज फिर उसका मर्द शराब पीकर लड़ रहा था। पति लड़ाई में अक्सर हाथ उठा देता। लट्टू की माँ अच्छी कद-काठी की स्त्री थी। शराबी कमजोर होता है लेकिन फिर भी मर्द का हाथ है। जिन घरों में वह काम करती थी उसके बाशिंदों ने उसे कभी-कभार चोटिल देखकर हाल-चाल पूछा। वह कड़े दिल की थी। यह बताने में कभी गुरेज नहीं किया कि ये चोट पति के द्वारा पहुँचाई गई है लेकिन आँखों से आँसू या जबान पर दर्द जैसी कोई बात नहीं छलकी। औरतों ने भी कहानी में ज्यादा मजा न मिलने पर मामले की बारीकी में घुसना ठीक नहीं समझा।

"भाभी जी अगले महीने से पगार बढ़ा देना। मेरा मर्द कहता है कि इतने पैसे में काम करने से अच्छा है कि तू घर बैठकर चूल्हा-चौका संभाल। मैं कामकाज करने के लिए काफी हूँ।" बाद में यह भेद खुला कि इस वक्तव्य के पीछे मर्द का पुरुषार्थ नहीं बल्कि पति का उसके चाल-चलन पर शक बोल रहा है। फ्लैट में रहने वाली स्त्रियों ने लट्टू की माँ के भीरूपन की समवेत स्वर में निंदा की।

भाषा ISSN 0523-1418

दो घरों से काम छोड़ने की वजह छह महीने के भीतर पगार बढ़ाने की अनुचित माँग थी।

बर्तन धोते हुए उसे रसोई में मुँह चलाते देखकर घर की मालकिन ने पूछा, "क्या बात है?"

"मेमसाहब मुझे सुपारी का शौक है। इससे पहले भी लोगों ने पूछा है। हम तो मुँह खोलकर भी दिखा देते हैं। कहीं कोई यह न सोचे कि रसोई में कुछ चुराकर खा रही है।"

"तू अपना मिजाज बदल। लोग तुझसे परेशान हो गए हैं।" एक नरमदिल महिला ने उसे परामर्श दिया।

दो दिन बात संभ्रांत स्त्री को अपनी कामवाली का सच मालूम हुआ। "भाभी जी मेरा मर्द कहता है कि आपका मर्द मुझ पर गलत नजर रखता है। मुझसे आपके घर का काम छोड़ने को कह रहा है।"

इस प्रकार के वचन सुनकर उस भली औरत को चक्कर आ गया। तनिक प्रकृतिस्थ होकर बोली, "तेरा मर्द पागल तो नहीं है?"

"भाभी जी वो गलत बोलता है लेकिन है तो आखिर मेरा मर्द। उसे नाराज करके कहाँ जाऊँगी। इसलिए आपके यहाँ काम नहीं कर सकती।"

अनपढ़ औरत से क्या बहस करना।

एक दिन अशुभ समाचार आया। लट्टू की माँ का पति शराब में धुत मोटरसाइकिल पर पीछे बैठे-बैठे सड़क पर लुढ़क गया। पीछे से आने वाली गाड़ी ने उसे रौंद डाला। घटनास्थल पर ही उसकी मौत हो गई। लोगों ने अनुमान लगाया कि वह अपने नशेड़ी साथी के साथ शराब पीकर लौट रहा होगा।

अक्लमंद स्त्री ने जिद्द करके उसका बीमा कर रखा था। कुछ दिनों की दौड़-धूप के बाद पैसा मिल गया। पति के व्यसनी होने के कारण मालमत्ता नदारद था। घूँघट काढ़ने की कोशिश करो तो पीठ दिखने लगेगी। मध्यमवर्ग के संभ्रांत लोगों में अल्पकाल के लिए उसके प्रति सहानुभूति की लहर फैल गई। बेचारी कैसे घर-परिवार चलाएगी? पति-पत्नी में से किसी के न रहने पर परिवार टूटी गाड़ी जैसा हो जाता है। जिंदगी चलती नहीं बस घिसटती है। पढ़े-लिखे समाज में अकेली माँ या अकेले पिता को घर चलाने में नानी याद आ जाती है।

वह नरमदिल महिला के घर गई। "अरी अब क्या लेने आई है?" पहले मन किया कि दरवाजे से लौटा दे लेकिन इंसानियत के वास्ते अंदर बुलाया। आखिर पढ़े-लिखे होने का कुछ तो फर्क पड़ता है। रोने-धोने लगी तो उसने उसे कुछ पैसे पकड़ाए। "नहीं भाभी जी ये नहीं ले पाऊँगी।" शायद बस इंसानी हमदर्दी की तलाश में आई थी। अंत में जिद करके उसने लट्टू की माँ को बच्चों का वास्ता देकर खाने की कुछ चीजें दीं।

मेन मार्केट में लट्टू की माँ ने फल-सब्जी का ठेला लगाना शुरू कर दिया। आज के जमाने में भी औरतों में कस्बाई दया-धर्म मौजूद है। फ्लैट में रहने से क्या हुआ? एकाध परिचित महिलाओं ने पूछा। अरी तू यहाँ...। "मेमसाहब बर्तन-पोछा से अच्छा अपना काम है। इसमें अपनी मर्जी चलती है।" आगे बढ़ गई महिलाओं को उसकी हँसी सुनाई दी। "बाजार में काम करने पर चर्बी ज्यादा गलती है। घर के काम में वो बात नहीं।"

आज के बाद कोई इसे अपने यहाँ काम पर नहीं रखेगा। यह लाख कहेगी तो भी नहीं।

घर लौटने पर दोनों बेटियों ने रुआंसी होकर यह बताया कि लट्टू एक बड़ी गाड़ी के नीचे आते-आते बचा। आसपास के राहगीरों की साँस धक् से रह गई। वह अपनी रुलाई रोककर सोचने लगी कि बच्चों की हिफाजत ज्यादा जरूरी है या उनकी खातिर रोटी का बंदोबस्त।

शाम को खाने की तैयारी करते वक्त चूल्हे में आग पकड़ नहीं पा रही थी। बुझे चूल्हे में बार-बार फूँक मारने से आँखें कड़वे धुँए से गीली हो गईं। अधजली लकड़ियों से निकलते धुँए जैसी मरणासन्न इच्छाओं के पूरा होने की संभावना न होने पर भी उम्मीद कौन छोड़ता है। वह लगातार कोशिश कर रही थी। पीछे कोई आकर कब खड़ा हो गया उसे पता नहीं चला। कुछ दूर झुग्गी डालकर रहने वाला देवर था। उसका वर्तुलाकार मुख स्थूल उदर व बृहदाकार कटि से

मेल खा रहा था। "चल छोड़ दे ये झंझट। मेरे पास गैस स्टोव है। आगे से खाना उस पर पकाना।"

उसे सकुचाई देखकर वह आगे बोला, "मिल-जुल कर रहेंगे तो बच्चों की देखभाल हो जाएगी।"

गैस स्टोव जलाकर वह जल्दी-जल्दी रोटी सेंकने लगी। देवर यह देखकर हँसने लगा, "इतनी जल्दी किस बात की है।"

"वो बच्चों को भूख लगी है।"

देवर ने जैसे उसकी बात सुनी नहीं। "कुछ काम मंद आँच पर ही होते हैं। जल्दबाजी करने से जायका खराब हो जाता है।"

नादान से नादान मुर्गा भी भरी दोपहर में बाँग नहीं देता है। वह सब समझ रही थी लेकिन मरती क्या न करती।

अगले दिन देवर ने लट्टू को गोद में उठाकर कहा, "बिल्कुल भईया से शक्ल मिलती है।" बिस्कुट का पैकेट देकर बोला, "सब मिलकर खाना।" वह बस इतने पर खुश हो गई।

"आज खाना मिलकर खाएँगे।" देवर जरा इधर-उधर नजर दौड़ाकर बिना किसी को संबोधित किए बोला। यह सुनकर वह पुलककर स्टोव जलाने चली गई। जब स्टोव पर पलक झपकते नीली आँच आई तो फूलती हुई रोटी मानो हँस रही थी। हाथ के थपेड़े से आटे की लोई को रोटी का आकार देकर वह तवे पर डालती जाती। आज जमीन पर दरी बिछाकर बच्चों को खिलाते हुए वह बार-बार उन्हें और खाने को कह रही थी। "तूने फिर आधी रोटी छोड़ दी? चल निम्मी तू थोड़ी-सी दाल और ले। कल कढ़ी बनाऊँगी फिर देखना बिना पूछे कितनी रोटी खाएगी।"

निम्मी अपनी छोटी बहन झुप्पा की ओर इशारा करके बोली "माँ यह कह रही है कि मुझे खाने के लिए परांठा चाहिए।" झुप्पा माँ की ओर टुकुर-टुकुर देखकर मुस्कुराने का प्रयास कह रही थी।

"चल किसी दिन बना दूगी।" उसने वादा किया लेकिन तारीख नहीं बताई। जितना बड़ा हवन कुंड होगा समिधा उतनी लगेगी।

देवर ने टोका, "तुम भी खाओ। बिना भरपेट खाए कैसे काम करोगी?" वह खाने के साथ लगातार उसे घूर भी रहा था।

झुप्पा झुग्गी के अंदर से गत्ते का एक पुराना डिब्बा गाड़ी बनाती हुई खींचकर लाई। डिब्बे से चूहे के नवजात शिशु बाहर जा गिरे। धूप में असहाय पड़े उन जीवों को देखकर तार पर सतर्क बैठे कागों की लार टपकने लगी। निम्मी फुर्ती से उसके हाथ से गत्ते का डिब्बा लेकर उसमें नन्हें चूहों को रखने लगी। "चल छोड़। डिब्बे को अंदर रख दे।"

बात झुग्गियों से ही फैली। इसका अपने देवर से संबंध है। इस औरत ने अच्छी माया जोड़ी है। देवर देह और माया दोनों हथियाना चाहता है। यह औरत भी कौन सी दूध की धुली है। पहल उसी ने की होगी। जाने दो। पराए मामले में हम क्यों पड़े। हर कोई ऑफ दी रिकार्ड अत्यंत गंभीर होकर निहायत अगंभीर गुफ्तगू में लगा हुआ था। हालाँकि अभी भी ज्यादातार लोगों की सहानुभूति उसके साथ थी लेकिन कॉलोनी के कतिपय जानकार के विचार नितांत अलग थे। ऊपरी मंजिल पर रहने वाले नीचे सड़क पर खड़े ठेले वाले से थैला लटकाकर सब्जी ले रहे थे। रस्सी खींचते समय वे पतंग की डोर लपेटते हुए प्रतीत हो रहे थे। सामने रहने वाले सज्जन से नयनाचार होने पर सामयिक विषयों पर संवाद प्रारंभ हुआ। यह सर्वसम्मति बनी कि हिंसा मृगया की शिकार स्वयं एक धुरंधर खिलाड़ी बन गई है।

"दुनिया-समाज जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गया है।" देवर के स्वर में हमदर्दी के साथ आश्चर्यजनक रूप से सामान्यतः मध्यवर्ग में पाए जाने वाले बौद्धिकता का पुट भी था। "भईया बड़े अच्छे थे लेकिन मुर्दा चाहे जितना भी अच्छा रहा हो लेकिन सामने खड़ा जिंदा ज्यादा बड़ा होता है।" स्वयं पर पड़ती निगाहें देखकर लट्टू की माँ को अपने पति की नजरें याद आ गईं। बरबस उसकी पलकें झुक गईं। देवर उसकी झुकी निगाहों को अर्धस्वीकृति मान रहा था।

देवर का इन दिनों यह बारंबार बोलना उसे कानों में मधुर घंटियों सदृश्य लग रहा था "तू मुझे पराया मत समझ। बच्चों की फिक्र तुझे अकेले को थोड़े न करनी है।" लट्टू की माँ के मन से एक बड़ा बोझ उतर गया।

भाषा ISSN 0523-1418

काया सुख का जीवन में अपना महत्व होता है। इस सुख की दिशा में जाने वाले अश्व समवेग पाकर आवेग में बदल जाते हैं। देवर की हर हरकत के पीछे उसकी स्वीकृति थी। तीन महीने कैसे बीत गए यह पता ही नहीं चला। वह रोज मन लगाकर उसकी पसंद का खाना बनाती। वह मुर्गा-मछली और अंडा लाता। साथ में शराब की बोतल भी होती। "अरे पीने में कोई बुराई नहीं है। भईया को बेहिसाब पीने की आदत थी इसलिए चले गए। जो आदमी बिना खाए पीएगा वह ज्यादा नहीं जी सकता।"

मृत पति का इस प्रकार जिक्र करना उसे अच्छा नहीं लगा। वह उठने लगी। "मसालेदार जर्दे का भरपूर प्रयोग करके वह मदिरापान की गंध को दबाने का प्रयत्न करता। वह उसकी इतनी सी शराफत से कृतज्ञता से झुक जाती। वह टी. वी. धारावाहिकों में दिखने वाले देवी-देवताओं जैसा हमेशा मुस्कुराता रहता।

"तू पुरानी बातें छोड़। रोज दस रुपए की चायपत्ती और एकाध किलो आटा लेने की आदत अब रहने दे। एक बार में महीने भर का सामान रख ले।" देवर की ये बातें आश्वस्तकारी लगीं। नून-तेल, लकड़ी की मुहावरेदार पंक्ति संपूर्ण गृहस्थी के प्रबंधकीय चिंताओं को समेटे हुई थी।

बरसात आने पर हमेशा की तरह झुग्गी की छत टपकने लगी। वह आदत के मुताबिक बाल्टी रखने लगी। "ऐसे नहीं चलेगा," देवर यह देखकर बोला।

"छानी के पानी से दाल अच्छी बनती है। हमारे गाँव के बर्तन-घड़े सब बारिश के पानी से भरे जाते हैं। खपरैल से चुआ पानी बड़े काम का है।" वह चहकी।

"छोड़ वो सब चीजें। यह शहर है। यहाँ यह पानी गंदगी मानी जाती है।"

अगले दिन छत की मरम्मत हो गई।

देवर को लग रहा था कि इधर-उधर की बातें इतनी लंबी हो गई हैं कि मूल विषय भूसे के ढेर में अनाज के दाने की तरह खो गया है।

" झुग्गी में अब काफी जगह हो गई है। बच्चे बड़े हो गए हैं। उनके लिए अलग बिस्तर डाल दे।" देवर की आँखों में रक्तिम आभा थी। वह जल में मनोनुकूल आहार पाने की आकांक्षा से प्रेरित मगरवत विचरण कर रहा था। "लट्टू अकेले में रात को जग जाता है। उसे साथ सुलाना पड़ेगा।" वह बोली। बीच में लट्टू को सोया देखकर देवर छिपकली की कटी पूँछ की तरह छटपटा रहा था।

"हम दोनों शादी कर लें तो अच्छा होगा। ऐसे कब तक चलेगा?" एक रोज वह बोल पड़ी।

"अरे यह सब बड़े घरों के चोंचले हैं।" वह रुक्षता से बोला। प्रेमी होना पति होने से अधिक सुविधाजनक था।

बीमा की रकम हाथ आने पर देवर ने हँसकर कहा, "इसमें कुछ मेरा हिस्सा है कि नहीं।" वह हँसकर टाल गई।" आज काम पर जाने का मन नहीं है।" वह झुग्गी में पूरे दिन पसरा रहा। बच्चों को बात-बात पर झिड़का। झुग्गी के अंदर पड़े खाट और एल्युमिनियम के बर्तनों को ऐसे घूर रहा था जैसे कोई सेठ अपनी जायदाद बिना वसीयत लिखे दिवंगत हो गया है।

अब उसने घर-गृहस्थी में कोई योगदान देना बंद कर दिया। लट्टू की माँ गृहस्थिन से पुनः कामकाजी औरत हो गई।

"क्या बात है आजकल काम पर नहीं जा रहे हो? वह बोली।" दारु की बदबू का भभका उठा। "अपनी मर्जी से काम करने वालों में हूँ। ठेकेदार से मेरी नहीं पटती है।" अपने पति के शराबी होने पर भी इतना डर कभी नहीं लगा था।

"लेकिन रोजी के लिए कुछ तो करना पड़ेगा।"

"तू भी काम कर सकती है। तेरे पिल्लों को खिलाने-जिलाने का ठेका मेरा नहीं है। इन्हें बड़े घरों जैसा तीन टाइम खाना खिलाना जरूरी नहीं है।" हाथ में पावरोटी का सिंका टुकड़ा लिए बच्चे ठगे से खड़े रह गए। देवर के मुँह से शराब की दुर्गंध के साथ दिमाग से शातिर चाल झलक रही थी। इतने महीनों में पहली बार उसके अंदर देवर के प्रति घृणा जैसा कोई भाव जगा।

"तेरे वादे का क्या हुआ?"

यह सुनकर देवर ने अपनी नजरें उस पर ऐसी डाली मानो साँप ने फन उठाया हो। "जो औरत अपने मरे हुए मर्द को दो दिन में भुला दे वह किसी की क्या

होगी?" उसने स्पष्ट कर दिया कि वह उतना ही सामंतवादी सोच का है जितना मर्द को होना चाहिए। बौद्धिकता काम निकालने का जरिया है। बोझा ढोने की चीज नहीं। उस दिन दोनों में जमकर झगड़ा हुआ। हाथापाई तक हुई। डरे-सहमे बच्चे दूर से देख रहे थे। "बदनाम ऐसा करूँगा कि तू मुहल्ला छोड़कर चली जाएगी।" देवर ने धमकी दी। उसकी आँखें हत्यारे के चाकू की मानिंद चमक रही थीं। काम तरंगित रुधिर प्रवाह से वशीभूत मधुकंठी पक्षी जैसी वाणी बोलने वाले अब कर्कश निनाद करने लगा।

"अरे जा-जा बदनामी की धौंस औरत को क्यों दिखाता है? तेरी इज्जत नहीं है क्या? नहीं है तो इसमें मेरा क्या कसूर।" झगड़े की पराकाष्ठा में उभय पक्ष मरने-मारने में उतारू होते हैं। महाभटट् की भाँति उनके शीशविहीन कबंध भी मैदान छोड़ने को राजी नहीं होते हैं। लट्टू की माँ को प्रतीत हो रहा था कि इस आसमान युद्ध में कभी उसका शीशविहीन कबंध जूझ रहा है तो कभी बर्बरिक की भाँति कबंधविहीन शीश निरुपाय होते हुए भी शत्रु को ललकार रहा है।

"हमने तुझे सत्तू माँगने पर मोतीचूर दिया है। पर तू एहसानफरामोश निकली।" देवर एकत्रित लोगों को सुनाने की खातिर पंचम सुर में बोला।

"तेरी हकीकत मालूम है। जा किसी और को सुनाना। मेरे बच्चों की तरफ बुरी नजर डाली तो दुनिया में शोर मचा दूँगी।"

वह हँसने लगा। "अरी बावरी हमने साबुत सुपारी को दाँतों से तोड़ दिया है। क्या बताशा खाने में कोई दिक्कत आएगी?"

लट्टू की माँ ने साँसों के सिलसिलेवार होने तक इंतजार किए बगैर आगे बोलना चाहा लेकिन कंठ और जुबान ने हाथ खड़े कर दिए।

आखिर वह क्यों मान गई? उसे प्यार और प्रपंच के बीच भेद क्यों नहीं दिखा? बिना भावना के संबंध में घर बुढ़िया के दाँतों की तरह हिलता है। यह बात समझने में देरी क्यों लगी?

दूसरे की घर की लड़ाई को अगल-बगल वाले उसी कौतुक से निहार रहे थे जैसे मुर्गों की जंग देखी जाती है। उसे निगलने के लिए धरती क्यों फटेगी? आखिर धरती के पेट में उसके जिंदा रहने से कौन-सा दर्द हो रहा है। सारी शर्म अकेले खुद क्यों झेलेगी? देवर विषहीन सर्प की भाँति मात्र कुवाच्य बोलकर फुँफकार सकता है लेकिन कोई क्षति नहीं पहुँचा पाएगा।

देवर के जाने के बाद बच्चे छिपी हुई बिल्लियों की तरह बाहर निकले।

वह अपनी दी हुई चीज ले गया। जर्जर दीवाल पर टंगे खूँटे को उखाड़ने में पूरी दीवाल बीमार शरीर की भाँति काँप गई। लट्टू की माँ यह देखकर विद्रूपता से हँस पड़ी। वह अक्सर दरवाजा खुला छोड़कर काम पर निकल जाती थी। इस झुग्गी में अगर गलती से डाकू आ गए तो क्या पाएँगें। हाँ शगुन की खातिर रुपया-दो-रुपया माँग कर जरूर ले जाएगें। लेकिन वह इस तरह लुटेगी इसका गुमान नहीं था। देह राग के ऊपर हृदय राग का वर्चस्व शायद नहीं होता है। मृतक का दाह संस्कार होता है लेकिन जिंदा लोग इंसानियत का अस्थिविसर्जन तक कर देते हैं। प्याज जितना मर्जी छीलो लेकिन कोई दाना हाथ नहीं आएगा। सच बात है कि लालच पानी में बहते कंबल जैसा है। उसे पकड़ने के लिए पानी में उतरने वाले को पता चलेगा कि कंबल के बदले रीछ पानी में है। वह रीछ से चाहे जितना भी पिंड छुड़ाना चाहे लेकिन रीछ बिना उसकी बोटी खाए छोड़ने वाला नहीं है। घरेलू झगड़े उसके लिए कोई नई बात नहीं थे। दिवंगत पति लगभग रोज मारपीट करता था लेकिन इस घटना ने जैसे भेड़िए के दाँत और नाखून के खरोंच उसके मन में लगा दिए।

उस दिन चुल्हा नहीं जला। दूसरे दिन सुबह निम्मी ने कच्चा-पक्का जैसा भी बन पड़ा लाकर माँ और भाई-बहन को परोसा। ऐसा नहीं कि लड़की ने पहले घर का काम नहीं किया था पर आज लट्टू की माँ की आँखें भर आईं। वह बिछौने पर मुड़ी-तुड़ी लेटी रही। "जाओ तुम सब खाओ। मुझे भूख नहीं है।"

"जरा-सा खाने में क्या हो जाएगा माई।" बेटी मनुहार करने लगी। हृदय कामना रहित हो सकता है। मस्तिष्क का विचार-शून्य होना संभव है पर उदर में क्षुधा की आग न भड़के यह कैसे मुमकिन है।

भाषा ISSN 0523-1418

"तूने खाया?"

निम्मी ने पेट फुलाकर डकार ली। "मैंने खा लिया।" लट्टू की माँ इस डकार का अभिप्राय समझ गई कि यह सच्चाई छिपाने का उपक्रम है। छोटे भाई-बहन को खिलाते हुए वह अपना हिस्सा भी खिला गई। "चल मेरे साथ बैठ।" उसने प्यार से डाँटा। मुश्किल से दोनों को दो-दो कौर मिले। दोनों का प्रयास था कि दूसरे को ज्यादा ग्रास खिला दें। इस चेष्टा में माँ-बेटी का झगड़ा हुआ।

मेहनतकशों की औलाद घर-बाहर का काम सीखती है। किताब-कॉपी इसमें बाधक हैं अतः उन्हें आरंभ से ही बहिष्कृत किया जाता है। हालाँकि निम्मी एकाध साल स्कूल गई थी। मिड डे मील का आकर्षण था। माँ का नाम भले ही उसके छोटे भाई लट्टू के नाम पर प्रसिद्ध हो लेकिन घर में काम करने और छोटे भाई-बहन की देखभाल का पूरा जिम्मा उसने उठा लिया।

"इस कलूटे को नहलाने में पूरी एक बाल्टी पानी लगता है।" निम्मी ने लट्टू को गोद में लेकर प्यार से शिकायत की। वह दीदी की गोद में हँस रहा था।

"तू किसी मेमसाहब के घर होती तो अच्छे से चोटी करके स्कूल जाती।" माँ की इस इच्छा का अर्थ उसके पल्ले ज्यादा नहीं पड़ा।

काफी दिनों बाद माँ और बच्चे एक जगह सोए। नींद के आगोश में जाने से पहले खूब बातें हुईं। "इस दीवाली में मैं चरखी चलाऊँगी" झुप्पा बोली। "मुझे दो चरखी चाहिए।" लट्टू बिस्तर पर पड़े-पड़े दो ऊँगलियाँ दिखाकर बोला। "चल मेरे बाबू तुझे मैं अपनी चरखी दूँगी।" निम्मी ने उसके गाल को छूकर कहा।

माँ सबको शाब्दिक वाहन में बैठाकर दीवाली की खरीदारी कराने बाजार घुमा लाई। लट्टू की माँ कॉलोनी के उन घरों में गई जहाँ वह पहले काम करती थी। उधार माँगा। संसार अभी धर्मात्माओं से रिक्त नहीं हुआ है। उसे कर्ज मिल गया। लेकिन सीढ़ियों से उतरते हुए उसे कुछ सुनाई दिया। इसका अपने देवर से रिश्ता बना था। देवर ने शादी से मना कर दिया। पराए बच्चों वाली को कोई क्यों ढोएगा? "मेरे बच्चे हैं। इनकी जिम्मेदारी निभाने का दम रखती हूँ।" वह सगर्व बोली।

आज सुबह से ही लट्टू का बदन गर्म था। शायद रात में भी बुखार रहा होगा। वह डॉक्टर को दिखाने ले गई। डॉक्टर ने दवा लिखते हुए पूछा, "क्या इसको समय पर टीका लगवाया था?" उसकी चुप्पी पर वह व्यंग्य से मुँह बनाकर बोला, "चलो अब कम-से-कम ये दवाईयाँ समय पर देना।" दो दिन बीत गए। लट्टू बरसों पुराने अखबार के पन्ने सरीखा पीला पड़ा था। रोजी-रोटी की खातिर वह काम नहीं छोड़ पाई।

देर शाम को जब अंधियारा गहराने लगा तब निम्मी उसे ढूँढ़ती हुई बाजार आई। "माई....!!" आवाज संवाद का माध्यम और संदेश का जरिया होती है। परंतु हर आवाज की प्रतिध्वनि नहीं होती है। निम्मी की चीत्कार में रोंगटे खड़ी कर देने वाली प्रतिध्वनि थी।

"माई लट्टू के पास जल्दी चलो। वह पानी नहीं पी रहा है। आँख भी नहीं खोल रहा है।" वह फौरन झुग्गी की ओर भागी। रास्ते में घुप अंधेरा था। स्ट्रीट लाइटें मुर्दे की तरह बुझी पड़ी थीं। इस भुतहे अंधेरे में राहगीर काली छाया की तरह विलीन हो रहे थे। दूसरी तरफ से आने वाले अलबत्ता आश्चर्य की भाँति प्रकट होते थे। उसे दौड़ता देखकर एकाध राहगीर उत्सुकता से रुक गए। घर पहुँचते-पहुँचते अंधियारे ने हर चीज के मूल रंग पर कालिमा पोत कर अपने जैसा मनहूस बना दिया। सदा चरखी जैसे नाचने वाले लट्टू की देह आटे की लोई की भाँति लटकी हुई थी। माँ का मन कहाँ मानता है। रिक्शे पर अपने बेटे को लेकर वह अस्पताल गई। शायद मन के कोने में यह उम्मीद थी उसकी औलाद मृत्यु का तट स्पर्श करके वापस आ जाएगी। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। अस्पताल के प्राँगण में कुछ घड़ी चीख-पुकार मची।

अगले दिन सुबह लोगों ने हैरानी से देखा कि उसकी माँ दीवाली के दीए और रोशनी वाले झालर ठेले पर लगाए बाजार में सामान बेच रही है। स्वसंकल्पाभिभूत होकर मानो उद्घोषणा कर रही हो कि अकेले गोवर्धन पर्वत उठाएगी। बड़ी कठकरेजी औरत है। जिसने देखा वही यह बोला कि जिसकी औलाद मर गई हो वह ऐसे वक्त क्या काम-धंधा करने निकलेगा? घर में बच्चे का मृत शरीर रात से पड़ा है।

अकेला इंसान रोए या कब्र खोदे। हाथ में ठेले का सामान बेचकर पैसा आया तो वह घर गई। कफन-दफन वगैरह का इंतजाम जो करना है। झुग्गी के बाहर लगे मजमा की नजरें उस पर जमी थीं। बीमारी की उत्पत्ति से लेकर मृत्यु तक का सोपान मूलक वर्णन सुनने की जिज्ञासा अधूरी रह गई। किसी को कर्ण और बलि की पंक्ति में सम्मिलित होने का अवसर नहीं दिया गया। उसने सीधे चादर से ढके बच्चे के शव की ओर रुख किया। इस बार वह किसी के भरोसे नहीं रहेगी।

गली का कुत्ता अर्थी के पीछे कुछ दूर भागा।

– एफ-2, 4/273, वैशाली, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश-201010

❑❑❑

अदर मदर

शैलजा सक्सेना

इस कहानी को कहाँ से और कैसे शुरू किया जाए, कैसे आगे बढ़ाकर, कहाँ खत्म किया जाए, शैली को नहीं पता! पता है तो बस यह कि इसे लिखे बिना वह शांत नहीं हो पाएगी। लेकिन समस्या यह थी कि जिनकी कहानी लिखने के लिए अंदर से मजबूर महसूस कर रही थी, उनको वह बिल्कुल न के बराबर जानती थी! उनकी मृत्यु पर चर्च की एक बड़ी भीड़ के बीच बताया गया था कि वे धर्म पथ पर चलने वाली, प्रसन्न मन और बेहद आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करने वाली एक शांत महिला थीं। अपनी इकलौती मुलाकात में शैली को भी तो यही लगा था, फिर यह. ..??? एक अजीब सी पहेली थी जैसे वह उसके भाव संसार को मथ रहीं थीं।

बहुत सी बातें सिलसिलेवार बिठाने के लिए उनके जीवन को समझकर, कागज पर उतारना ही होगा. . कहाँ से शुरू करे वह? बहुत मगजमारी के बाद लगा कि क्यों न उसी दिन से शुरू करे, जहाँ से यह दोबारा शुरू हुई थी। कोशिश करे एक औरत के जीवन का उलझा, बिखरा.. सच लिखने की! पर जीवन की ही तरह कहानी बिना संदर्भों के नहीं लिखी जाती। ऐना ने भी तो उसके बेचैन होने की बात सुनने पर इसे लिख लेने का आग्रह किया था.. शैली का पेन कागज पर ठिठककर चलने लगा...! ऐना और अपनी बात कहे बिना उनकी बात भी पूरी नहीं हो सकती तो उसने अपने परिचय से ही इस कहानी को आगे बढ़ाया।

वो दोनों टोरोंटो शहर के एगलिंटन सब-वे स्टेशन पर मिलीं थीं। लगभग एक सी लंबाई और एक-सी कद-काठी। दोनों का रंग भी गेहुएँ रंग के आस-पास। शैली का 20 और ऐना का उन्नीस। वो बहनें नहीं पर अक्सर लोग उन्हें साथ-साथ देखकर बहनें समझ लेते। कोई खुलकर पूछ लेता तो वो दोनों हँस पड़तीं,

"यस शी इज माइ सिस्टर फ्रॉम द अदर मदर (हाँ यह मेरी बहन है ....दूसरी माँ से)"!

ऐना ट्रिनिडाड से है और शैली भारत से। ऐना जब केवल 11 साल की थी तब से कनाडा के टोरोंटो शहर में रह रही है। शैली को टोरोंटो आए केवल 8 साल ही हुए हैं। वो लगभग पाँच वर्ष एक ही ऑफिस में, एक ही विभाग में काम कर चुकी थीं। शैली ने वह दफ्तर पिछले साल छोड़ दिया था, तब से उनका मिलना कभी-कभार ही होता, अन्यथा पहले तो हर रोज आठ घंटे लगभग साथ-साथ ही बीतते। चाय-कॉफी और खाना तो हमेशा साथ ही होता। कभी अगर वे आगे-पीछे खाना खातीं भी तो भी एक-दूसरे से पूछना न भूलतीं कि खाना खा लिया न? ऑफिस के पहले दिन से ही दोनों के बीच आपसी समझ भरी, गहरी दोस्ती हो गई थी।

आज कई महीनों के बाद उनका मिलना हुआ था। कल रात शैली ने फोन किया था ऐना को,

"मिल सकती हो?"

"हाँ, पर कब?" ऐना ने पूछा।

"कल ही मिलो, मेरे मन पर दो-तीन दिनों से बोझ जैसा है, तुमसे बात करना चाहती हूँ"

ऐना शैली की आवाज सुनकर चिंतित हो गई। तय रहा कि दोनों आधे दिन की छुट्टी करेंगी और यंग और एगलिंटन रोड के सब-वे स्टेशन पर मिलने के बाद, वहीं कोने पर बने 'मैंडरिन', चीनी रेस्तराँ में बैठकर 'बफे' खाएँगी। इस रेस्तराँ में देर तक बैठे रहने की सहूलियत थी।

शैली स्टेशन पर बताए समय पर मिल गई। ऐना ने उससे कुछ जानने के लिए कई बार उसकी ओर देखा पर उसका चेहरा स्थिर और खिंचा-सा था, जिस पर लिखी इबारतों को पढ़ना बहुत मुश्किल था। ऐना ने हल्के से पूछा भी,

"सब ठीक है न?"

"हाँ, सब ठीक है!"

ऐना के लिए अपनी उत्सुकता दबा पाना बहुत मुश्किल हो रहा था पर उसे समझ में आ गया कि ऐना बिना ठीक से बैठे उससे बात नहीं करेगी तब वह ऑफिस में घटी नई घटनाएँ शैली को बताने लगी। एस्केलेटर से ऊपर आते हुए भी शैली केवल हाँ-ना में ही जबाब देती रही। रेस्टोरेंट में पहुँचकर वे 'एपेटाइजर्स' (खाने से पहले का हल्का नाश्ता) लेकर कोने की मेज पर जा बैठीं। यह मेज शीशे के पास थी जहाँ से सड़क का कुछ हिस्सा और सामने बनी दुकानें दिखाई दे रही थीं। प्लेट मेज पर रखी थी पर खाने पर ध्यान देने की बजाए शैली बाहर देखने लगी। सुबह जो हल्की धूप निकली थी, अब सरक कर बादलों के पीछे चली गई थी, बेवक्त का हल्का अँधेरा-सा छा रहा था। शायद ऐसा ही अँधेरा शैली के चेहरे पर भी था! ऐना ने 5-7 सेकेंड इंतजार किया फिर अधीर होकर बोली,

"बताओगी नहीं? दिल तब से परेशान है जब से तुम्हारा फोन आया है।"

शैली ने अजीब निगाहों से ऐना को देखा, फिर जैसे दिल-दिमाग में घूमते अँधड़ को निकलने का रास्ता देती हुई बिना भूमिका के जैसे शब्द होठों से फिसल गए।

"मुझे वो सपने में दिखाई दे रही है?"

ऐना क्षणभर को हतप्रभ रह गई। वो शैली की निगाहों को पढ़ सकती थी। वो समझ रही थी कि शैली किसके बारे में बात कर रही है पर फिर भी निश्चित करने के लिए उसने बेहद हल्की आवाज में पूछा

"कौन?"

शैली की निगाहों में उलझन उभरी,

"माँ"

ऐना जानती है कि शैली अपनी नहीं, ऐना की माँ की बात कर रही है। सिर्फ इतना पूछ पाई..

"कब?"

शैली ने एक गहरी साँस छोड़ी,

"पहली बार पिछले हफ्ते बुधवार को दिखीं थीं, फिर इस इतवार को और फिर कल सुबह सोकर उठने के ठीक पहले"।

ऐना ठिठक गई,

"बुधवार को.. यानि मई 8 को?"

'हाँ'

"शैली, तुम्हें यह तारीख याद है न? पिछले साल इसी दिन तो..."ऐना ने वाक्य पूरा नहीं किया।

शैली को जैसे कुछ भूला हुआ याद आ गया,

"ओह माई गॉड! हाऊ कैन आई फॉरगेट? आइ एम सो सॉरी .." (हे भगवान, मैं कैसे भूल सकी? मुझे माफ करो) मुझे तारीखें अक्सर भूल जाती हैं। शैली सफाई सी देती हुई बोली।

यह अजीब सा वाक्या दोनों को ठिठका गया। मई आठ को ही क्यों आया वो सपना? अचानक पिछले साल, आठ मई की शाम दोनों की आँखों के आगे लौट आई। ऐना जिस शाम को बहुत मुश्किल से भुलाने की कोशिश कर रही है, शैली को वह शाम अक्सर याद आ जाती। जीवन के सबसे कठिन पल वो होते हैं जब इंसान नियति के आगे हार जाता है! जब मन अपने प्रिय जन की तकलीफ न देख पाने के कारण सोचता है कि भगवान उनके कष्ट समाप्त कर उन्हें उठा ले.. लेकिन साथ ही उनके बिना जीने की बात सोचकर कराह भी उठता है... वही पल भोगे थे ऐना ने आठ मई से पहले, जब उसकी माँ बहुत बीमार होकर मृत्यु के द्वार पर खड़ी थीं।

भाषा ISSN 0523-1418

आठ मई!! जीवन का सबसे विचित्र अनुभव!! ऐसा अनुभव जिसे शैली सिवाय ऐना के किसी से कह भी नहीं पाई थी। उस दिन सुबह से उसे ऐसा लग रहा था जैसे कोई बुरी खबर मिलने वाली है। ऐना की माँ के बारे में वह लगातार सोच रही थी। उसे लगा था कि शायद आज उनका अंतिम दिन..!! कैसे कहे वह ऐना से.. ग्यारह बजे जब उससे रहा नहीं गया तो उसने ऐना को फोन किया। ऐना ने बताया कि आज वह बेहतर महसूस कर रही हैं। शैली ने बहुत संकोच से कहा, 'दान के लिए कुछ डॉलर निकलवा दो उनके हाथ से'। ऐना और उसके बीच एक बेहद समझदार चुप्पी फैल गई थी। तीन बजे से शैली फिर बेहद बेचैन होने लगी, शरीर में अचानक भयंकर दर्द होने लगा... पोर-पोर से ऊर्जा जैसे बाहर निकल रही थी!.... नसें धीरे-धीरे शिथिल और ठंडी होने लगीं!... वह तिल-तिल बेजान हो रही थी!... साँसें तक शिथिल होने लगीं!... जैसे मृत्यु उसके भीतर से होकर ऐना की माँ तक पहुँच रही हो...। क्या हो रहा है उसे? वह अचानक इतनी बीमार क्यों हो रही है? जब कुर्सी पर बैठे रहना असंभव हो गया तो वह अपनी सहकर्मी से तबियत खराब की बात कहकर हाँफती हुई- सी, ऑफिस के किचन में पड़े सोफे पर जाकर निढाल पड़ गई थी। लगभग घंटा भर तो वह इस स्थिति में रही होगी। आज तक अपने परिवार के किसी सदस्य की बीमारी पर भी उसने ऐसा अनुभव नहीं किया था। घंटे भर बाद जब वह खड़ी होने लायक हुई तो अपना सामान समेट कर घर के लिए चल पड़ी। दो ट्रेन और एक बस बदलकर लगभग डेढ़ घंटे बाद वह घर पहुँचती थी रोज। रास्ते में ऐना का टेक्स्ट आया था कि वे बेहतर हैं। घर के भीतर वह डगमगाते पाँवों से आई थी और दरवाजे के पास रखी कुर्सी पर लंबी साँसें खींचती हुई-सी बैठ गई थी। क्या हो रहा है उसे? किसी और के बारे में वह ऐसा सोच कैसे सकती है? महसूस कैसे कर सकती है? मन भर के पाँवों को घसीटती रसोई की तरफ पानी लेने को बढ़ी ही थी कि उसके मोबाइल की घंटी बजी.. उसके दफ्तर की लीडिया का फोन था, फिर से मन काँपा.. फोन पर फटे चिथड़े जैसा स्वर, बिजली की तारों के बीच फड़फड़ाया, 'ऐना की माँ...'!

कैसी दहलाने वाले अनुभव-सी शाम थी वह... ऐना की माँ कैथरीन को जानती भी कितना-सा थी वह। हाँ, एक बार उन्होंने शैली की पसंद का कच्चा कटहल भिजवाया था जब उन्हें पता चला था कि शैली के घर के पास की दुकानों में कटहल नहीं मिलता। ऐसे ही शैली ने अपनी एक भारत यात्रा के बाद उनके लिए एक छोटा-सा नक्काशीदार डिब्बा धन्यवाद के तौर पर भिजवाया था। मिलना भी सिर्फ एक बार हुआ था..वो भी मृत्युशैय्या पर बस!.. लेकिन..क्या बस यही हुआ था? एक बार का मिलना.. वह कितनी देर तक मन में रह गया था उसके। उसे वह मिलना भी आज तक स्पष्ट याद है।

तीन सप्ताह से वे बिल्कुल बिस्तर पर थीं, ऐना ऑफिस से छुट्टी लेकर घर पर ही उनकी देखभाल कर रही थी। सुबह-दोपहर-शाम नर्स आकर उन्हें मॉर्फीन का इंजेक्शन लगा देती। उन्हें लिवर की कोई ऐसी बीमारी हुई थी जो उनकी उम्र और स्वास्थ्य देखते हुए ठीक नहीं हो सकती थी। अब दवाओं में मुख्य यही थी, 'मॉर्फीन' दर्द से राहत के लिए! शैली रोज फोन पर ऐना से बात करती। विभाग के अन्य लोगों के साथ मिलकर वह उस शाम उनके घर गई थी। ऐना अपना घर छोड़ कर माँ के साथ उनके स्कारबोरो वाले घर में ही रह रही थी। जब शैली और उसकी दो अन्य सहयोगी उनके घर पहुँची तब ऐना के कजिन भाई-बहन भी आए हुए थे। सब अंदर के कमरे में लेटी उसकी माँ को देखने गए। वो दवाई की गफलत में थीं पर उन्हें लोगों के आने का पता चल रहा था। उन्होंने ऐना के कजिन भाई-बहन से हँस कर उनके खाने के बारे में पूछा। फिर ऐना ने शैली और अन्य सहयोगियों का परिचय कराया। उन्हें शैली की याद थी। 'हलो शैली' कहते उनकी आवाज लटपटा गई थी। दवाई की गफलत से वो थक रही थीं। इस हालत में भी वो उठकर उनका स्वागत न कर पाने के कारण क्षमा माँगने लगीं। सब की आँखें नम हो गईं थीं। ऐना जानती थी कि सब के मन भीग रहे हैं सो वह सब को बाहर के कमरे में ले आई। माँ अकेली नहीं छोड़ी जा सकती थीं अतः ऐना वापस उनके पास जाने लगी तो शैली ने उसको रोका और खुद उनके कमरे में जा कर बिस्तर के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गई। जाने क्यों

उसके मन में कैथरीन के साथ कुछ पल अकेले बिताने की इच्छा हुई।

ऐना और उसकी माँ कैथोलिक क्रिश्चियन थीं और शैली हिंदू.. पर मौत के सरकते कदम न हिंदू को पास बैठा देखते हैं और न क्रिश्चियन को बिस्तर पर लेटे! दुनिया भले लड़ती रहे अपने-अपने धर्मों के लिए पर मौत से कोई नहीं लड़ पाता। वो हरेक के साथ एक-सा व्यवहार करती है, उन्हें एक ही तरीके से अपने साथ ले जाती है, बच जाता है निष्प्राण शरीर। फिर दुनिया उसे अपने-अपने धर्म की टिकटी पर टाँग कर चल पड़ती है, कभी दफनाने... तो कभी जलाने...!

शैली उस कुर्सी पर बैठी, अपने हिंदू भगवान से एक बूढ़ी क्रिश्चियन औरत के लिए प्रार्थना कर रही थी। उस कमरे में सब स्थिर था, सामने का क्रॉस, अलमारी में टिकी तस्वीरें, बिस्तर के पास रखी चिलमची! सामने लगी फोटो में वे जवान थीं, ऊँचे बँधे बाल और आँखों में काजल... फोटो में वे फ्राक में थीं, पर शैली को लग रहा था जैसे वे उसके घर की साड़ी वाली महिलाओं के ग्रुप फोटो से उठकर, यहाँ इस फोटो में आकर बैठ गईं हों! एकदम भारतीय चेहरा... तभी कराह कर उन्होंने सहारे के लिए हाथ बढ़ाया। उनकी आँखें बंद थीं, शायद सोचती हों कि पास उनकी लड़की बैठी है। एक सेकंड को हिचकिचा गई शैली, पहली बार मिली थी उनसे.. वह भी इस हाल में, पर हवा में आधारहीन से लटके उनके हाथ को वो दो-तीन सेकंड से अधिक नहीं देख पाई, जल्दी से उनका हाथ अपने हाथ में थाम लिया।.. एकदम ठंडा... झुर्रियों से सिकुड़ा उनका हाथ!... दूसरा हाथ मिल जाने से वे आश्वस्त हो गईं। कुछ मिनट ऐसे ही वह उनका हाथ थामे रही.. फिर वे अपना हाथ उसके हाथ से वापस ले, दूसरी ओर मुँह मोड़कर लेट गईं। पर शैली के हाथ की लकीरों तक में जैसे उनके हाथ की ठंडक उतर गई..! कुछ देर बाद घर लौटते हुए भी वह उनके हाथों की ठंडक अपने हाथों में लेकर लौटी थी।

उस दिन शायद कैथरीन का कोई अनदेखा भाग वह अपने में लेकर लौटी थी तभी तो आठ मई को..!! क्या था वह सब? दान करवाने के लिए ऐना को फोन करना.. वह भयंकर अनुभव!! शायद पूर्वाभास!

इंट्यूशन!... मन में महसूस करना!!... यह सब बातें कौन मानता है? ऐना और शैली एक-दूसरे की ओर खामोश हो देखतीं और सोच में डूब जातीं। दोनों धार्मिक प्रवृति की हैं पर विज्ञान भावनाओं के भी प्रमाण माँगता है। वे परिमाण और प्रमाण के जिस युग में रहती हैं उसमें केवल अनुभव और भाव में बहने वाले इंसान को 'इमोशनल फूल' यानी भावनात्मक बेवकूफ ही कहा जाता है। क्या शैली भी वही है... इमोशनल फूल? पर ऐसा हुआ कैसे? कितनी भी अच्छी मित्र हो ऐना पर है तो एक मित्र ही... काम पर बनी मित्र! अलग देश, अलग परिवेश और अलग खान-पान और अलग त्योहार! सिवाय इसके कि कभी ऐना ने बताया था कि कैथरीन की नानी यानि ऐना की परनानी भारत से थीं और कैथरीन अभी भी बैंगन, चौका, छौंक, तवा जैसे गिनती के सात-आठ हिंदी शब्द जानती थीं। कैथरीन की परनानी ने किसी फ्रेंच आदमी से शादी की थी और इस तरह उस भारतीय औरत की कहानी कुछ और ही हो गई। ट्रिनिडाड, सूरीनाम, गयाना आदि के कितने ही लोग, जो ब्रिटिश राज में इन द्वीपों पर लाए गए थे, उनके परिवारों के बच्चों के नाम अब 100-150 साल बाद चाहें अंग्रेजी वाले हों पर वे भारतीय से ही दिखते हैं।... कैसा है प्रकृति का खेल.. जगह बदल गई, समय बदल गया..... पर खून में बहता डी.एन.ए.न जाने कितनी पीढ़ियों की कहानी माँस-पेशियों में दौड़ा रहा है। कौन-किस से कितना बँधा है, क्यों बँधा है, कहाँ -कहाँ का खून उनकी नसों में बह रहा है, किस-किस देश की मिट्टी मिली है उनके शरीरों के बनने में, इसके पूरे उत्तर किसके पास हैं? हम कितना कम जानते हैं अपने को पर उसी कम की हवा में भी जाने कहाँ-कहाँ उड़ते फिरते हैं!

वो दोनों एक अजीब निगाह से बँधीं, एक-दूसरे को देख रहीं हैं। जहाँ उस तारीख का सिरा उनके मन को जोड़ रहा है, वहीं दोनों एक ही प्रश्न से जूझ रहीं हैं, क्यों? क्यों दिख रही हैं माँ अब एक साल बाद भी? शैली उनके इतिहास को नहीं जानती सो वो ऐना और उसके परिवार के बीच उसकी माँ के संबंध में क्या कह सकती है और ऐना..? वह स्तब्ध सी मौन बैठी थी। शैली ने ऐना से हिचकते हुए पूछा..

भाषा ISSN 0523-1418

"क्या कुछ छूट गया है करने से?"

उसके हिंदू धर्म में यही मान्यता है कि अतृप्त आत्माएँ अपने प्रियजनों के सपनों में तब तक आती हैं, जब तक वे संकेत से कुछ छूटे काम करवा कर तृप्ति नहीं पा जाती। ऐना के क्रिश्चियन धर्म में क्या मान्यता है, शैली नहीं जानती। सामने रखी चाय ठंडी हो गई। ऐना जैसे नजर बचाकर उठते हुए बोली।

"कुछ लेकर आती हूँ"।

शैली के मन में यह भाव भी है कि वो उसे ही क्यों दिख रही हैं? उसका संबंध उनसे कहाँ है..?.. आत्मा, सपने आना या आत्मा का संदेश...ये सब फिल्मों में या कुछ इसी तरह की लिखी किताबों में होता है, सच में कहाँ होता है? वो यह सब कहाँ मानती है...! वाकई, जब तक इंसान स्वयं किसी बात को अनुभव नहीं करता तब तक उसे मानता भी नहीं! अपने अनुभव से परे सभी के अनुभव, उसके लिए मात्र कहानियाँ होती हैं। उन कहानियों को पढ़ने में आनंद या दुख होता है पर वह अनुभव एक विरक्त.. एक दूरी से .. किसी और के अनुभव को देखने से पैदा हुआ आनंद या दुख होता है... ऐसी कहानियों को पढ़कर 'होता होगा' जैसा लापरवाह वाक्यांश ही प्रायः मन में उमड़ता है पर जब वह अनुभव अपना होता है तो जैसे साँसों को मथ कर ऐसे विचारों की हवा निकाल देता है, स्तब्ध और मौन कर देता है। शैली के इस अनुभव को उसके पति ने भी उसका भ्रम माना था, कहा था;

"तुम इसे ज्यादा तूल क्यों दे रही हो? अगर वो सपने में आ भी गई तो क्या? शायद तुम उनके बारे में सोच रही हो और सपना आ गया!"

वो उन्हें क्या समझाती कि वो कुछ नहीं सोच रही थी। केवल ऐना ऐसी है जो इस अनुभव के दूसरे सिरे पर है और इसे सच मानती है। ऐना प्लेट में अपने और उसके लिए कुछ सामान लिए सामने आकर बैठ गई।

"तुम यही सोच रही हो न, कि तुम क्यों? मैं भी यही सोच रही थी.. शायद वो तुमसे अपनी कहानी लिखवाना चाहती हों..." कहते-कहते ऐना मुस्कुरा दी।

"मुझ से? कहानी? मुझे कहाँ आती है.." शैली ने कहते-कहते ऐना को मुस्कुराता देखा तो वह भी मुस्कुरा दी।

"तुम लिखती हो न कभी-कभी... मैंने तुम्हारी लिखी एक कहानी सुनाई थी उन्हें, बोली थीं कि अच्छा लिखती है।"

"ले-देकर दो-चार कहानियाँ नहीं लिखीं अब तक.. और वो भी कहानियाँ हैं कि मात्र किस्से ...क्या पता?"

"कहानी हो या किस्से.. जो भी थे, अच्छे थे सो मैंने उनको भी सुनाई।"

"अच्छा...वो सब अभी जाने दो...पहले यह बताओ कि तुम्हें दिखती हैं?" शैली ने अधीरता से पूछा।

हाँ, कभी-कभी! पर अभी कुछ समय से नहीं दिखीं। पिछले साल, जब मेरी तबीयत ठीक नहीं थी, तब एक बार लगा था, जैसे वे बिस्तर पर मेरे पास आ कर बैठी हों।

शैली ने बहुत हैरानी से उसे देखा तो ऐना हँस कर बोली,

"मैंने उनसे कहा, माँ ऐसे डराओ मत प्लीज"..

वो दोनों ही अधखुली सी हँसी, हँस दीं। दुनिया के परे के रहस्यों को वो जानती नहीं, जानना भी नहीं चाहतीं पर माँ का दिखना एक पहेली की तरह दोनों की ठीक सी चलती दुनिया के बीच अटक गया।यह सोचना भी गलत लग रहा है कि इस विषय को हवा में उड़ा दिया जाए। क्या पता शायद माँ कुछ कहना चाहती हों, ऐसे में उसके कहे को जानने की कोशिश न करना लगभग एक अपराध सा लग रहा था! आखिर क्या कहना चाह रही हैं माँ? दोनों के दिमाग जाने कहाँ-कहाँ दौड़ रहे हैं। ऐना उनकी इकलौती लड़की... और शैली ...उनकी मृत्यु को अनुभव करने वाली इकलौती लड़की!

सामने रखी खाने की प्लेट से स्प्रिंगरोल उठा कर कुतरते हुए वे कुछ खामोश, कुछ सोच में डूबी थीं। शैली ने कहा,

"सोचो ऐना, क्या वो तुम्हें कुछ कहकर गईं हैं जिसे तुम अपने दुख में करना भूल गई हो।"

उसे चुप देखकर वह फिर बोली,

"अगर तुम्हारे कोई बहन-भाई होता तो कम से कम इस बारे में उससे भी बात करके कुछ पता किया जा सकता था।"

ऐना ने कहा,

"हैं मेरे भाई-बहन भी"

"क्या?" शैली को हैरान होते देख, ऐना बोली,

"हाँ, एक हाफ ब्रदर (सौतेला भाई) और दो हाफ सिस्टर्स (सौतेली बहनें)।"

शैली ने हैरान होते हुए कहा,

"यह तुम्हें कब पता चला? मुझे तो तुमने यही बताया था कि तुम अकेली संतान हो.."

"माँ के बीमार होने के बाद से मैं उन लोगों के संपर्क में ज्यादा हूँ। कुछ पता तो था कि पिता की एक दूसरी पत्नी भी थीं। माँ से पहले, डैडी ने उनसे शादी की थी.. बच्चे भी हैं पर माँ ने कभी इन बातों पर बात नहीं की और मेरे या मासी के कभी कुछ पूछने पर भी हमेशा चुप रहीं। पिता की मृत्यु पर वे लोग आए थे, माँ से भी गले लगकर रोए थे, बस फिर जैसे आए थे, वैसे ही वे चले भी गए हमारी जिंदगी से... पर अभी माँ की बीमारी में उनके फोन आए और फिर वे मिलने भी आए। माँ के जाने पर भी तीनों आए और अब मुझे फोन भी कर लेते हैं।"

शैली को अपनी ओर प्रश्नवाचक निगाहों से देखते हुए देखकर ऐना ने धीरे से कहा;

"पहले अजीब सा लगा था, गुस्सा भी था मन में, पर तीनों ही बहुत अपनेपन से बात करते हैं, माँ... को भी बहुत मिस करते हैं। अब कभी-कभी तसल्ली सी लगती है कि कम से कम मेरे अपने कुछ रक्त-संबंधी हैं वरना माँ के जाने के बाद तो...."

उसका गला रुँधने लगा। कुछ देर को वह एकदम खामोश हो गई। फिर एकदम अनमनी, जैसे उसे कुछ याद आ गया हो।

"क्या हुआ? शैली उसके मनोभाव पढ़ने की कोशिश कर रही थी।

"माँ ने एक बार क्रिमेट (दाह-संस्कार) होने की बात कही थी, बरिअल (दफनाना) नहीं चाहिए था उन्हें। आखिरी दिनों में मुझ से यह बात कही थी उन्होंने पर पापा के जाने से पहले ही उन दोनों ने अपने लिए स्कारबोरो के कब्रिस्तान में जगह खरीद ली थी और जाने कब से यह बात वे लोग करते आए थे कि वे दोनों एक साथ उस जगह दफन होंगे। मेरे तो ख्याल में भी बाद वाली बात नहीं रही। माँ तो आखिर तक पक्की क्रिश्चियन थीं सो सोचा भी नहीं मैंने... उस एक बार की बात को सीरियसली ले भी कैसे सकती थी मैं?"

ऐना ने उलझे हुए स्वर में कहा। शैली को एक के बाद एक जैसे नई जानकारी मिल रही थी। एक तो ऐना की संस्कृति अलग, फिर उनके परिवार की बात, फिर उसकी माँ की यह अलग-सी इच्छा... इन सबको समझ पाने में उसे समय लगने वाला था। अपने जीवन में ही कब्रिस्तान में अपने लिए जगह खरीदकर सब तय कर लेने वाले इस तरीके ने भी उसे पहले-पहल बहुत चौंकाया था पर टी. वी. पर उसने ऐसे विज्ञापन देखे थे, जहाँ लोग अपने जाने के बाद के सब प्रबंध पहले ही करते दिखाए जाते थे, कुछ कंपनियाँ उनमें सहायक होती थीं, ताबूत चुनने, कब्रिस्तान में जगह चुनने, कब्र पर लगाने वाला पत्थर चुनने आदि सभी में, इसलिए ऐना की कब्रिस्तान में जगह चुनने की बात सुन कर वह चौंकी नहीं थी, लेकिन हाँ, दाह-संस्कार वाली बात सुनकर वह सोच में पड़ गई, बोली;

"क्या वो तुम्हारे पापा से नाराज थीं? क्या पता, नाराजगी के कारण ऐसा कह दिया हो! तुम्हारे पापा के साथ लिए निर्णय को बदलना चाह रही हों शायद। उन्होंने कभी उन बच्चों के बारे में तुमसे कुछ कहा था? क्या तुम्हारे माता-पिता में पिता की पूर्व पत्नी को लेकर झगड़ा होता था?"

ऐना ने शैली की ओर देखा पर वह उन प्रश्नों के सिरे पकड़कर पुराने समय के कुँए में उतरने लगी थी, बोली,

"झगड़ा तो नहीं होता था, पर दो-चार बार लंबी बातें जरूर हुई थीं, कमरा बंद करके..। मैं तो ग्यारह साल की ही थी जब मैं अपनी मौसी के साथ यहाँ आई थी। किसी ने मेरा अपहरण करने की कोशिश की थी।"

"ओह, माई गॉड ऐना.." शैली घबराकर बोल उठी। ऐना के जीवन का यह हिस्सा वह पहली बार सुन रही थी।

"हाँ तब हम कैसकेड में रहते थे जो ट्रिनिडाड की राजधानी, पोर्ट ऑफ स्पेन के पास है। उस जमाने में अपराध बहुत बढ़ गए थे। शायद देश के बहुत गरीब होने के कारण या क्या जाने प्रशासन की कमजोरी के कारण।... हम नाना के घर के पास ही रहते थे। मेरे पिता कभी बाहर रहते तो कभी हमारे साथ। मुझे बताया गया था कि वे मार्केटिंग में हैं इसलिए उन्हें दौरों पर जाना होता है। माँ पास ही एक फैक्टरी में सुपरवाइजर थीं। घर ठीक-ठाक सा चलता था। नाना-नानी का घर बहुत बड़ा था और स्कूल के बाद मैं कुछ देर वहीं रहती थी, उन्हीं दिनों स्कूल से आते हुए एक वैन में मुझे कुछ लोगों ने जबरदस्ती घसीटने की कोशिश की.. पता नहीं कैसे मुझे मौके पर सूझ गया और मैं शरीर को अकड़ाकर जमीन पर लेट गई। उन लोगों ने फिर भी घसीटने की कोशिश की पर चलती वैन, चिल्लाती, अकड़ी पड़ी मैं... मुझे घसीटकर भी वे उठा नहीं पाए थे.. इतने में किसी को आता देख मुझे छोड़कर भाग लिए। शरीर पर अनेक खरोंचो और भय से अकड़ी मेरी देह को कैसे नाना-नानी घर लाए थे, अब मुझे ध्यान नहीं। पर इस घटना के बाद खूब बुखार चढ़ा था और कुछ दिनों के लिए मेरा निकलना भी बंद रहा था, मेरी तो यह हालत हो गई थी कि घर के आँगन तक जाने में भी डर लगने लगा था। मन में दहशत बैठ गई थी। क्या होता अगर वे मुझे उठाने में सफल हो जाते तो....?" ऐना एक झुरझुरी सी लेकर क्षण भर को चुप हो गई, फिर बोली;

"उन दिनों ऐसे बहुत से अपराध आए दिन सुनने को मिलते थे, मौसी ने इन्हीं सब स्थितियों के चलते अपनी दो बेटियों को लेकर यहाँ कनाडा आने का निर्णय किया था सो माँ ने मुझे भी उनके साथ भेज दिया। चलते समय पिता से भी मिलना नहीं हुआ क्योंकि वो टूर से नहीं आए थे। मैं उनका इंतजार करना चाह रही थी पर नाना-नानी चाहते थे कि हम जल्दी से जल्दी कनाडा चले जाएँ।... उसी समय नाना के गुस्से से यह जाना था कि नाना को पिता अच्छे नहीं लगते थे। माँ ने अपनी मर्जी से प्रेम विवाह किया था। माँ को स्कॉटिश वंश के ऊँचे, लंबे, गोरे पिता बहुत भाए थे। कहते हैं कि उनका 'टैल्फर' वंश राजकुल का था, अब यह तो पता नहीं कि यह सच था कि नहीं पर जब पिता मुझे स्कूल छोड़ने जाते तो उनकी अँगुली पकड़कर चलते हुए मैं गर्व से भर जाती थी। मुझे वो वाकई एक राजा की तरह दिखते। माँ साधारण रूप-रंग की थीं पर चेहरे पर उनके एक लुनाई थी। बड़ी-बड़ी आँखों में मेहनत करने का भरोसा था। शायद पिता ने वही पसंद किया हो पर नाना को स्कॉटिश आदमी से नहीं किसी शुद्ध "फ्रेंच आदमी से माँ की शादी कराने का मन था जो उनकी तरह कई जमीनों का मालिक हो। लेकिन जो होना था, वही हुआ। माँ बताती थीं कि नाना ने माँ से मेरे पैदा होने तक बात भी नहीं की थी। वो तो जब मैं पैदा हो गई और पिता टूर पर रहने लगे तो माँ ने नाना-नानी के घर के पास घर ले लिया ताकि वे लोग मुझे पालने में उनकी मदद कर सकें। नाना-नानी मुझे देखकर ही पिघले थे।"

शैली ने आश्चर्य से कहना चाहा था, "अच्छा, तुम्हारे यहाँ भी माता-पिता का ऐसा नियंत्रण रहता है बच्चों पर? हमारे यहाँ तो..." लेकिन ऐना को स्मृतियों के बीच गुम होते देख चुप रह गई।

ऐना कहानी कहती, ठिठक गई.... अपने घर-परिवार, अपने माता-पिता के संबंधों और उनके चरित्रों पर बात करना कहाँ आसान होता है, वो भी तब, जब वे चले गए हों! शैली उसकी दुविधा समझ रही थी पर एक तो ऐना की माँ के जीवन से उनकी किसी उपेक्षित इच्छा को निकालकर, उसे तृप्त करने का पागलपन और फिर इतनी सच्ची सी कहानी के माध्यम से कैथरीन को कुछ जानने का लोभ! शैली ने धीरे से कहा;

"ऐना, हम औरतों की जिंदगी माँ, बेटी, पत्नी, बहन.. इन सब ख़ानों में बँटते-बँटते इतनी ज्यादा बँट जाती है कि हमें अपने मन और अपने जीवन को समझने के लिए बहुत कम समय मिल पाता है। आज तुम माँ को केवल उसके माँ होने से मत पहचानना बल्कि एक ही जाति की होने से जैसे एक स्त्री, दूसरी स्त्री को पहचानने की कोशिश करती है, वैसे पहचानना! शायद वो यही तुम से चाहती हों!"

ऐना के भीतर बहुत सी यादें घुमड़ रहीं थीं। यादों के इस भँवर के बीच से वह अपनी माँ में एक औरत की तस्वीर ढूँढ़ रही थी। माँ के जीवन को एक औरत के जीवन की तरह निष्पक्ष होकर देखना आसान कहाँ

है! संबंधों और अपेक्षाओं के जमघट तले अगर 'माँ' दबी होती है तो उसके भीतर की 'औरत' तो अपने सपनों के जाने कितने सलीब खींच रही होती है।

ऐना ने कहानी के वाक्यों के बीच फिर अपने को और कैथरीन को ढूँढ़ना शुरू किया। ऐना के कनाडा आने के लगभग डेढ़ साल बाद माँ यहाँ आई थीं। शुरू में वे मौसी के परिवार के साथ ही रहते रहे फिर कैथरीन ने 'फूड टेक्नीशियन' का कोर्स किया और स्कारबोरो अस्पताल के भोजन विभाग में काम करने लगीं। वह जब भी माँ से पिता के बारे में पूछती, माँ कुछ अनमना सा जवाब देकर चुप हो जातीं या कहतीं कि पिता का कनाडा आना लगभग नामुमकिन ही है। ऐना उदास हो जाती! धीरे-धीरे नए जीवन की नई व्यवस्थाओं और कामों के बीच उनका जीवन एक सम ताल में चलने लगा। पिता को कनाडा बुलाने की ऐना की जिद कम होती गई। खुद वहाँ जाने के बारे में तो वह सोच भी नहीं पाती थी, इस तरह पिता का अस्तित्व उनके जीवन से लगभग मिटने लगा था। तभी लगभग 6 बरस बाद पिता अचानक उनके जीवन में दोबारा लौट आए। उसे अच्छी तरह याद है, वह रविवार का दिन था। वह अपार्टमेंट की बालकनी में खड़ी हुई बालों को सुखा रही थी, बिल्डिंग के सामने एक टैक्सी आकर रुकी और उसमें से उसके पिता अपनी अटैची लिए हुए निकले थे। चौथी मंजिल से उसे पहले तो एक क्षण को भ्रम हुआ पर फिर जब उन्होंने गर्दन उठाकर बिल्डिंग की तरफ देखा तो उनके चेहरे और आँखों को इतनी दूर से भी वह साफ पहचान गई। उसकी साँसे जैसे कानों में बजने लगी थीं और वह दौड़ती हुई माँ से आकर लिपट गई थी,

"माँ.. माँ... डैडी... डैडी...!"

शब्द उसकी जुबान का साथ नहीं दे पा रहे थे। माँ के चेहरे पर उसे अपनी जैसी आश्चर्यचकित होने वाली प्रतिक्रिया नहीं मिली थी.. वहाँ एक ठंडा ठहराव था। उसे आज भी उनकी गहरी भूरी आँखों में तैरता असमंजस दिखाई दे रहा था। कुछ सकेंड के बाद उन्होंने उसे अपने से अलग करते हुए कहा था,

"जाओ, सामान लाने में उनकी मदद करो।"

पिता को देखकर ऐना खुशी के मारे पागल हुई जा रही थी। उसने उन्हें आखिरी बार लगभग 11 की उम्र में देखा था और अब वह सत्रह पूरे कर चुकी थी। पिता... उसके हीरो...उसके आदर्श...! उसकी खुशियाँ आसमान छू रहीं थीं। पिता ने उसे 'मेरी प्यारी बच्ची' कहकर बाँहों में भर लिया था और रो पड़े थे। नीली आँखों से बहते आँसू... उसे लगा था जैसे समंदर उनकी आँखों से टपक रहा हो। माँ ने कुछ खुशी दिखाई, कुछ तटस्थता, कुछ असमंजस!

लेकिन उसके बाद ऐना के दिन तो एक नई खुशी से चल पड़े। पिता उनके साथ रहने के लिए ही आए थे, अपनी पुरानी नौकरी छोड़कर! माँ ने कुछ दिनों की छुट्टी ली ताकि पिता कनाडा आने के बाद की सरकारी कार्यवाही आराम से पूरी कर लें। शुरू के कुछ दिनों के खिंचे हुए व्यवहार के बाद लगा था कि माँ-पिता के साथ पुराने दिनों जैसी हो गई हैं। उसने माँ से, पिता से उनके न आने और फिर अचानक आने.. या माँ के ठंडे व्यवहार... इन सब के बारे में बात करनी चाही थी पर दोनों के पास ही बात टालने के कुछ न कुछ बहाने थे और ऐना में उन बहानों को खुरचकर, सच्चाई देखने की कोई इच्छा नहीं थी। जीवन बहुत सालों बाद फुलवारी सा महक रहा था, तो वो फुलवारी की खाद क्यों देखती? घर पर माँ की स्पेशल 'डिशेज' की महक जब-तब आने लगी थी और शाम के समय पिता की किसी धुन पर सीटी बजाने की मीठी आवाज गूँजती। लगभग 10 साल ऐसे ही चला। इस बीच ऐना ने प्रेम किया और फिर प्रेम विवाह! माता-पिता की खुशियों के बीच ही उसकी पहली संतान भी हुई। सब कुछ बहुत अच्छा चल रहा था पर इसी बीच एक दिन पिता अचानक बिना बीमारी के, केवल एक हार्ट अटैक में चले गए। उनकी मृत्यु जितना बड़ा घाव देकर गई, उतना ही बड़ा आश्चर्य लेकर आई थी उसके लिए। तीन लोग आए और उन्होंने अपने को उसका भाई-बहन बताया। उसने देखा, माँ हैरान नहीं थीं और उन्होंने सहजता से उन तीनों को गले लगा लिया। दो दिन रुक कर वे लोग अपने-अपने देश लौट गए। एक बहन न्यू जर्सी, एक जमैका और भाई वापस ट्रिनिडाड! वह माँ से नाराज हुई थी कि उसे यह सब पहले क्यों नहीं बताया

भाषा ISSN 0523-1418

गया? माँ ने उन लोगों को गले क्यों लगाया? तो क्या इन्हीं लोगों के कारण पिता इतने वर्षों तक उसके पास नहीं आए थे? माँ उसकी भावना समझती थीं सो उसके गुस्से को चुप होकर सह गईं। वैसे भी वे कम ही बोलती थीं... और फिर धीरे-धीरे उनकी व्यक्तिगत चुप्पी, ऐना के दोनों बच्चों की किलकारियों और नन्हीं बातों में डूब गई। जिंदगी छोटी-मोटी बीमारियों और ढेर सी व्यस्तताओं के बीच चलती रही। माँ रिटायरमेंट के बाद पूजा-पाठ या बच्चों के साथ समय बिताती। ऐना का घर पास ही था लेकिन वह अपनी समस्त व्यस्तताओं के बीच माँ का खूब ध्यान रखती और ऐसे ही चलते-चलते माँ की लिवर की बीमारी का पता लगा और फिर जल्दी ही खत्म हुई माँ की अनन्त यात्रा...!

ऐना सब बताते हुए सोचती रही, इस कहानी में क्या छूटा और शैली सोचती रही, इन घटनाओं से कैथरीन का क्या रूप बन रहा है? वह इन सब में कहाँ है? हम संबंधों की विराटता में, व्यक्ति की अस्मिता और उसके निजत्व को भूल ही जाते हैं। चाहे यह अस्मिता संबंधों के बीच छोटी ही दिखती हो पर इसे भूला तो नहीं जा सकता! पुरुष की अस्मिता उसके काम, व्यवसाय, संबंध और निजी रुचियों के खाने में शायद सारी की सारी समा जाती है पर औरत सब कुछ होकर भी कहीं न कहीं कुछ छूटा हुआ सा महसूस करती है। क्यों? वह ऐसा क्यों महसूस करती है? इस 'क्यों' के उत्तर के बहुत सारे आयाम हैं, स्तर हैं। यह उत्तर समाजशास्त्र के नियमों में, स्त्री के अवचेतन में, दुनिया के इतिहास में और स्त्री की शारीरिक रचना, सभी में छिपा है। इस उत्तर को पुरुष तो क्या, स्त्री स्वयं भी अक्सर नहीं ढूँढ़ पाती पर प्रायः जीवन के अंत में एक अतृप्ति उसमें सिर उठाने लगती है। वह शांति चाहने की इच्छा में जितना मुस्कुराती है, अकेलेपन में उतना ही एक अनकही व्यथा से थकने लगती है। उम्र की ढलान पर हाथ की सुमरनी माला के मोतियों पर चलती उसकी अँगुलियाँ ऐसी लगती हैं मानो अपने को ही टटोल रही हों, ढूँढ़ रही हों! ऐना माँ की इस अतृप्ति को समझ सकी क्या?

शैली जान रही थी कि ऐना स्मृतियों में जिंदगी टटोलती कितनी थक गई थी। पिछले दो घंटे में उसने अपनी माँ की ही नही, अपने पिता की मृत्यु को भी जिया था। वह उठी और ऐना की पसंद का 'कैरेट केक' और कॉफी ले आई और अपने लिए भी वही सब... इस मामले में दोनों की पसंद एक सी है। बोली,

"ओ माई डियर सिस्टर फ्रॉम अदर मदर.. (ओ. . दूसरी माँ से हुई मेरी प्यारी बहन..) अपने पसंद का केक खाओ... और शब्द नहीं, दिमाग नहीं, अब केवल अपने दिल को चलाओ।"

ऐना ने उसकी तरफ थकी हुई मुस्कान से देखा और बोली,

"वही सब तो इतनी देर से चला रही हूँ, इतना चलाया कि थक ही गई। अपनी कहानी इस तरह पूरी की पूरी तो मैंने कभी किसी को नहीं सुनाई।"

शैली अपनी कॉफी पीते हुए सहमत होते हुए बोली,

"जरूरत पड़ने पर ही तो हम उन गलियों में जाते हैं जहाँ से हमारा अतीत गुजर चुका होता है। ऐसा ही कर के स्मृतियों की धूल से हम ज्ञान के मोती चुनकर लाते हैं। आज तुम जो कुछ मुझे बता रही हो, वह तुम्हारी अपनी आंतरिक यात्रा के पड़ाव भी हैं जो तुमको अपनी माँ को समझने में बहुत मदद करने वाले हैं।"

ऐना ने प्रश्नवाचक निगाहों से उसे देखा तो शैली आगे बोली,

"मैं क्योंकि उनकी बेटी नहीं, इसलिए कुछ दूरी से देख पा रही हूँ, वे दूसरी औरत थीं न तुम्हारे पिता के जीवन में। शायद पहली पत्नी की मृत्यु के बाद ही वे तुम लोगों के पास लौट सके थे। शायद वो चाहती हों कि तुम्हारे पिता तुम्हारे और उनके पास आकर रहते। बच्चों को उन्होंने अपनी उदारता में अपना तो लिया होगा लेकिन..! औरत के पास स्थिति को स्वीकार और उसी में खुश रहने के अलावा क्या उपाय बचता है?

ऐना भी अपनी सोच को कुरेद रही थी, बोली,

"हाँ, बुरा तो लगा ही होगा, तभी तो उनके आने की खबर पहले से जानने पर भी मुझे नहीं बताया था और भाई-बहनों के बारे में तो बिल्कुल भी नहीं बताया"।

उसने माँ से सहानुभूति जताते हुए कहा। शैली स्त्री-दुख से भर कर बोली,

"मुझे तो बहुत गुस्सा भी आया.. वे दूसरी पत्नी हुईं तो क्या, कुछ अधिकार तो उनके भी थे। उन्होंने बात तो की ही होगी न तुम्हारे पिता से इस बारे में कनाडा आने से पहले, क्या पता तुम्हारे पिता यहाँ आने के लिए माने न हों.... इस नए देश में अकेले ही तुम्हें बड़ा करने का काम किया उन्होंने। इन बातों पर तो अब तलाक हो जाते हैं.. अब ऐसे अकेले रहना कोई नहीं सहता। सच, पहले के समय में औरतों को ही सब सहना पड़ता था, फिर चाहें वे भारत की हों या ट्रिनिडाड की... हमारे देश में भी यही हाल है, आदमियों की मनमानी चलती है सब जगह! जब मन आया दूर रहो, जब मन आया पास आ जाओ!"

वे दोनों कैथरीन के दुख को जैसे महसूस करने लगीं और एक नई पीड़ा और सहानुभूति से भर गईं। माँ की विवशता पूरी स्त्री जाति की विवशता में ढल कर विराट हो गई थी जिसके भार से उनके मन भारी होते चले गए।

एक लंबी चुप्पी समुद्र की तरह उनके सामने पसरी थी जिसका कोई किनारा नहीं दिखा था, लेकिन एक कहानी ने आकार ले लिया था और कुछ विश्वसनीय अटकलें चप्पू सी दिमाग को मथ रहीं थीं। बैठे-बैठे बहुत देर हो चुकी थी, घर जाने का समय हो रहा था। दोनों ने तय किया कि बातचीत अब यहीं रोकी जाए और घर को निकला जाए। आगे फिर कोई खास बात होने पर एक दूसरे से तुरंत संपर्क किया जाए, कहते हुए वे गले मिलीं। चलते हुए ऐना ने शैली को इसे कहानी की तरह लिख लेने की सलाह दी, क्या पता बाद में कितना याद रहे और कितना भूल जाएँ? शैली ऐना की कोई संबंधी न होते हुए भी इस समय उसके जीवन और उसकी माँ के सपने में आने के रहस्य का हिस्सा बन गई थी। कैथरीन और ऐना के जीवन को देखने वाली बाहरी आँख!

जीवन के रहस्य कितने भी गहरे हों, प्रकृति का नियमित जीवन अपने हिसाब से फिर भी चलता ही रहता है। खाना-पीना, सोना-जागना, सूर्य और चाँद से बँधे यथावत होते रहे। घड़ी की सुइयाँ घूमती रहीं और इस बात को लगभग तीन महीने हो गए। शैली को वे फिर नहीं दिखाई दीं और वह भी उनके जीवन को अपनी समझ से कागज पर उतार, मानो तर्पण करके मुक्ति पा गई थी।

फिर एक दिन ऐना का फोन आया और उसने शैली को ई-मेल चैक करने के बाद फोन करने को कहा। ई-मेल में लगभग डेढ़ पन्ने का एक हाथ की साफ लिखाई वाला एक पत्र संलग्न था। यह पत्र ऐना के नाम था।

अंग्रेजी में लिखे उस पत्र में ऐना को अपने जीवन की अनखुली बातों के बारे में संक्षेप में बताते हुए कैथरीन ने लिखा था;

"मेरी बच्ची, जीवन एक रहस्य नहीं, बल्कि कर्म की ऐसी भूमि है जहाँ हम अपने मनोभावों के अनुरूप काम करते हुए अपनी दुनिया खुद बनाते हैं। मैंने जब तुम्हारे पिता से विवाह किया, तब जानती थी कि उनकी एक पत्नी और तीन बच्चे हैं। वे मुझसे करीब पंद्रह साल बड़े थे पर दिखने में बहुत आकर्षक और मन से बेहद उदार। हम दोनों ही प्रेम के गहरे रंग में बहुत जल्दी डूब गए। उस समय बहुत से लोग दो शादियाँ कर लेते थे। हमारा समाज उन्हें बुरी निगाह से नहीं देखता था पर तुम्हारे नाना को यह बात पसंद नहीं थी इसीलिए मैंने तुम्हें ट्रिनिडाड रहते कभी बताया नहीं। फिर कनाडा आने के बाद इस बात को कहना उचित नहीं लगा क्योंकि इस समाज में एक ही शादी कानूनी मानी जाती है।

तुम्हारे पिता मुझ से बहुत अधिक प्रेम करते थे पर मैं नहीं चाहती थी कि तुम्हारे पिता अपनी जिम्मेदारियों से भागें। उनकी पहली पत्नी नौकरी नहीं करती थीं पर मैं स्वावलंबी थी इसीलिए मैंने उन्हें कनाडा आने से रोका और अपने जवान होते बच्चों के साथ रहकर, उन की शादी, नौकरी लगवाने आदि की जिम्मेदारियों को खत्म करने को कहा। उस परिवार का हक तुम्हारे पिता पर मुझ से और तुम से पहले था। उन्होंने वो सब कुछ मेरे ही कहने पर किया वरना वे कब के हमारे साथ आकर रहने लग गए होते। बच्चों की शादियाँ करवाने के कुछ समय बाद ही उनकी पत्नी का भी एक बीमारी में देहांत हो गया, जिसके कारण मैं संदेह से भर गई।

भाषा ISSN 0523-1418

मोह आदमी का विवेक खो देता है, और मुझे डर लगा कि कहीं... लेकिन उनके अनेक प्रमाण देने पर कि वे अपनी जिम्मेदारी निभाकर आए हैं, मैंने उन्हें पति रूप में अपने साथ रहने की स्वीकृति दे दी। वे तुम्हें बहुत प्यार करते थे ऐना! उन्होंने तुम्हारे लिए ट्रिनिडाड में एक घर भी बनवाना चाहा था पर मैंने मना कर दिया। धन और घर की आवश्यकता उनके पुत्र को हमसे अधिक है, हमारे पास तो यह अपार्टमेंट है ही, इसका बैंक लोन भी एक न एक दिन समाप्त हो जाएगा। फिर तुम भी ट्रिनिडाड जाकर तो रहने वाली नहीं हो। तुम्हारे पिता के जाने से बहुत पहले से मैं फोन पर उनके बच्चों से बात करती थी। वे तीनों बच्चे कभी-कभी बहुत अकेला महसूस करते थे। उनकी माँ थीं नहीं और पिता भी दूर हो गए थे, ऐसे में उनके मन की हालत के बारे में तुम सोच ही सकती हो। तुम्हारे पिता की मृत्यु पर मैंने ही उन्हें बुलाया था। वे बिल्कुल अनाथ महसूस कर रहे थे, मैंने कहा कि जब तक मैं हूँ तब तक तुम अनाथ कैसे हो सकते हो, मैं तुम्हारी छोटी माँ हूँ और तुम्हारी एक बहन भी है ऐना... जब मैं चली जाऊँगी, तब तुम सब अनाथ हो जाओगे, इसलिए सब आपस में संपर्क रखना। इस तरह हम तीनों माँ-बाप तुम्हारे बीच जिंदा रहेंगे। और देखो, वे तीनों मुझे बराबर फोन करते रहे, मुझे प्यार और सम्मान देते रहे। तुम्हें इसके बारे में नहीं बताया क्योंकि तुम में वह 'मैच्योरिटी' नहीं देखी कि तुम्हारे पिता की पहली स्त्री की बात तुमसे कर सकती। स्त्री भावुक होकर अपना कर्म और विचार शक्ति खो देती है, खुद को कमजोर समझती है और पुरुष को गलत। विचार शक्ति को दृढ़ करने पर सब कुछ विवेक से चलता है, न व्यर्थ का अहंकार आता है और न कमजोर कर देने वाला गुस्सा। न अधिकार की चिंता होती है और न कर्तव्य करने की थकान। मेरे किए को न मेरी महानता समझना और न कमजोरी। बदलते समय और बदले हुए समाज के बीच अपने कर्तव्य और अपनी ही खुशी पर विचार करके जीने की चेष्टा करने वाली एक साधारण स्त्री हूँ मैं जिसे बस एक ही बात समझ आई कि प्रेम स्वार्थी नहीं होता। अपनी खुशी अपने ही हाथ में होती है ऐना, हम चाहें तो उदार होकर जीवन को सुखी बना लें और चाहें तो दुखी। मैं चाहती हूँ कि तुम भी मेरे जाने के बाद दुख और भावनाओं में ही मत बहती रहना। दुख मन की कमजोरी से पैदा होता है, मन को दृढ़..... करके, विवेक से विचार कर जीवन जीना।"

फिर ऐना को घर और संपत्ति के बारे में संक्षिप्त निर्देश देने के बाद उन्होंने अंत में लिखा था;

"हमारे चर्च के नए पादरी एक भारतीय हैं। उनके आने से अपने पूर्वजों का इतिहास दिमाग में ताजा हो गया। इसी समय भारत से आई वो लड़की, शैली तुम्हारी अच्छी दोस्त बन गई है। प्रकृति कोई काम बिना सोचे नहीं करती, न मिलाना और न अलग करना। हम क्रिश्चियन भी हिंदुओं की तरह मानते हैं कि हमारे जीवन में जो कुछ घटनाएँ होना निश्चित किया गया होता है, वही होता है, यह नियम है लेकिन इन घटनाओं से उत्पन्न भावों के प्रति व्यक्ति स्वतंत्र होता है, अपने स्वभाव के हिसाब से प्रतिक्रिया दे सकता है, वह प्रतिक्रिया ही नियति गढ़ती है, तो यह घटना भी महज संयोग नहीं कि शैली का तुम्हारे जीवन में आना और फादर एंटोनी का चर्च में आना लगभग एक ही समय में हुए। उन्होंने बहुत कुछ बताया इंडिया के बारे में। पता नहीं कहाँ से अब जीवन के अंतिम समय में यह इच्छा जाग रही है, ठीक होती और यह इच्छा पहले जागती तो शायद मैं तुम्हें लेकर खुद इंडिया जाती पर अब मैं चाहती हूँ कि मेरे जाने के बाद तुम शैली से कहना कि जब कभी वह इंडिया जाए और अगर उसे परेशानी न हो तो वो मेरे और हमारे पुरखों के लिए कुछ फूल और दीपक गंगा नदी में बहाए और हमारे लिए प्रार्थना करे। मैंने पढ़ा है कि इस तरीके से भारतीय अपने पुरखों के प्रति आदर प्रकट करते हैं..... कभी तो कोई पुरखा हमारा भी आया ही था न उस देश से..! उस जमीन को धन्यवाद कहना भी जरूरी है। शैली को मेरा अग्रिम धन्यवाद और प्यार देना! उम्मीद है जीसस मुझे तुम्हारा गार्जियन एंजिल बनकर रहने देंगे..। मैं हमेशा तुम सब के साथ हूँ मेरी प्यारी बच्ची (मुस्कुराते चेहरे का चित्र:)! तुम्हें और तुम्हारे पूरे परिवार को मेरा ढेरों प्यार और दुआएँ!"

चिट्ठी पढ़कर वह कुछ चौंकी ...! कुछ क्षण शैली उस चिठ्ठी में बहती रही फिर सोचने लगी कि जीवन भर उसे लगता रहा था कि हर औरत की नाल कहीं न कहीं किसी एक जैसे दुख से जुड़ी रहती है पर इस चिट्ठी ने उस मान्यता को एक पल में ही छन्नकर के तोड़ दिया। कितने आयाम होते हैं एक व्यक्ति में.. कौन कब किसे पूरी तरह जान पाया। ऐना और शैली क्या समझ पाएँगे कैथरीन के मन को?

कैथरीन हर मान्यता से कहीं ऊँची और मजबूत दिखाई दे रही थी।

फोन बजने लगा..... 'ऐना ही होगी' शैली ने सोचा और धीमे कदमों से फोन की ओर बढ़ गई।

–2288, डेल रिज ड्राइव, ओकविल, ओंटारियो–एल 6 एम 3 एल 5, कनाडा

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

आराधना

कृष्ण कुमार 'कनक'

दिनभर हुई बारिश के बाद की सांध्यकालीन वेला, स्वच्छ आकाश, हल्के वायु वेग के साथ बहते हिमवर्ण मेघ, अस्ताचलगामी भानु की अरुणिमा से प्रकीर्णित रश्मियों का मोहक छविजाल। अत्याधुनिक शैली से सुसज्जित प्रासाद सरीखी भव्य इमारत की छत पर मौन मुद्रा में विचारमग्न बैठी उन्नीस वर्षीय वयसंधि को प्राप्त नवयौवना आराधना मानो दिनकर के अंतिम दर्शन में स्वयं को विलीन कर रही थी। दाएँ हाथ की अनामिका में एक स्वर्ण सी कांति वाली अँगूठी स्थिर न थी। देखते ही देखते क्षितिज की अरुणिमा शून्य हो गई। श्वेत मेघ भी निशावर्णी हो चुके थे। पक्षियों का कलरव भी शांत। अँगूठी अब भी दोनों हाथों में निरंतर भ्रमण कर रही थी। टकटकी आकाश की ओर,दृष्टि स्थिर...। सहसा आराधना को भान हुआ, माँ कई बार आवाज लगा चुकी है। हर बार उसने यही कहा है "हाँ माँ अभी आई।" आराधना का ध्यान भंग हुआ। अनायास ही देह में दामिनी के कलाप सी अनुभूति हुई, तन का ताप बढ़ा कि बदन पसीना-पसीना। आराधना ने अपना दुकूल संभालकर कंधे पर रखा। उठी और सीढ़ियों से होते हुए नीचे की ओर बढ़ी, ठीक उसी प्रकार जैसे आकाश को छोड़कर भास्कर भगवान शनैः-शनैः अपने शयन कक्ष में प्रविष्ट होते हैं।

भवन की दूसरी मंजिल के मध्य के विशालकाय आँगन में भोजनालय के ठीक सामने बड़ी सी मेज के चारों ओर पुराने जमाने की अप्रतिम सौंदर्य से परिपूर्ण छह कुर्सियाँ पड़ी थीं, जिनके दोनों किनारे गुंबदाकार... ..स्वरूप ठीक वैसा ही जैसा कि आज-कल न्यायाधीश, न्यायमूर्ति आदि की कुर्सियों का होता है। मेज पर दो फूलदान जिनमें कृत्रिम फूलों के साथ ही बीच-बीच में रजनीगंधा और चमेली की अधखिली कलियों की सुगंध पूरे वातावरण को सुगंधित कर रही थी। भोजनालय के दरवाजे के ठीक ऊपर ओम का प्रतीक चिह्न सुशोभित था। इसी प्रकार वाचनालय के द्वार के ऊपर दिगंबर मुनि का अध्ययन मुद्रा का चित्र, शयनकक्ष के द्वार के ऊपर स्वस्तिक, अतिथि कक्ष के द्वार के ऊपर 'सुस्वागतम्' के साथ ही किसी स्त्री के जुड़े हुए हाथों का मनोहारी चित्र। प्रत्येक कक्ष के समक्ष अत्याधुनिक तकनीक के प्रकाश उत्सर्जक यंत्रों से उत्पन्न प्रकाश से संपूर्ण रिक्त स्थान दूधिया प्रकाश में स्नान कर रहा था। मेज पर कुर्सियों के ठीक सामने एक-एक मखमली वर्गाकार पोश पड़े थे। रमा ने एक-एक कर सभी कुर्सियों के सामने प्लेट, काँटा, चम्मच, कटोरियाँ, ग्लास आदि सजा दिए। माँ ने भोजन कक्ष से ही आवाज लगाई "भोजन तैयार है सब लोग आ जाओ।" माँ की आवाज सुनकर सबसे पहले बड़ी बहन मुस्कान, फिर दोनों छोटे भाई रंजीत और आनंद, फिर पिता जी अपनी-अपनी कुर्सी पर आ बैठे। आराधना की कुर्सी अभी भी खाली थी। यद्यपि एक कुर्सी और भी खाली थी किंतु वह कुर्सी तो सदैव ही खाली रहती है क्योंकि माँ कभी पसंद नहीं करती कि भोजन किसी नौकर से बनवाया जाए। रमा ने सबके लिए खाना परोसा। आराधना अभी भी अनुपस्थित थी। रमा ने माँ से कहा "माँ जी! आराधना बिटिया अभी नहीं आई हैं।" वैसे भी नौकरों की इतनी हिम्मत कहाँ कि वे बच्चों को खुद ही कुछ

कह सकें। माँ ने आवाज लगाई "आराधना! भोजन नहीं करना क्या? पहले तो दस बीस आवाजें सुनकर छत से उतरना हुआ, अब कमरे से बाहर तक आने में भी संदेशे भेजने पड़ रहे हैं।" माँ और भी आगे बड़बड़ाती रही। आराधना धीरे से आकर किसी मुरझाई लता सी धड़ाम से अपनी कुर्सी पर आ गिरी। सब भोजन करते समय हँसी मजाक जैसे सामान्य व्यवहार में रत और आराधना टुकड़े गिनने में...।

पिता जी नगर के बड़े व्यापारी, जैन समाज के प्रतिष्ठित समाजसेवी.... दिनभर की थकान कि कहाँ क्या हो रहा है सब पर बिना ध्यान दिए बस भोजन में ही एकाग्र थे। मुस्कान स्नातक की छात्रा है। बड़ी होने के नाते तीनों भाई बहनों को गोद में खिलाया है। सब के स्वभाव से परिचित है। आराधना की कोई बात मुस्कान से छिपी नहीं है। आराधना ने इसी वर्ष बारहवीं की है। विद्यालय के साथ-साथ जनपद में भी प्रथम। आज आराधना का व्यवहार वैसा नहीं जैसा सदैव होता है। वह बिल्कुल शांत है, किसी भयंकर सुनामी के पश्चात् के समुद्र की भाँति। सब भोजन करके अपने-अपने कक्ष की ओर चले गए .....आराधना भी।

सुजाता! तुम तो आराधना की बाल सखी हो, उसका कोई ऐसा क्षण नहीं जो तुमसे भिन्न कटा हो। निःसंदेह तुम आराधना के किसी भी पहलू से अनभिज्ञ हो, यह संभव नहीं। क्या तुम मुझे बताओगी कि आज ऐसा क्या हुआ? कि आराधना का व्यवहार अपने स्वभाव के विपरीत हो गया है। सुजाता ने कहा "जी दीदी!" मुझे सब ज्ञात है। अभी नौ बजे हैं। घर में सब जाग रहे हैं। ये बहुत लंबी कहानी है। मैं आपको सब कुछ बताऊँगी परंतु अभी नहीं। मैं दस बजे के बाद आपको फोन करूँगी, अभी रखती हूँ। सुजाता ने फोन रख दिया।

मुस्कान समझ चुकी थी, कुछ तो ऐसा अवश्य ही हुआ है जिसने आराधना को बहुत अधिक झकझोरा है। मुस्कान ने उठकर अपने कमरे से बाहर देखा। पिता जी के कमरे से खर्राटे की आवाजें रह रहकर आ रही हैं। नौकर अपना-अपना काम निपटाने में लगे हैं। रमा भोजनालय में बर्तन सहेजकर रख रही है। बिरजू काका ने द्वार के प्रहरी को मुख्य दरवाजे पर ताला लगाने का आदेश दे दिया है। माँ वाचनालय में हरिवंश पुराण की टीका बाँच रही हैं। मुस्कान ने आराधना के कक्ष की ओर देखा। दरवाजा अधखुला पड़ा है। प्रकाशहीन कक्ष में एक शाही पलंग के सिरहाने पर रखी टेबल-लैंप का हल्का सा प्रकाश आराधना के अपलक नेत्रों और कपोलों पर से होकर कान के पीछे से केश-कानन में समाते अश्रु बिंदुओं को स्पष्ट दिखा पाने में सक्षम है। मुस्कान उल्टे पाँव अपने कक्ष में आ बैठी। घड़ी की सुई मानो दस गुना मध्यम हो गई थी।

फोन की घंटी बजी। मुस्कान विद्युत-वेग से मोबाइल पर झपटी किंतु देखा कि यह कॉल तो सुजाता की नहीं है। सहसा उत्साह भंग हो गया। घड़ी की ओर देखा, पता चला कि सवा दस बज चुके हैं। सुजाता का फोन अभी तक नहीं आया। मुस्कान एक बार फिर से आराधना के कक्ष की ओर गई। दरवाजा पहले की अवस्था में ही है। किंतु इस बार टेबल-लैंप का प्रकाश आराधना की पीठ पर पड़ रहा है। मुस्कान को लगा कि आराधना सो गई है। तभी उसे अपने कक्ष से मोबाइल की घंटी फिर सुनाई दी। मुस्कान दबे पाँव अपने कक्ष में लौटी। इस बार सुजाता का ही फोन था। बात प्रारंभ हुई। सुजाता ने कहा "दीदी मुझे सब कुछ बहुत पहले ही आपको बता देना चाहिए था। मेरा अपराध क्षमा करें।" सुजाता आखिर हुआ क्या? मुझे सब कुछ सच-सच बताओ। तुम भी तो मेरी बहन ही हो।

ठीक है दीदी मैं सब कुछ सच-सच बताती हूँ आगे सब आपको संभालना है। मुस्कान ने कहा ठीक है तुम बताओ आगे मैं देख लूँगी। सुजाता ने बताना प्रारंभ किया।

.....बात तब की है जब हमने दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आपके कहने से हम दोनों ने अंग्रेजी वाचन कौशल सीखने हेतु एक संस्थान में प्रवेश लिया। वहाँ का माहौल वैसा न था जैसा हमने दसवीं तक देखा था। यहाँ तो सभी लड़के-लड़कियाँ आपस में खूब घुल मिलकर रहते थे। यह सब न मुझे पसंद था और न आराधना को। कई बार तो आराधना ने लड़कों को अच्छी तरह से झाड़ दिया था। किसी की भी हिम्मत न थी कि कोई हम दोनों की ओर नजर उठाकर भी देखे। इसी बीच एक घटना हुई। शनिवार के दिन मंचीय प्रस्तुतिकरण का कार्यक्रम होता था। उसमें एक लड़का सिनेमा के गीत गाया करता था। उसकी पपीहे सी

हृदयभेदी आवाज ने न जाने कैसा जादू किया कि आराधना के द्वारा की जाने वाली प्रत्येक चर्चा में उसी का चिंतन बस गया। मैं भी आराधना के स्वभाव में आए आकस्मिक परिवर्तन से अचंभित थी। पहली बार मैंने अनुभव किया कि आराधना ने स्वयं ही उसके समीप होने के उपाय खोजे। पहले तो उसका नाम ज्ञात किया फिर अरुण से वार्तालाप प्रारंभ किया। अंततः घनिष्ठता इतनी बढ़ी कि आराधना मुझसे ही बहुत कुछ छुपाने लगी।

खैर तीन महीने का समय बीत गया और हमारा वह पाठ्यक्रम भी। हम दोनों ग्यारहवीं में आ गए। आराधना सब कुछ साझा करती थी बस अरुण की चर्चा छोड़कर। यदा कदा बात होती भी तो वह अरुण के वायलिन, सितार और गायन की प्रशंसा ही करती। एक बार जब ग्यारहवीं की परीक्षा चल रही थी तब आराधना ने बताया कि अरुण उसे मिलने के लिए दबाव बना रहा है इसलिए उससे सारे संबंध समाप्त कर दिए हैं। मुझे लगा कि अब सब कुछ ठीक हो गया है। किंतु वास्तव में कुछ भी ठीक नहीं हुआ था। अगले तीन दिन तक वह मेरे घर घंटों तक बैठकर रोती रही थी। तीन चार महीने तक यही सब चलता रहा। आराधना की कठिनाई कम होने का नाम ही नहीं ले रही थी।

हम दोनों बारहवीं में पढ़ रहे थे। अचानक आराधना के स्वभाव में परिवर्तन हो गया। अब वह प्रसन्न रहने लगी। मैं पूछती भी तो वह कुछ न बताती। मैं समझ चुकी थी, आराधना ने अरुण के घृणित प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। किंतु वह मुझे कुछ भी बताने को तैयार न थी। बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद से ही वह फिर से अवसाद में आ गई। तब भी वह मुझे कुछ भी बताने को तैयार न थी।

आज सुबह आराधना मेरे घर आई, बहुत रोई। मैंने पूछा तो बताया कि अरुण का प्रेम देहभाव तक ही रहा है। उसकी दृष्टि में मेरे समर्पण का कोई मूल्य नहीं। पराकाष्ठा तो तब हुई जब शादी की बात पर अरुण ने कहा "तेरे जैसी मूर्ख लड़की से शादी कौन करेगा? आज के बाद मुझसे बात मत करना।"

मुस्कान आश्चर्य में थी। वह आराधना की बड़ी बहन है, इतना कुछ हो गया, आज तक उसे कुछ पता ही न चला। फोन सिरहाने रखकर मुस्कान ने घड़ी की ओर देखा। बारह बज चुके हैं। मुस्कान अपने कक्ष के द्वार पर आई। चारों ओर देखा। पिता जी के कमरे से अब भी खर्राटे की आवाजें रुक-रुककर आ रही हैं। माँ अपनी साड़ी से मुँह ढके अपने कक्ष में सो रही हैं और रमा नीचे दरवाजे के पास चारपाई पर। मुख्यद्वार पर प्रहरी इधर-उधर टहल रहा है। आराधना के कक्ष का द्वार अब भी पहले की तरह ही अधखुला पड़ा है। इस बार टेबल लैंप का प्रकाश आराधना के कपोलों से लुढ़कते अश्रुओं पर ही पड़ रहा था। आराधना के नेत्र अब भी अपलक.....

मुस्कान कक्ष के अंदर पहुँची। पलंग पर सिरहाने की ओर बैठी। धीरे से आराधना के सिर पर हाथ फेरा। आराधना चौंक पड़ी। उठकर बैठ गई। "दीदी आप!" आश्चर्य से कहा।

हाँ मैं, पर तू रो क्यों रही है? अभी तक सोई क्यों नहीं?

कुछ नहीं, मैं कहाँ रो रही हूँ?... बस ऐसे ही आँसू निकल आए हैं।

आराधना तुझे झूठ बोलने की कोई आवश्यकता नहीं और न चिंता करने की। सुजाता ने सब कुछ बता दिया है, दसवीं से अब तक का सब कुछ।

आराधना अपनी बहन के वक्ष से लिपटकर फफक पड़ी। मुस्कान के नेत्र भी सजल हो आए। तुम अभी बच्ची हो। मैं तुमसे दो वर्ष बड़ी हूँ, अनुभव में भी। शायद तुमने मुझे अपने विचारों से अवगत कराया होता तो यह स्थिति कभी न आती। बहन! एक बात सदैव याद रखना, बड़ी पुरानी कहावत है "घर का मारे छाँव में डारे" रक्त के संबंधों का स्नेह आनुवंशिक होता है। संसार में कोई कितना भी स्नेह क्यों न दर्शाए किंतु माता-पिता के स्नेह पर भारी नहीं पड़ सकता। जब यज्ञ की वेदी के समक्ष संबंधों को अभिमंत्रित किया जाता है तभी स्नेह चिरस्थायी होता है। अन्यत्र का स्नेह जो कि देहभाव के आकर्षण से जन्मा है, उसकी गति देहभाव तक ही सीमित होती है। अब जो हुआ सो हुआ, सब कुछ भूलकर अपने बहुमूल्य मानव जीवन को उसकी परम गति तक पहुँचाने के लिए स्वयं को तैयार कर। गीतऋषि गोपाल दास नीरज ने कहा है-

छिप-छिप अश्रु बहाने वालों।

मोती व्यर्थ लुटाने वालों।

कुछ सपनों के मर जाने से

जीवन नहीं मरा करता है।

समुद्र की लहरों से टकराकर लौटती सर्द हवा तन की रोमावलियों में पुलक भर रही थी। इंडोनेशिया के बाली द्वीप में भारतीय दूतावास के सामने विविध प्रकार के वृक्ष हवा के साथ अठखेलियाँ कर रहे थे। सुगंधित पुष्पों की प्रत्येक पंक्ति से विविधवर्णी पुष्पों से निकलकर सुगंध बिखेरते परागकण वायु के साथ झूला झूल रहे थे। दूतावास के मुख्य द्वार के ठीक सामने रखी मेज के पास जंगली लकड़ियों से बुनकर तैयार की गई कुर्सियों पर दो युवतियाँ बैठी आपस में बातें कर रहीं थी। अवंतिका पैंट-शर्ट, काला चश्मा और सिर पर हैट पहने एक पैर पर दूसरा पैर चढ़ाए हाथ में कुछ कामकाजी दस्तावेज पकड़े बैठी थी। धीरे से बोली, "महोदया यद्यपि आपके व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ में कुछ भी कहना मेरे अधिकार क्षेत्र में नहीं है किंतु एक प्रश्न सदैव मेरे मन में चलता रहता है कि आप अपने देश भारत से इतनी दूर हो, फिर भी सदैव साड़ी पहनना ही पसंद करती हो, जबकि इस इक्कीसवीं सदी की लड़कियों द्वारा प्रायः ऐसे परिधान पसंद से परे ही रहते हैं।" आराधना ने हवा में उड़ते साड़ी के पल्लू को ठीक करते हुए कहा "अवंतिका तुम इस भारतीय दूतावास में केवल मेरी मुख्य सचिव ही नहीं बल्कि मेरी सखी भी हो और फिर तुम भी तो भारतीय मूल की हो इस नाते भी मेरी बहन ही हुई। मेरे व्यक्तिगत जीवन के विषय में चर्चा करने का तुम्हें पूरा अधिकार है। रही बात साड़ी पहनने की तो मैं भारत से दूर हूँ भारतीय संस्कार मुझसे दूर नहीं।" एक लंबी साँस खींचते हुए आराधना ने कहा "अवंतिका! एक समय था जब किसी ने मुझसे कहा था कि आराधना तुम साड़ी में संसार की सबसे सुंदरतम् स्त्री प्रतीत होती हो। यह बात कितनी सत्य थी, यह तो मुझे ज्ञात नहीं किंतु उसे मेरे दैहिक सौंदर्य से ही स्नेह था यह बात ही सत्य है यह मुझे अच्छे से ज्ञात है।" इतना कहते-कहते आराधना का कंठ रुँध गया और नेत्र सजल हो आए। अवंतिका ने झिझकते हुए कहा "महोदया! क्षमा करें, अनजाने में मैंने आपके किसी गहरे घाव पर नमक छिड़क दिया।" आराधना ने कहा "ऐसी कोई बात नहीं, तुम अपनी बात पूरी करो।" "नहीं महोदया! मुझे कार्यालय के कुछ कार्य निपटाने हैं। इंडोनेशिया के संस्कृति मंत्रालय से आपके लिए एक गुप्त पत्र आया है, बस वही आपको देने आई थी।" अवंतिका ने इतना कहकर एक पत्र आराधना को सौंपकर नमस्ते कहा और अपने कक्ष की ओर चली गई।

आराधना ने अपनी बहन मुस्कान के कहने पर बारहवीं के पश्चात् संगीत विषय से स्नातक की परीक्षा में विश्वविद्यालय में स्वर्ण पदक प्राप्त करने के बाद संघ लोकसेवा आयोग की परीक्षा प्रथम प्रयास में ही उत्तीर्ण की। आराधना का चयन भारतीय विदेश सेवा के लिए हुआ। उसकी पहली ही नियुक्ति इंडोनेशिया में भारतीय राजदूत के पद पर हुई, जिसका कार्यालय बाली द्वीप में है। यहाँ 80 प्रतिशत से अधिक भारतीय मूल के निवासियों की जनसंख्या है। यहाँ रहते हुए उसे एक वर्ष हो गया है। आराधना नियुक्ति के समय 25 वर्ष की थी अर्थात् भारत की सबसे कम आयु की राजदूत।

आराधना ने पत्र खोलकर पढ़ा। इंडोनेशिया सरकार द्वारा अंतरराष्ट्रीय संगीत प्रतियोगिता का आयोजन बाली द्वीप में किया जाना है। जिसमें भारत सहित विश्व के 108 देशों के संगीत कलाकार प्रतिनिधि प्रतिभागिता कर रहे हैं। जिसके लिए इंडोनेशिया सरकार द्वारा तय की गई पाँच सदस्यीय निर्णायक समिति में आराधना को संगीत कला कौशल में निपुण होने के कारण मुख्य निर्णायक चुना गया है।

आराधना ने पत्र पुनः लिफाफे में रखा। एक कर्मचारी को आदेश दिया कि वह अवंतिका से कहे कि वह इंडोनेशिया सरकार के लिए पत्र-प्राप्ति एवं स्वीकृति पत्र आज ही मुझसे हस्ताक्षरित कराकर भेज दे।

प्रतियोगिता के कई दौर चले। अंततः प्रतियोगिता का आखिरी दौर आ ही गया। आराधना को अंतिम दौर की प्रतियोगिता में उपस्थित होना था। अंतिम दौर की प्रतियोगिता में इंडोनेशिया, फिजी, मालदीव,मॉरीशस, अमरीका, जापान, दुबई, ओमान, दक्षिण कोरिया तथा भारत सहित कुल दस देशों के मध्य निर्णायक मुकाबला होना था। भारत के विदेश सचिवालय से लगातार संपर्क किया जा रहा था। आज आराधना ने गुलाबी साड़ी पहनी

है। माथे पर रोली की छोटी सी रक्ताभ बिंदी और हरे रंग की काँच की चूड़ियों ने सौंदर्य में चार चाँद लगा दिए हैं। आराधना ने कहा "अवंतिका! कितना समय शेष है?" "महोदया! आपकी ही प्रतीक्षा हो रही है।" अवंतिका ने कुछ दस्तावेज संभालते हुए कहा। दोनों दूतावास से बाहर निकलीं। द्वार पर ही एक अत्याधुनिक तकनीक से संपन्न लंबी सी मोटरकार प्रतीक्षा में थी। दस मिनट के मार्ग को तय करके आराधना कार्यक्रम स्थल पर पहुँच गई। खचाखच भरे विशालकाय इंडोर स्टेडियम में आराधना के स्वागत में सभी अपने स्थान पर खड़े हुए। आराधना ने भी अपना स्थान लिया। ठीक पीछे अवंतिका भी बैठी। प्रतियोगिता प्रारंभ हुई। क्रमशः सभी प्रतिभागियों ने अपनी प्रस्तुतियाँ दीं। भारतीय प्रतिभागी के मंच पर आने की घोषणा के साथ ही पूरा स्टेडियम भारत माता की जय के नारों से गूंज उठा। अब तक के सभी दौरों में भारतीय प्रतिभागी सर्वाधिक अंकों के साथ पहले पायदान पर था। मंच पर आते ही मुख्य निर्णायक के स्थान पर बैठी आराधना को देखकर अरुण के पैरों तले जमीन न रही। मानो उस पर वज्रपात हो गया हो। सारा शरीर काँप रहा था। आवाज को मानो लकवा मार गया। अरुण की प्रस्तुति कैसी रही होगी इस बात का अनुमान उसकी स्थिति से ही लगाया जा सकता है। प्रतियोगिता पूर्ण हुई। चारों निर्णायकों ने अपने निर्णय आराधना को सौंप दिए। विजेता प्रतिभागी के निर्णय पर पेंच फँसा था। भारत और इंडोनेशिया के प्रतिभागियों के अंक समान थे। अंतिम निर्णय आराधना को ही करना था। एक ओर मातृभूमि और दूसरी ओर कर्मभूमि। द्वंद्व के बीच फँसी आराधना के किंकर्तव्यविमूढ़ मन से उसका अपमानित प्रेम भी टकराकर कह रहा था कि यही अवसर है, अपने अपमान का बदला लेने का, चूक मत आराधना अन्यथा जीवनभर उस अपमान के विष में ही घुलती रहेगी। आराधना ने आँखें बंद कीं, महावीर भगवान का स्मरण किया। तीन बार ओंकार मंत्र दोहराया। हाथ में माइक थामकर कहा "यद्यपि भारत और इंडोनेशिया दोनों ही देशों के प्रतिभागियों को निर्णायकों ने समान अंक दिए हैं किंतु किसी एक को विजेता घोषित करने की बाध्यता के चलते मेरा यह निर्णय है कि भारतीय प्रतिभागी श्रीमान अरुण जी की प्रस्तुति में आत्मविश्वास की कमी के चलते इंडोनेशिया के प्रतिभागी श्रीमान प्रभंजन सुकुमार को इस अंतरराष्ट्रीय संगीत प्रतियोगिता का विजेता घोषित किया जाता है।" आराधना की घोषणा के साथ ही स्टेडियम के बाहर गगनभेदी पटाखों की आवाज और प्रकाश दोनों एक साथ बिखरने लगे।

रात के दस बज चुके थे। समुद्र की लहरें शांत, चारों ओर सन्नाटा। हल्की शीतल वायु कक्ष के रोशनदान के पर्दे को हिला रही थी। टेबल लैंप के प्रकाश में अपनी डायरी लिखती आराधना के मनोभावों में स्थिरता न थी। कुछ ही पलों में आराधना दसवीं की परीक्षा से बाली द्वीप की संपूर्ण यात्रा तय कर चुकी थी। अरुण का प्रकंपित स्वर और अट्टहास करता अपमानित एकनिष्ठ पवित्र प्रेम दृष्टि पटल पर कोलाहल कर रहा था। सहसा आराधना के दृगों से दो जलबिंदु कपोलों को गीला करते हुए डायरी के पन्ने पर जा बैठे। टेबल लैंप के प्रकाश में दोनों आँसू सीपी को त्यागकर निकले मोती से चमक रहे थे।

– 'कनक-निकुँज' गाँव/पोस्ट-गुँदाऊ, ठार मुरली नगर, थाना लाइन पार फिरोज़ाबाद, उत्तर प्रदेश-283203

❑❑❑

वेद सभ्यता के आदि ग्रंथ

सतीश श्रोत्रिय

वेद मानवीय सभ्यता के आदि ग्रंथ हैं।
ये अतीत जीवन के आरंभिक मंत्र हैं।।

ये भारतीय संस्कृति के सर्व प्राचीन स्रोत हैं।
दार्शनिक भाव, धर्म व विश्वास से ओत-प्रोत हैं।।

मनु स्मृति कहे वेद धर्म का मूल सर्व ज्ञान निधि है।

वेद सनातन, पथ प्रदर्शक, वेद अभ्यास तप विधि है।।

ऋग्, यजु, साम, अथर्व ये चार ग्रंथ वेद हैं।
ये चार संहिताएँ मंत्र संग्रह युक्त ये चार वेद हैं।।

वेदों के गूढ़ ज्ञान की व्याख्या हेतु ब्राह्मण ग्रंथ है।
ब्राह्मणों के दो भाग आरण्यक व उपनिषद में मंत्र हैं।।

आरण्यकों में वानप्रस्थ जीवन का वर्णन है।
उपनिषदों में अध्यात्म व बह्म विद्या का वर्णन है।।

ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन सर्वमान्य ग्रंथ है।
इसमें धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान कला के मंत्र हैं।।

ऋग्वेद में देवताओं की मंत्रयुक्त अनेक स्तुतियाँ हैं।
इसमें तैंतीस देवाताओं की सफल प्रस्तुतियाँ हैं।।

यजुर्वेद में मूल तत्व ज्ञान, कर्म, उपासना के मंत्र है।
प्रसिद्ध गायत्री मंत्र यजुर्वेद का ही मूल मंत्र है।।

तत्व ज्ञान, कर्म उपासना के मंत्र हैं।
सामवेद का परम अर्थ ऋचा और स्वर ज्ञान है।
इसमें मंत्र गीति तत्वों से पूर्ण उपासना प्रधान है।।

अग्नि, सूर्य, सोम रूप स्तवन की मूल भावना है।
विश्व तथा समस्त चराचर-हित मनोकामना है।।

सामवेद का पाठ सस्वर पाँच अंशो में होता है।
जो हिंकार, प्रस्ताव, उद्ग्रीथ, प्रतिहार, निधान होता है।।

अथर्ववेद में आयुर्वेद, राजधर्म व समाज व्यवस्था है।
अध्यात्मवाद ईश्वर, जीव, प्रकृति की व्याख्या है।।

उपनिषदों से वैदिक कर्मकांडों के तत्व ज्ञान प्राप्य हैं।।

मनुष्य को विद्या व अविद्या के ज्ञान से अमरत्व प्राप्य है।।

शाकल ऋषि ने वेदों के मंत्रो के पाठ की रीति चलाई।
संधि विच्छेद करके उनको स्मरण करने की रीति बताई।।

– मुगलपुरा, जावरा, जिला-रतलाम, मध्य प्रदेश-457226

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

घर

दिनेश चमोला ''शैलेश''

घर,
घर ही
कहाँ होता है तब
जब घर रूपी घोंसले से
फुर्र उड़ जाते हैं
माँ-पिताजी रूपी चिड़ा-चिड़ी
जिनके स्नेहिल घोंसले से जुड़ी होती हैं
अतीत की मधुर स्मृतियों के
कई-कई भावुक अंतः सूत्र
ऐसे में भला घर
कैसे रह सकता है घर....?

उनके जाते ही
उड़ जाते हैं परखचे
रिश्तों के काँचनुमा..... संबंधों रूपी जार के
विफर पड़ती है पूर्वजों की
लंबे समय से खून-पसीने से निर्मित
आस्था व मर्यादा की गठरी

समूचा अपनापन
बदलने लगता है
एक अजीब से बेगानेपन में
गहरे से सालने लगती है
अपनों व अपनेपन के मध्य
उग आई वैमनष्य व निकृष्ट
सोच की यह काँटोंभरी दीवार.....
जो कर देती है ज़ार-ज़ार

वर्षों से कमाई गई पूर्वजों की
इस अनमोल विरासत को
पल भर में ही

दुम दबाकर
ओझल हो जाते हैं
स्वार्थ की
लिजलिजी आधारशिला पर पनपी
अस्थायी, कृत्रिम संबंधों की खेप
जिनका प्रेम व नेह टिका होता है
महज भौतिक प्रलोभनों पर

सब कुछ
रहता है वहीं.... व वैसे ही
लेकिन बदल गए लगते हैं
रिश्तों के मायने और
जीवन को उनकी तरह देखने के नजरिए भी
सब कुछ उड़ गया लगता है वह
जिसके लिए धूल-धूसरित
हो गया था पुरखों का
कतरा-कतरा जीवन

उनके
लगाए हुए
फल-फूलों के बड़े-बड़े उद्यान,
सीढ़ीनुमा खेतों की मुंडेरों पर
गगन चूमते, लहलहाते हरे-भरे चारे

व माल्टे-संतरे के पेड़
अभी भी वैसे के वैसे हैं
लदे फूलों व फ़लों से

बेतरतीबी से
तिनके-तिनके
बिखरे घर की स्मृतियाँ
बिखरी रहती हैं यत्र-तत्र-सर्वत्र
जुटाई गई बेशकीमती चीजों से
उड़ गया है
नेह व अपनत्व का पंछी वैसे ही
जैसे उड गया
पिताजी की देह से प्राण

अब
बड़ी जोड़-जुगत से जुटाई गई
सामग्री से नहीं झरता
नेह, अपनत्व व करुणा का शहद

बल्कि
लगी है सब अपनों में
उन्हें हड़पने की जबरदस्त होड़
अब घर गृहस्थी के सारे उपादान,
जिन्हें जुटाया था माँ पिताजी ने.....
अपना सारा यौवन, सपने व
सारी खुशियाँ रेहन रखकर,
चाहे वह जमीन जायदाद हो या प्लाट मकान...,
अपनी संतति के भावी सुखद जीवन के लिए

वही घर
जिसके दर्शन मात्र के लिए
कितने व्याकुल रहते थे मन और प्राण...
वही आज, माँ पिताजी के बिना
बन गया है वाद, विवाद व वैमनस्यता का अड्डा

घर अब
कहाँ रह गया है घर
अब तो मिट्टी गारे की ही तरह
हो गए हैं
उसमें बसने वालों के मन भी
अब इस घर में
माँ पिताजी के घर की कल्पना करना
है नरक में स्वर्ग की संकल्पना सदृश

टूटना संस्कृतियों का
विध्वंश का पर्याय हो सकता है
भावी मानव व मानवता के लिए
घर को घर बनाए रखने की
यथार्थमय परिभाषा भला कब समझेगा आदमी?

- 157, गढ़ विहार, फेज -1, मोहकमपुर, देहरादून -248005

❑❑❑

गज़लें

अश्वघोष

(1)

शामिल है हर दुर्घटना में
इक ज़ालिम डर दुर्घटना में

चिड़िया को यह ज्ञात नहीं है
कब टूटा 'पर' दुर्घटना में

धड़ के सँग दस्तार मिली बस
ग़ायब था सर दुर्घटना में

हो जाना था ख़त्म हमें भी
होते हम गर दुर्घटना में

क्या बतलाएँ तुमको, हमने
खोया है घर दुर्घटना में

(2)

खुद से मिलकर हिम्मत आई
क्या कर लेगी अब तनहाई

जब से घर आई मँहगाई
चिंता में डूबी भौजाई

जाने कब धोखा दे जाए
तुझको ही तेरी परछाई

घूम रहा है झूठ घरों में
छुप कर बैठी है सच्चाई

सुख को खोज नहीं पाए हम
यूँ ही अब तब उम्र गँवाई

(3)

ये तो उसकी मनमानी है
सिर्फ हमीं पर निगरानी है

नैपथ्यों में हैरानी है
मंचों पर क्यों नादानी है

सब को जान गए हम, अब तक
इक तू ही बस अनजानी है

जाने कब से नंगा है सच
उसको लुंगी पहनानी है

मुश्किल से हमने यह जाना
मुश्किल में ही आसानी है

(4)

चेहरे पर जो चेहरे हैं
जाने कैसे ठहरे हैं

सिर्फ उन्हीं से यारी रख
जिनके ख़ाब सुनहरे हैं

चाहे जितना चिल्लाओ
सत्ता में सब बहरे हैं

उजियारे के घर पर क्यों
अँधियारों के पहरे हैं

दुनियाभर के सारे ग़म
मुझमें आकर ठहरे हैं

– 7, अलकनंदा एन्क्लेव, जनरल महादेव सिंह रोड, देहरादून, उत्तर प्रदेश-248001

❑❑❑

किराए की जिंदगी

गोल्लापूडि मारुति राव

अनुवादः श्रीपेरंबुदूरु नारायण राव 'श्रीनारा'

आप जब कभी विशाखापट्टनम जाएँगे तो कुरुपाम् मार्केट के पास से चलते हुए दाईं ओर राम मंदिर दिखेगा। उसके पास की गली की तरफ नज़र घुमाएगें (आपको घूमने की ज़रूरत नहीं) तो एक कच्चा मकान दिखाई देगा।

वही रामनाथम् जी का मकान है।

रामनाथम् जी को इस संसार में आए पचास वर्ष हो गए हैं और तालूका ऑफिस में आए, गुमास्ता के रूप में, तीस वर्ष। नौकरी से रिटायर होकर दस महीने, उस मकान को खरीदकर छह महीने और बेचकर एक सप्ताह हुआ। न जाने क्यों रामनाथम् जी के मकान खरीदते समय ही मुझे विश्वास हुआ था वे उसे बेचेंगे। बेमुरव्वत मैंने वह बात उनसे कही। पर उन्होंने न सुनी।

"तेरी सूरत! अपशकुन बातें और तू!" उन्होंने कहा। आप पूछेंगे कि उस प्रकार विश्वास मुझे क्यों हुआ? तो मेरा जवाब है कि वे अच्छे इंसान हैं। वे भले मानुष हैं कहने के लिए ये छह बातें पर्याप्त हैं- उनके स्वयं का फटा-पुराना कोट, केवल मंगलसूत्र (सूत्र ही सोना नहीं) से देवी पार्वती-सी लगती उनकी बूढ़ी पत्नी, शादी-शुदा उनकी बड़ी बेटी, विधवा हुई दूसरी बेटी, अब कभी शादी न होगी तय हुई बात, पढ़ी-लिखी चौथी बेटी, स्वर्गीय हुआ उनका बड़ा बेटा। ईमानदारी और सख्ती से वे नौकरी करते हुए कई लोगों के शत्रु हुए।

शुरू से ही वे किराए के मकान में रहने लगे। किराए के मकान में, किराए के पलंग पर पैदा हुए, किराए के मकान में पले-बड़े हुए, बच्चों को जन्म देकर उनकी शादियाँ भी किराए के मकान में रचाई।

छप्पन साल की जिंदगी में खो दी गई ख्वाहिशों के जाने के बाद बची हुई एक ख्वाहिश है कि अपना कहे जाने वाले मकान में जिएँ। इतने दिनों से वह कैसे भी साध्य नहीं हुआ। अब उस आकांक्षा में कुछ सुधार किया- अपना कहलाने वाले मकान में आँखें मुदें तो भी ठीक है। रामनाथम् जैसे अ़च्छे लोगों के हाथ साहसपूर्ण ख्वाहिशें भी न आती हैं ।

सेवा मुक्त होने पर मिले रुपयों को लेकर मेरे पास सलाह-मशवरे के लिए आया तब मैंने उनसे कहा-

"आप तो जानते हो साहब! मजे से पचीस रुपए देने पर भी आप दोनों बड़े प्राणियों का निर्वाह हो जाएगा।"

मेरी बातों से उनके मन को ठेस पहुँची। वृद्ध आँखों के किसी कोने में आँसू आने लगे- फिर मैंने उनके उस विचार पर कोई दबाव नहीं डाला। उस रक़म से एक झोपड़ी खरीदकर उसमें पड़े रहने की उन्होंने ज़िद की।

जिंदगी में आई मुसीबतों तथा, मकान मालिकों के दिए कष्टों के साथ मिश्रित बाधाओं को झेलते हुए इतने दिनों की जिंदगी उन्होंने गुज़ारी। इतने दिनों के बाद कुछ तो स्वेच्छा से, सुख से जीने के सपने देखे उस वृद्ध प्राणी ने।

नीचे ऊपर होते हुए- अब तक मेरे बताए मकान का मोल-भाव कर, कितनी ही क़ीमत क्यों न हो? हाथ

भाषा ISSN 0523-1418

आई लगभग सारी रक़म खत्म हुई- मन को तृप्ति प्राप्त हुई।

पूर्णकुंभ पकड़े वृद्ध दंपत्ति के उस घर में प्रवेश करते समय तथा उनकी बेटियों द्वारा दीवारों पर भगवानों के चित्रपट टाँगते हुए देख मेरी आँखें नम हुईं।

वाह! बड़े मियाँ ने इतने दिनों बाद सचमुच एक अच्छा और बढ़िया काम किया है, मुझे बहुत खुशी हुई।

तदनंतर एक महीने भर उस परिवार को फुर्सत ही नहीं मिली। घर के सामने की थोड़ी-बहुत जगह में सब्बल, पारा लिए पिता द्वारा गड्ढे खोदते रहने पर बेटियाँ बेकार के पौधों को निकाल-निकालकर उस जगह को साफ करने लगीं। गेंदा, चमेली, गुलाब आदि फूलों के साथ-साथ पालक, बैंगन आदि के पौधों को रोपने लगीं।

घर के सामने का आवरण तीसरे दर्जे के रेल के डिब्बे सा तैयार हुआ। रोपे गए पौधों में कई तो बचे ही नहीं, लेकिन उन्हें रोपकर उन परिश्रमियों के चेहरे दमक रहे थे।

उस घर में पाँच कमरे हैं। पिछवाड़े में छोटा-सा रसोईघर, एक कोने में टिनों से छाया हुआ स्नान-कक्ष-बड़ा कुआँ। कुल मिलाकर घर बड़ा न होकर भी.... स्वेच्छा से उस घर में रहते चार जन, चार कमरों में सोए भी तो एक कमरा बचा ही रहता है।

एक महीना खत्म होते ही एक दिन सब्जी मंडी में रामनाथम् जी से आमना-सामना हुआ। बहुत ही जल्दी में लग रहे थे। सारा दिन सब्जी मंडी में गुजारने वाले रामनाथम् जी के पैर एक जगह नहीं टिक रहे थे। लगभग दौड़ने जैसे था उनका इधर-उधर चलना।

मिलने पर नई वेराइटी के गुलाब के पौधों को बंगलोर से लाया हूँ। धूप निकलने के पहले उसे बाड़ बाँधकर सुरक्षित करना है ऐसा कहते हुए चल दिए।

मैं आश्चर्य से उन्हें देखता रह गया । मेरी आँखों को वे कुछ दस साल कम उम्र के लगने लगे। कितनी ही आराम की ज़िंदगी और तसल्ली के माहौल में जीने वाले लग रहे थे।

चलते-चलते एक पल रुककर उन्होंने कहा-

"अपना घर हमें बहुत ही बड़ा लग रहा है रे। एक हिस्सा किसी को किराए पर देना चाहता हूँ। "

तो मैंने कहा- साहब मकान मालिक के उलाहनों से खुद को बचाने के लिए तो आपने मकान खरीदा है और अब खुद मकान मालिक बनाना चाह रहें हैं? यह नई तकलीफ़ क्यों?"

तुझे पता नहीं है रे- पेंशन के पैसें खत्म[1] "हो गए हैं। रोज के खर्चों के लिए कुछ तो रक़म हाथ में होना चाहिए न- मैं ज़रूरत के लिए किराए पर देना चाह रहा हूँ- फ़ायदे के लिए नहीं" - ऐसा उन्होंने कहा।

उद्देश्य अच्छा ही है- उनका बताया गया कारण भी ठीक है। मैं मना नहीं कर सका।

एक रोज मैं उनके घर पहुँचा- किराए पर देना चाह रहे हिस्से में सभी प्रंबंध कर रहे हैं रामनाथम् जी। पीछे बाँस की बाड़ से बाथरूम का प्रबंध कर रहे हैं। सामने की ओर बरामदे में छोटा सा हिस्सा किराएदार के लिए अलग से है- इतना ही नहीं,उस हिस्सा के सामने के पौधे के फूल वही इस्तेमाल कर सकते हैं। उस हिसाब के एक चमेली मंडप और कुछ खास-दिसंबर फूल आदि किराएदार के हिस्से में आएँगे। इतना सुख कौन मकान मालिक देगा? वीथि में नल-बगल में बाज़ार- उस ओर अस्पताल- डाकघर सभी हैं। दो कमरे- रसोईघर- बाथरूम के लिए उस जगह के कोई भी कम से कम अस्सी रुपए तो देगा। 'कोई पूछे तो कहना- अस्सी'- मैंने कहा।

बस, रामनाथम् जी को एक दम गुस्सा आ गया।

"मुझे क्या ब्याज का व्यापारी समझा, या कोई दग़ाबाज समझा?"

समझ में न आकर मैं दंग रह गया।

"इस घर पर व्यापार कर हजारों कमाकर बंगले बनाने के लिए नहीं रे बाबू। किसी छोटे परिवार वाले को- 40 में दे दूँगा। एक पैसा भी अधिक न लूँगा"- उन्होंने फौरन कहा।

"लेकिन इस घर पर आसानी से अस्सी आएँगे" - मैंने कहा।

"तुझे समझ में नहीं आएगा। किराए पर रहने वाले किराया चुकाने के लिए कैसी मुसीबतें उठाते हैं। इन्हें तकलीफ़ देकर मैं क्या सुखी रह सकूँगा"- उन्होंने कहा।

"लेकिन इस छोटे से पोर्शन के लिए अस्सी अदा करने में उन्हें कोई दिक़्कत नहीं होगी।" मैंने समझाने की कोशिश की।

लेकिन वे नहीं माने। चालीस वर्षों के किराए के जीवन ने उनके मन पर भयंकर प्रभाव डाल रखा था।

उस पीड़ित सपने की जिंदगी कितनी भयानक होगी उन्हें पता है। उसे औरों की ज़िंदगी में प्रवेश कराना रामनाथम् जी को- कम से कम खुद की ओर से, उन्हें पसंद नहीं है- यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी- ऊपर से वे भले आदमी हैं। भले आदमी की सद्भावना एवं दुष्ट की दुर्भावना को बदलना मुश्किल है।

उस घर में सवेरा होते-होते कोई न कोई अवश्य आएगा ऐसा मेरा विश्वास था। कहना ही पड़ेगा कि मेरा मन ही वहाँ रह जाने का किया। वैसे मकान को कौन न लेना चाहेगा है भला? वह भी ऐसे नेक का।

लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि- दो महीनों के बीतने पर भी किसी को भी उस मकान में आने का मन न हुआ। इस विषय को जानकर मैं अचंभित रह गया। कोई क्यों नहीं आ रहे हैं समझ में न आकर मैं असमंजस में पड़ गया। आखिर में समझ आने पर अचरज हुआ।

बहुत ही कम समय में इस घर के बारे में- उस घर के यजमान के बारे में दस तरह की बातें सुनी मैंने।

रामनाथम् साहब से पूछने पर कुछ बातों का पता चला-

आने वालों को घर की सारी बातें पसंद आती हैं। किराए पर आते ही आश्चर्य में पड़ जाते हैं- साधारणतया ऐसे संवाद होता-

"किराया कितना है सर?"

"चालीस"

"क्या सिर्फ चालीस?"

"चालीस ही"

"इतने अच्छे घर के लिए केवल चालीस?"

वहाँ से प्रश्नों की कतार-

"इससे पहले कौन रहते थे?"

"उन्होंने क्यों खाली किया?"

"अच्छा तो यह मकान बिका क्यों?"

"चालीस ही? या मैंने बराबर नहीं सुना?" -ऐसे प्रश्न ही बहुत जनों से पूछे गए।

किराया कम होने पर सभी ने आश्चर्य ही प्रकट किया तो परवाह नहीं। पर तरह-तरह के शक पैदा किए हैं।

कम में कोई तो बात ज़रूर है, वरना केवल चालीस में ही देने के लिए क्यों उतारू होते? -यह था हर एक का शक! उस घर के बारे में किराएदारों से तरह-तरह की बातें करते सुनी मैंने।

कोई कहता है- यह मकान समाधियों के ऊपर बनाया गया है शायद- शोभा नहीं देता यह मकान- वहाँ रहती एक गृहिणी की आत्महत्या के बारे में सुना है मैंने, कोई कहता- उस पेड़ पर शैतान ने घर बनाया है, ऐसा सुना है मैंने, कोई कहता -मैंने सुना है कि सारा घर ही शैतानों का है।

यहाँ तक ही बात रह जाती तो ठीक था-

"उनकी बेटियों की शादियाँ भी नहीं हुई- यह बात मालूम है आपको! वही असली कारण है" कुछ लोग यह कहते हुए मुस्कुरा देते हैं। "तीसरी लड़की की शादी न होने का कारण- इस घर से जुड़ा हुआ लगता है" -यह सब फुसफुसाते हुए कहते।

इन बातों को रामनाथम् जी ने कैसे झेला, पता नहीं। लेकिन उनके बारे में पहले से ही जानता मैं ऐसी बेबुनियाद बातें सुनकर बेचैन हो गया। इस घर का किराया केवल चालीस रुपए!

किराए का घर ढूँढ़ने वालों से "बाजार के बगल की गली में 40 रुपए किराए वाले मकान को देखा है क्या?" -कहते हुए हँसते हुए सुना है मैंने।

"बाप रे! मेरे मित्रों ने पहले ही सूचना दी" -ऐसा कहकर लोगों को हँसते हुए सुना है मैंने।

वह घर लोगों के लिए एक हँसी-ठिठोली की तरह बन गया। यदि कोई कहीं कम किराए पर मकान पाया तो- रामनाथम् जी के मकान जैसा क्या, यह कह कर हँसते हुए भी सुना है मैंने।

बाद में एक रोज सुबह रामनाथम् जी बडी दुश्चिंता में हमारे घर चले आए। उन्हें देख मैं हैरान रह गया। वे और दस साल बूढ़े होने की तरह नज़र आने लगे।

मैंने कहा "महाशय जी!"

"बहुत ही मुसीबत में फँस गया हूँ बेटा। तुम ही रक्षा करोगे" कहते हुए उन्होंने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए। मैंने नहीं पूछा कि क्या बात है? 'वह बहुत तकलीफ़ में लग रहे थे'।

"घर बेचना है बेटा, जितनी जल्दी हो सके तो मैं उतना सुखी रहूँगा" -उन्होंने कहा। उस पल उनके मुख पर बाधा देखकर मेरी आँखे भर आई।

अब उस मकान को बेचना कितना कष्टदायी है मैं जानता हूँ। फिर भी मैंने उनसे उसका जिक्र नहीं किया।

"ठीक है, हो जाएगा" -मैंने कह दिया।

इतना कह देने से उतनी आसानी से विषय का परिष्कार नहीं हुआ।

लेकिन दो महीने बाद नाना प्रकार की मुसीबतें उठाकर -ब्रोकर को दिए जाने वाले कमीशन से अधिक कमीशन देकर- अन्य गाँव की पार्टी को बेच दिया मकान। रामनाथम् जी के मकान खालीकर जाते समय मैं भी वहीं रहा।

घर से विदा लेते समय उनके मन में कहीं तृप्ति भी रही होगी कि नहीं पता नहीं पर उस आकांक्षा को उतनी क्रूरता से तोड़ने की कोशिश करते हुए उनके चेहरे पर उभरे दुख को मैंने ताड़ लिया। खुद के हाथों से रोपे फूलों के पौधों को देख संजीदगी से दहलीज पार करते हुए बच्चों को देखा मैंने।

रामनाथम् जी के लिए इस उम्र में यह सब सहना बहुत कष्टकर रहा होगा।

उनका पुराना उत्साह भी खो गया।

इस संसार में मनुष्यता के रूप में प्रत्यक्ष अच्छाई पर किसी ने विश्वास नहीं किया। भलाई का फेस वैल्यू खराब हुआ। आखिरकार उनके व्यक्तित्व पर तथा शील पर भी प्रभाव दिखाई दिया। उनका जीवन ही शिथिल हुआ।

एक छोटे-से मकान में तीस रुपयों के किराए पर रहने आ गए।

फिर से किराए का जीवन आरंभ हुआ। आराम से श्वास लेकर -उस भयानक सपने को भूलकर किराए के मकान में विश्राम करने की स्थिति थी वह।

अंततः रामनाथम् जी को विश्राम मिला होगा। फिर कुछ ही दिनों में- किराए के मकान में चिर विश्राम को प्राप्त हुए।

– 'साहित्य साधना', प्लॉट नंबर - 16, म. नं. 10-167, गायत्री होम्स, हैदराबाद-500097

❑❑❑

दहलीज

वर्षा सोलंकी

कई दिन व्याकुलता में बीत गए। आज अनंता इस व्याकुलता को छोड़ खड़ी हुई, नहाकर फ्रेश हो गई, क्या पहनूँ? वह कुछ तय नहीं कर पा रही थी। वह वार्डरोब के सामने खड़ी रही। हाँ यही नेवी ब्ल्यू कलर की साड़ी.... पर साड़ी सागर कितने प्यार से उसके लिए ले आया था। प्यार से? ऐसा तो वह करता था पर क्या वह सच में प्यार से ले आया था? क्या सागर उसे प्यार करता था? दोबारा अनंता का मन बेचैनी से सराबोर हो गया। वह पलंग पर बैठ गई। कहीं जाने का विचार छोड़ दिया। दिन यूँ ही बीत गया।

शाम को सागर कोलकाता से आया था, अपनी बिजनेस मीटिंग से, बिजनेस मीटिंग? कैसी मिटिंग यह तो अनंता आज भी नहीं समझ सकी थी। आने पर सागर ने तुरंत कहा अनंता क्या बनाया है? बहुत भूख लगी है जल्दी खाना परोसो। अरे बाहर का खाना खा-खाकर बोर हो जाता हूँ। बिजनेस के सिलसिले में बाहर रहना होता है यह तो ठीक है पर यूँ बाहर का खाना मुझे रास नहीं आता। अनंता यकीन करो मैं जब बाहर जाता हूँ तब तुम याद आओ ना आओ पर तुम्हारे हाथ का खाना मैं बहुत मिस करता हूँ। सागर को लगता उसकी इस बात से अनंता खुश हो जाएगी। अनंता ने अपने मन की पीड़ा, दर्द को भीतर ही दबाकर कहा लो फिर छोड़ो ना यह सब भागदौड़, हमारे बच्चे बड़े हो गए हैं अच्छी जगह सैटल हो गए हैं। अब शांत होकर बैठो। इतना ही कहने पर सागर चिढ़ गया। अनंता तुम क्या बोलती हो पता है तुम्हे? जानती है तू, कितनी मेहनत से बिजनेस जमाया है। अगर उस पर ध्यान ना दूँ तो कितना नुकसान हो सकता है। कितने लाख की ही नहीं कितने करोड़ की हानि हो सकती है? तुझे तो बस कहना ही है। अनंता चुप हो गई। अंदर ही अंदर घुट रही अनंता उदास हो गई। खाना खाते समय भी सागर का ध्यान तो मोबाइल में ही रहता है। सामने से बात हुई सागर ने जवाब दिया हाँ-हाँ पहुँच गया हूँ। आप भी पहुँच गए होंगे, चलो बाद में बात करता हूँ। अनंता सागर के चेहरे को पढ़ने का प्रयत्न करने लगी। बेसिन में हाथ धोते समय सागर के सामने अनंता ने टॉवेल रखा, हाथ पोंछते हुए सागर ने महसूस किया की वह कितना थक गया है। सागर बात करते-करते बेडरूम में पहुँचा और बेड में पड़ते ही खर्राटे लेने लगा और अनंता फिर अपने पति की उपस्थिति में भी अकेली पड़ गई। अनंता को क्या चाहिए उसकी सागर ने कभी भी परवाह नहीं की थी और अनंता के फरियाद करने पर कहता क्या नहीं है तुम्हारे पास बंगला है, गाड़ी है, साड़ियाँ है, तिजोरी में सोने और डायमंड के गहने हैं, ढेर सारे रुपए हैं, क्या कमी है? सागर चिढ़ के चिल्ला उठता। जिम में जाओ, फ्रेंडस को मिलने जाओ, ऐश करो, लाइफ को एंजॉय करो और अनंता नि:श्वास छोड़कर रह जाती। वह मन ही मन चित्कार उठती। उसका मन बगावत करने पर उतर आता। उसका मन कहता कहाँ है वह पति जिसका नाम मेरे और मेरे बच्चों के नाम के पीछे लगा है, कहाँ है वह पति जिसके नाम की चूड़ी-बिंदिया और मंगलसूत्र पहन के वह शादीशुदा औरत होकर रहती है। जिसकी लंबी आयु के लिए करवाचौथ का व्रत करती हैं और अनंता का मन कह उठता ना ना वह केवल एक पुरुष

भाषा ISSN 0523-1418

ही है जो केवल पैसे ही कमा सकता है, वह मेरा पति नहीं है जिसको मेरे पास बैठने का और बात करने का कभी समय नहीं है। जिसका मन मेरे प्रेम या जज़्बातों का अनुभव नहीं करता।

प्रलोभन और नए जमाने के मोह से हमेशा दूर रहती अनंता सागर के प्यार को पाने के लिए तड़प उठती और सागर रजाई को अपनी बाहों में जकड़कर मानो जन्मो-जन्म की नींद लेनी हो ऐसे सो जाता। सागर के व्यवहार से अनंता की आँखों से आँसू सावन भादो बनकर बह निकलते और अनंता एक गहरी वेदना और पीड़ा से घिर जाती। उसकी सोच दिशाहीन चलती रहती और वह दिवान खंड के सोफे में करवटें बदलती रात बिता देती।

आज सुबह से अनंता को बेड छोड़ने की इच्छा ही न थी। शरीर और सर बहुत भारी लग रहा था। हाँ शायद देर रात तक जागने के कारण ही। वह कुछ देर तक यूँ ही पड़ी रही। अनंता को किसी के बात करने की आवाज सुनाई दी और उसने बेडरूम की तरफ रुख किया। दरवाजे के नजदीक आकर वह रुक गई। सागर फोन पर बात कर रहा था। हाँ श्योर, हम मिल रहे हैं उसी जगह पर.... अंत में बोले गए वाक्य अनंता के कानों में पड़े। फोन रखकर सागर बाथरूम में गया। अनंता ने आकर मोबाइल देखा। आखिरी बार बात हुए नंबर..पर.हाँ....हाँ.... डियर मैं आ जाऊँगी.... पर देखना तुम लेट न होना। अनंता ने फोन कट करके रख दिया। अनंता का दिमाग घूमने लगा। उसके दिमाग की नस खिंचने लगी। बहुत से विचारों ने उसके मन को घेर लिया। सागर ने आकर अनंता को आवाज़ लगाई। अरे अनंता कहाँ हो तुम? अरे भाई एक पार्टी को मिलने जाना है। बिजनेस में फायदा हो सकता है। तेरे हाथ की एक कप चाय मिल जाती तो दिन सुधर जाए। यहाँ खुद का जीवन बिगड़ रहा है यह सोच रही अनंता सागर को देखती रही। कुछ कहे बिना वह चाय का कप रखकर चली गई। सुबह से घर में काम तो बहुत था पर बहुत प्रयत्न करने के बाद भी उसका मन काम में लगा ही नहीं।

अनंता अब सागर की सब चाल समझ चुकी थी। वह खुद भी चाय का कप लेकर सोफे में बैठकर चाय पीने लगी और सागर अनंता को बाय करके तेजी से घर के बाहर निकल गया। अनंता का मन अनेकों विचारों से घिर गया। अनंता सोचने लगी कहाँ भूल हुई थी उसकी? क्या कमी थी उसमें? क्या नहीं था उसके पास जो एक आम स्त्री के पास होता है? कि जिसको हासिल करने के लिए सागर को पराई औरत के साथ संबंध बनाने पड़े? क्या वह खुद इस राह पर जाएगी तो सागर को पसंद आएगा? वह खुद किसी पराए मर्द के साथ घूमेगी तो सागर को कैसा महसूस होगा अनेक प्रकार के विचारों ने अनंता के मन को घेर लिया।

अचानक डोर बेल बजी और अनंता की तंद्रा भंग हुई उसने उठकर दरवाजा खोला, हाय अनु भाभी क्या कर रही थी? सागर कहाँ है? क्या कर रहा है? अभी भी सो रहा है? भाभी आपके जैसी बीवी पाकर कौन खुश न होगा? अनेक सवाल साहिल पूछता ही रहा। यूँ अचानक साहिल का आ जाना अनंता के लिए नया नहीं था। सागर की लगभग सभी छुट्टियाँ साहिल के साथ ही पास होती थीं। साहिल सागर का मित्र था। दोनों घंटों बैठकर बातें करते और अनंता चाय-नाश्ता बनाकर दोनों की दोस्ती और छुट्टी के दिन को खास बनाया करती। अरे अनु भाभी क्यूँ अकेली चाय पी रही हो? साहिल अनंता को पूछ रहा था। अरे.... कुछ नहीं..... बैठो ना आप भी चाय पीकर जाओ। सागर तो कब का पार्टी को मिलने के लिए निकल गया है। बात करते-करते अनंता साहिल के लिए चाय का कप भर लाई। दोनों चाय पीते-पीते बातें करने लगे। ऐसा कभी नहीं होता पर आज अनंता को क्या हो गया, वह साहिल को घूरकर देखने लगी। साहिल ने भी नोटिस किया कि अनंता भाभी उसे घूर रही हैं। थोड़ी देर दोनों यूँ ही चुप बैठे रहे। फिर साहिल ने चाय का कप अनंता को देते हुए कहा "तो चलो, अनु भाभी मैं निकलूँ।" अब चाय का कप लेते अनंता ने जान-बूझकर ही साहिल की ऊंगलियों को स्पर्श करते हुए कहने लगी क्यूँ आपकी सागर के साथ ही दोस्ती होती है। हाँ सागर को साहिल के साथ ही दोस्ती होती है, किनारे पर चड़ी रेत के साथ नहीं आपको मुझसे दोस्ती नहीं करनी। इतना कहकर अनंता आँख झपकाकर कप लेकर किचन की ओर चलने लगी, अनजाने में ही साहिल भी अनंता के पीछे-पीछे

चलता गया। किचन में जाकर अनंता का हाथ पकड़ा और कहा मैं कुछ समझा नहीं अनु भाभी। अनंता ने कहा "क्या मैं आपके लिए अनु भाभी से केवल अनु नहीं बन सकती?" साहिल ने अनंता का दूसरा हाथ पकड़ते हुए कहा क्यों नही लो आज से मैं भी आपका मित्र और अपना हाथ अनंता के हाथ पर फेरने लगा। साहिल का स्पर्श अनंता के शरीर में झनझनाहट फैला गया। सागर कल आने वाला है? पूछता हुआ साहिल अनंता की ओर ज्यादा नजदीक आया, अनंता को भी यह पसंद आया यह देखकर साहिल ने उसे अपनी बाहों में जकड़ा और पहली बार सागर से ज्यादा दूर और साहिल के ज्यादा नजदीक आकर अनंता अनंत बन गई। फिर तो यह लगभग रोज का काम बन गया। सागर बिजनेस के काम से घर से बाहर होता तब साहिल के साथ रातें रंगीन बन जाती और सागर जब घर पर हो तब दिन रंगीन बन जाते। साहिल और अनंता दोनों एक दूसरे के पूरक बन जाते। यूँ तो साहिल की पत्नी सुंदर थी पर अनंता की सुंदरता को पाकर वह अपनी पत्नी की सुंदरता को भूल गया था।

अनंता अब खुश थी। बाइस साल के वैवाहिक जीवन में सागर ने जो खुशी और नीरस वैवाहिक जीवन दिया था। उसके बदले में बेतहाशा प्यार से तरबतर और अनंता के शरीर को जिसकी भूख थी ऐसी बहुत सी रातें साहिल ने अनंता के जीवन को भेंट कर दी। अनंता को अब पूर्ण स्त्री होने का अहसास होता था। सागर जो छल अनंता के साथ करता था वो ही छल सागर के साथ करके अनंता खुश थी। सागर जो सुख अनंता को नहीं देता था वह सभी प्रकार के सुख की पूर्ति साहिल से हासिल कर अनंता खुश थी। अब अनंता भी घंटों घर के बाहर रहती थी। थियेटर में मूवी देखने जाती थी। किटी पार्टी में जाती थी। सागर के शब्दों को उसने सच कर दिखाया था।

आज सुबह जल्दी सागर बीस दिन का बिजनेस टूर करके आया था। अनंता दरवाजा खोलकर दोबारा सोफे पर लेट गई। सागर अनंता के साथ बात करने के मूड में था। सागर ने कहा क्या अनु तू सो रही है। अनंता ने कहा क्या है? कहो क्या कहते हो? सच कहूँ तो मैं अभी ही जागी हूँ। काम था कुछ? अनंता आज बहुत खुश थी। आज वह सागर की बातें सुनने के लिए आगे-पीछे नहीं घूम रही थी। हाँ उसकी नजर बार-बार घड़ी की तरफ और मोबाइल के ऊपर अचानक पहुँच ही जाती थी। अपने काम को एक के बाद एक पूरा करती जाती थी। सागर को चाय का कप देकर खुद भी चाय का कप और न्यूज पेपर लेकर सोफे पर बैठ गई। करीब आधे घंटे के बाद वह किचन में रसोई की तैयारी में लग गई।

अनंता ने पूरे बीस दिन दूर रहे सागर से एक भी सवाल नहीं पूछा। सागर को अनंता का बर्ताव थोड़ा बदला हुआ लगा। सागर ने अनंता को आवाज दी... अरे अनु क्या कर रही हो?... अरे बैठो ना..... अनंता ने चिढ़ के जवाब दिया मुझे बहुत काम है, फ्री नहीं हूँ। अनंता ने नेवीब्ल्यू कलर की पारदर्शक साड़ी पहनी थी। सागर अनंता को देखता ही रहा। उसने ध्यान से देखा कि यह साड़ी तो उसने अनंता को नहीं दिलाई थी। वह अनंता के और करीब गया। एक जानी पहचानी खूशबू उसके पास से आ रही थी। सागर ने कहा क्या तुमने परफ्यूम लगाया है? कभी स्प्रे या परफ्यूम का उपयोग नहीं करने वाली अनंता ने बेफिकरी से जवाब दिया हाँ गुलाब की फ्लेवर वाला है, कैसा लगा? और सागर को याद आया कि यह परफ्यूम तो सागर को बहुत पंसद है और वह रोज उसका उपयोग भी करता है। नेवीब्ल्यू कलर की पारदर्शक साड़ी में अनंता के अंग-उपांग अच्छे से उभर आने से वह बहुत ही सुंदर दिख रही थी। खुले बाल और हल्का सा मेकअप और जगमगाने वाला उसका व्यक्तित्व अनंता की सुंदरता को बढ़ा रहा था। अनु कहाँ जा रही हो? अनंता ने सागर की तरफ देखे बिना ही साड़ी के पल्लू की ठीक करते-करते कहा सागर खाना डाइनिंग टेबल पर रख दिया है खा लेना, मैंने किटी पार्टी ज्वाइन की है वहीं जा रही हूँ। मेरी फ्रेंडस् राह देखती होगीं। वहाँ से शाम को क्लब में और हाँ डिनर मैं होटल में ही ले लूँगी और रात के आखिरी शो में मूवी देखने जाऊँगी.... और हाँ.... अब हम लगभग कल सुबह ही मिल पाएँगे? सागर ने चिढ़कर कहा अरे अनंता मैं पूरा दिन अकेला क्या करूँगा? अनंता का मोबाइल बज रहा था और मोबाइल की स्क्रिन पर साहिल का नंबर जगमगा रहा था। अनंता

चाबी को घुमाती हुई बिंदास आवाज से सागर को बाय करके घर की दहलीज पार कर गई। सागर दूर तक अनंता की गाड़ी को जाते हुए देखता रहा।

हाँ अनंता लाइफ को सच में एंजॉय कर रही थी। शादी के बाइस साल बाद।

– डी-7, इनकम टैक्स कॉलोनी (न्यू सिविल हॉस्पिटल के सामने), मजूरा गेट, सूरत, गुजरात-395001

❑❑❑

किछु लघु कविता

नारायण झा

1. पिताक थापड़

पिताक थापड़

हमरा गाल पर
लागल बहुत जोरसँ
पिताक हिसाबे
ओहि थापड़ सँ
झमा जेबाक चाही हमरा
मुदा गाल बिनु छिपने
जतबए चोट
करबाक छल ग्रहण हमरा
ओतबए लागल चोट।

पिताक थापड़
हमरा गाल पर
लागल नहि
ओ उसाहि कए
देने रहथि छोड़ि
मुदा ओ थापड़ बिनु लगने
हमरा झमा देने रहए
एखनहुँ तक
बिनु लगले थापड़
झमेने अछि
गाले नहि
झमेने अछि सर्वांग शरीर।

2. सपनाक परिभाषा

केयो अपन तरहत्थी पर
अकास उतारि
पुरबै छथि सअख–सेहेनता
आ अपन जीवनक सपना
मुदा मुँह विधुऔने

हम देखैत रहैत छी सपना
जमीन पर चलबा लेल
ठमियबैत रहैत छी
पएरे भरि जगह

किनसाइत
हुनकर आ हमर
सपनाक परिभाषा
अलग–अलग छै?

भाषा ISSN 0523-1418

कुछ लघु कविताएँ

अनुवाद : नारायण झा

1. पिता का थप्पड़

पिता का थप्पड़
मेरे गाल पर
लगा था बहुत जोर से
उनके हिसाब से
लाल हो जाने चाहिए थे
मेरे गाल
परंतु चोट लगने के बावजूद
चोट का असर
हुआ उतना ही
जितना मैंने किया था ग्रहण

पिता का थप्पड़
मेरे गाल पर
लगा ही नहीं
उन्होंने छोड़ दिया
बस थप्पड़ दिखाकर ही
परंतु उस उसाहे (हवा में उठे) थप्पड़ ने
झमाया हुआ है अभी तक
मेरा सर्वांग

2. स्वप्न की परिभाषा

कोई अपनी हथेली पर
आकाश उतार कर
पूर्ण करता है शौक
और अपने जीवन का स्वप्न
लेकिन उदास होकर

मैं देखता रहता हूँ स्वप्न
जमीन पर चलने के लिए
ढूँढता रहता हूँ ठौर
पैर रखने भर की जगह

शायद
उनकी और मेरी
स्वप्न की परिभाषा
अलग-अलग हो?

3. मनुक्ख कतेको बेर मरैए

सभ बुझैए
मरैए लोक
छुटला उपरांत प्राण
मुदा कतेको बेर मरैए मनुक्ख
जखन नहि बचि पबैत छैक
लोकक साख
जखन लगैत छैक
चरित्र पर दाग
जखन लगैत छैक
कलंकक करिखा
जखन मेटा जाइछ
पुरूषक पुरूषत्व
स्त्रीक सतीत्व

एकटा मनुक्ख
कतेको बेर मरैए।

– ग्राम–पोस्ट, रहुआ–संग्राम, प्रखंड–मधेपुर, जिला–मधुबनी, बिहार–847408

❑❑❑

3. एक आदमी मरता है कई-कई बार

समझते हैं प्राय:
आदमी मरता है
प्राण निकल जाने के बाद
लेकिन कई-कई बार
मरता है आदमी

जब नहीं बच पाती है
आदमी की साख
जब लगता है
चरित्र पर दाग
जब लगता है
कलंक का टीका
जब खत्म हो जाता है पुरुषत्व
स्त्री का सतीत्व

एक आदमी
मरता है कई-कई बार

– ग्राम-पोस्ट, रहुआ-संग्राम, प्रखंड, मधेपुर, जिला-मधुबनी बिहार-847408

❑❑❑

गागर में सागर भरने की चुनौती स्वीकारती रचना
'तिल भर जगह नहीं'

डॉ. करुणा शर्मा

'तुमको समेट पाना एक बँधे-बँधाए खांचे में क्या संभव है मेरे लिए' लिखने वाली, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में स्थापित 'अमृतलाल नागर सृजन पीठ' पर अतिथि रचनाकार के रूप में आमंत्रित चित्रा मुद्गल के समक्ष जब कवि, कथाकार और प्रतिकुलपति आनंदवर्धन द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि पीठ की शर्त के अनुसार आपको किसी बड़े लेखक पर एक विनिबंध लिखना होगा, सौ-सवा सौ पृष्ठों का, तो इन्होंने कविता, कहानी, रिपोर्ताज, रूपक, साक्षात्कार, डायरी, अनुवाद विधा के साथ-साथ प्रमुख रूप से संपादन के क्षेत्र को गौरवान्वित और समृद्ध करने वाले, परंपरा और आधुनिकता का विवेकसम्मत संगम करने वाले अत्यंत अध्ययनशील अवध नारायण मुद्गल का नाम बड़े लेखन के रूप में प्रस्तावित किया। ये जानती थीं कि विनिबंध साहित्य की एक स्वतंत्र विधा है जिसके अंतर्गत पृष्ठों की मर्यादा में एक बड़े लेखक के संपूर्ण जीवन-व्यक्तित्व और कृतित्व को इस प्रकार प्रस्तुत करना होता है जिससे पाठक उसके जीवन के प्रत्येक पक्ष को पूर्णतः जान सके। यदि यह कहा जाए कि यह विधा लेखकीय वैशिष्ट्य और अनुशासन की भी माँग करती है, तो अनुचित न होगा। वास्तव में यह एक खुली चुनौती रही चित्रा मुद्गल के लिए क्योंकि वे एक सृजनात्मक लेखिका हैं। इस चुनौती को इन्होंने न केवल स्वीकारा, बल्कि 'संघर्ष को अपने जीवन का अभिन्न अंग' मानने वाली चित्रा ने 'तिल भर जगह नहीं' लिखकर प्रमाणित भी कर दिया कि इनके लिए किसी भी प्रकार की विधा को अपने संपूर्ण वैशिष्ट्य के साथ लिखना असंभव नहीं है। बड़े लेखक के रूप में अपने स्वर्गीय प्रेमी-पति पर लिखते समय इनके मन में न जाने कितनी भावनाएँ उपजी होंगी, कितने भाव इनके मानस-पटल पर सवार हुए होंगे, कितनो ने इन्हें कुरेदा होगा और न जाने कितनों ने इन्हें तड़पाया-रुलाया होगा, "स्वयं के विचलनों से स्वयं को उबारते, तलाशते, गढ़ते, उठ खड़े होते उस व्यक्ति को ढूँढ़ पाना-जिसका नाम अवध नारायण मुद्गल है, कम मुश्किल नहीं था।" वाली स्थिति आने पर भी चित्रा जी उन सभी भावों पर विजय प्राप्त कर उपस्थित हुईं हैं विनिबंध 'तिल भर जगह नहीं' लेकर।

चित्रा जी ने विनिबंध विधा के अनुशासन का निर्वाह करते हुए अवध जी के जीवन के विस्तृत क्षेत्र को कई खंडों में बाँटा है। यह उनके द्वारा प्रस्तुत अनुक्रम में देखा जा सकता है। 'लेखक अवधनारायण मुद्गल' में इन्होंने इनके जन्म, बचपन, किशोरावस्था के साथ पारिवारिक सदस्यों, उनके व्यवहार आदि का वर्णन किया है जैसे 28 फरवरी 1936 को गाँव एमनपुरा, पोस्ट बाह, जिला आगरा में गणेश प्रसाद मुद्गल और पार्वती देवो के यहाँ जन्मे अवध। एक बहन और तीन भाई। भाईयों में सबसे छोटे। मँझले भाई का 16 साल की उम्र में देहावसान। प्रारंभिक शिक्षा अपने गाँव में, आठवीं से दसवीं तक इंटर कालेज, होलीपुरा में। उनकी

तिल भर जगह नहीं/ लेखिका : चित्रा मुद्गल/ प्रकाशक : वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002/ प्रकाशन वर्ष : 2020/ पृष्ठ : 144/ मूल्य : ₹199

बाल्यावस्था की शरारतें, प्राइमरी स्कूल के रोचक, किंतु शिक्षाप्रद अनुभव। बाल्यावस्था में भावुकता और कल्पनाशीलता से भरपूर स्वभाव। एक तरफ अध्ययन के प्रति बढ़ती हुई रुचि तो दूसरी तरफ विकसित होती हुई किशोरावस्था में बढ़ती हुई मौज-मस्तियाँ। मौज-मस्ती के कारण कोई नुकसान होने पर बस एक वही बात, 'अब ऐसा कोई काम नहीं करेंगे।' बड़े भाई के क्रुद्ध स्वभाव की परिणति जब तब खामोशी से भुगतना। एक बार भाँग पीने के कटु अनुभव के बाद भी उसे न पीने के संकल्प का जब तब टूट जाना। अध्यवसायी स्वभाव का प्रमाण-सातवीं कक्षा में संस्कृत की प्रथमा, आठवीं में साहित्य सम्मेलन की विशारद, नवीं कक्षा में उत्तमा का पहला भाग, दसवीं तक आते-आते उत्तमा के दूसरे भाग को पास कर लेना। परिवार द्वारा उन्हें इंजीनियर बनाने का सपना देखते हुए उन पर खर्चा करना लेकिन नई-नई फिल्में देखने में रुचि होने के कारण उनके द्वारा पहला वर्ष भी पास न कर पाना। घर की आर्थिक हालत खस्ता होने के कारण परिवार का उन पर नौकरी करने का दबाव लेकिन प्राइमरी विद्यालय की नौकरी उन्हें पसंद नहीं क्योंकि नियति में तो कुछ और ही लिखा था। अतः घर छोड़ बाहर जाकर एक दोस्त के साथ रहने लगना, ट्यूशन करना। कुश्ती का शौक पुनर्जीवित होना और ट्यूशन की आमदनी उस पर खर्च करना। यह सब जान लेने पर परिवार द्वारा उन्हें जबरदस्ती गाँव में लाकर खेती करवाना। लेकिन उसमें उनका मन न लगना। 'अब छूटी पढ़ाई पूरी करके रहूँगा' के विचार से संकल्पबद्ध होकर गाँव से इटावा बिना बताए भाग जाना। वहाँ जाकर गुजर-बसर करने के लिए भागवत सप्ताह करना, चढ़ावे से प्राप्त वस्तुओं को करहल में रह रही बहन को देकर कानपुर जाना और वहाँ रहकर संपूर्ण मध्यमा करने की जिद और उस जिद को किसी भी प्रकार पूरा करना और फिर शास्त्री की परीक्षा पास करना। एक बार पिता द्वारा उन्हें बहला-फुसलाकर गाँव ले आना और जाने न देने के लिए प्रयत्न करना लेकिन जिद्दी स्वभाव के अवध का वहाँ से पुनः भाग जाना और इंटरमीडिएट की परीक्षा पास करना। फिर एक जिद कि बी.ए. लखनऊ से करना है। और फिर शुरू होती है उनके व्यक्तित्व के विकास की यात्रा। इन सभी बातों का वर्णन लेखिका बड़े ही मनोयोग से करती हैं, बाल्यावस्था और किशोरावस्था के खट्टे-मीठे अनुभवों को लेखिका मजे लेकर बताती हैं, उस समय अभिव्यक्ति में जीवंतता का एहसास होता है।

पहले से ही परिवार के सदस्य (बाबू जी) के रूप में परिचित अमृतलाल नागर जी और उनके छोटे पुत्र शरद का मित्र के रूप में परिचय होने के कारण लखनऊ में उनसे मुलाकात होने के बाद उनकी रहन-सहन की सारी व्यवस्था का सुंदर बंदोबस्त होना, ट्यूशन करना, बी.ए. और एम.ए. करना, बहुत सी कविताएँ लिखना और कवि सम्मेलनों में कविता पाठ करना। वहाँ से सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, ठाकुर प्रसाद सिंह रहते हुए मुलाकात, हिंदी समिति में ठाकुर प्रसाद सिंह द्वारा उन्हें संपादक के रूप में नियुक्त किया जाना, फिर शिव वर्मा और यशपाल जी से परिचय, शिव वर्मा द्वारा उन्हें अपने द्वारा निकाले जाने वाले अखबार में उप-संपादक नियुक्त करना, कुछ समय बाद यशपाल जी की आँखों में मोतियाबिंद होना और अवध जी को यशपाल जी के सहायक के रूप में शिव वर्मा द्वारा यशपाल जी के यहाँ रहने के लिए भेज दिया जाना, वहाँ यशपाल जी को किताबें पढ़कर सुनाना और उनका डिक्टेशन लेना, यशपाल जी द्वारा बोले जाने और अवध जी द्वारा लिखे जाने वाले एक उपन्यास 'बारह घंटे' का लगातार बारह घंटे तक बोलने और लिखने की जानकारी देने वाली चित्रा जी सहसा ही लिख बैठती हैं, 'यह अवध के लिए एक नया ही अनुभव था।'[1] वहीं पर रहते हुए बीर राजा, श्रीलाल शुक्ल, कुँवर नारायण से मुलाकात, साहित्यिक विचार-विमर्श में साहित्यिक मुद्दों पर गंभीरतापूर्वक चर्चा आदि गतिविधियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि लखनऊ में बिताया गया समय उनके साहित्यिक जीवन के विकास का स्वर्णिम काल था।

गागर में सागर समाते हुए अब लेखिका बात करती हैं अवध जी के लखनऊ से मुंबई की ओर प्रस्थान की। इसमें ये बताती हैं कि मुंबई पहुँचने से पहले ही एक रचनाकार के रूप में उनकी रचनाओं का विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशन सारिका के प्रधान संपादक चंद्रगुप्त विद्यालंकार के नेतृत्व में

उप-संपादक के रूप में उनकी नियुक्ति, छह महीने बीतते-बीतते चित्रा ठाकुर से मुलाकात और धीरे-धीरे उनके साथ बढ़ती जा रही घनिष्ठता और फिर उसका 17 फरवरी 1965 में विवाह रूप में परिणत हो जाना, विवाह के तुरंत बाद ही किसी खास कारण से दो-ढाई महीने मुंबई से दिल्ली जाकर अनेक परिचितों के यहाँ रहना, बाद में पिता द्वारा मिले आश्वासन के बाद पुनः मुबंई जाकर रहने का वर्णन भी इस रचना में मिलता है। मार्च 1966 में पुत्र राजीव का जन्म और 1969 में पुत्री अपर्णा का जन्म। 1972 से 1977 तक को-आपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी जिसे पत्रकार सोसाइटी भी कहा जाता था, में रहना और 30 जनवरी 1978 में सुप्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैया लाल नंदन के संपादकत्व में अवध जी का अपने परिवार से दूर दिल्ली आने का मजबूरीवश निर्णय। सारिका पत्रिका को सफलता की ऊँचाइयों पर पहुँचाने के लिए समय-समय पर नवीन और मौलिक विचारों का प्रयोग किया जाना जैसे खेलकथा विशेषांक, नोबेल पुरस्कार विजेता विशेषांक, कालजयी रचनाकारों पर विशेषांक निकालने का विचार आदि की चर्चा की गई है। सारिका पत्रिका के प्रबंधन में परिवर्तन के कारण अब संपादक के पद को कांट्रेक्ट पर रखने की बात के अंतर्गत अवध जी को तीन साल के कांट्रेक्ट का मिलना। इस प्रकार 1964 में उप-संपादक, 1979 में मुख्य उप-संपादक, 1981 में सहायक संपादक, 1982 में सारिका का स्वतंत्र प्रभार, 1985 में संपादक और अंत में कांट्रेक्ट के तीसरे साल का भी 1990 में समापन की बात लिखने के बाद लेखिका पाठकों को यह भी बताती हैं कि अवध जी ने चंद्रगुप्त विद्यालंकार, कमलेश्वर और कन्हैया लाल नंदन, तीन कुशल संपादकों के नेतृत्व में अपनी संपादन क्षमता को निखारा।

इसके बाद चित्रा जी अवध जी के लेखकीय जीवन पर प्रकाश डालती हैं। वे बताती हैं कि पाँचवीं कक्षा में ही उन्होंने पहली कविता लिखी थी और पहली कविता 1953 में आगरा से प्रकाशित होने वाली लघु पत्रिका में छपी थी, लेकिन अब वह कविता कहाँ है, इसका इन्हें पता नहीं है। अवध जी ने इन्हें बताया था कि उन्होंने 100 चतुष्पदियाँ (सॉनेट) भी लिखी थीं, अपने कवि कर्म के प्रति बरती गई लापरवाही से वे भी खो गईं। इसी खंड में वे उनकी निहारिका में पहली प्रकाशित कहानी, 'बेतुका आदमी' और धर्मयुग में प्रकाशित 'और कुत्ता मान गया' की बात करने के बाद स्पष्ट करती हैं कि उनके द्वारा लिखी सबसे पहली कहानी 'दस्तकें' थी जो 'बेतुका आदमी ' के बाद छपी थी। 1961 से 1974 तक छपी कहानियों-'बेतुका आदमी', 'और कुत्ता मान गया', 'कबंध', 'पीर', 'बाबर्ची', 'भिश्ती','खर','टूटी हुई बैसाखियाँ','रिटायर अफसर', 'शताब्दियों के बीच', 'संपाती', 'चक्रवात', 'गंधों के साए में', 'राजनीती की शवयात्रा', अंधे सूरज का अनुशासन आदि नामों का जिक्र करती हैं। यहाँ चित्रा जी के उस समीक्षक रूप के दर्शन होते हैं जो अवध जी की कहानियों को पर्त-दर-पर्त खोलने के लिए आतुर दिखाई देता है जैसे "कहानी का शीर्षक ही इस समूचे कथानक की व्यंजना को और अधिक मार्मिक बना देता है कि '.... और कुत्ता मान गया।' जीवन की सबसे प्रमुख विडंबना यही है कि हमारी पहचान का फैसला भी दूसरे लोग करें।"[2] 'रिटायर अफसर' में इन्हें अवध जी की कस्बाई सोच का परिचय मिलता है और वे इसे उषा प्रियंवदा की 'वापसी' से अलग मानती हैं। इस कहानी की समीक्षा करते हुए ये लिखती हैं, "स्थूल दृश्य इस रचना में इतने नहीं जितने विचार दृश्य। अपने ही विचारों में विवस्त्र होता यह पात्र जीवन का सच सामने रख देता है जिससे एक बड़ा यथार्थ खुलता है और वह यह -जो व्यक्ति जीवन में सहज इंसान बनकर नहीं रह सकता, वह सहजता से जी भी नहीं पाता।.... ऐसे में उसकी कुढ़न उसके संवाद, उसकी मानसिक स्थिति को बड़े मनोवैज्ञानिक तरीके से उजागर करती हैं।"[3] इनके अनुसार, "इस दौर के मध्यवर्गीय नायकों का यह प्रतिनिधि पात्र है।"[4] इस प्रकार ये अन्य कहानियों पर भी समीक्षात्मक टिप्पणी करती हुई दृष्टिगत होती हैं। लेखिका उनकी कहानियों का पुनर्पाठ करने के पश्चात् यह कहती हैं, "कहते हुए अपराध-बोध से मुक्त नहीं हो पा रही हूँ कि कतिपय कामकाजी दबावों से बचे रहते तो अवध हिंदी कहानी में एक क्लासिक पहचान अवश्य बन जाते।" अवध जी ने कुछ लघुकथाएँ भी लिखीं जैसे 'पीले पत्ते : मुरझाए गुलाबों की गंध', 'कुतुब की छत से', 'सिसीपस', 'प्रमथ्यु', 'सावित्री नंबर तीन' और 'जंगल'। वे लघुकथा के आलोचना पक्ष से भी जुड़े रहे। लेखिका बाद में इनकी भी समीक्षा

करती हैं। आलोचकों की नजर में वे क्या थे, इस पर ये हरे प्रकाश उपाध्याय और महेश दर्पण को उद्धृत करती हैं। जहाँ चित्रा जी को इस बात का दुख है कि यदि उन पर मानसिक दबाव कम होता तो वे और अधिक उत्कृष्ट लेखन कर सकते थे, वहीं उनके साहित्य को पढ़ने के बाद महेश दर्पण की भी यही राय है, "अनेक विचारपरक लेखों में जहाँ वह भविष्य की फिक्र करते नजर आते हैं, वहीं उनके संस्मरण व्यक्ति को भीतर से पहचानने की कोशिश हैं। इस सबके बावजूद, एक साहित्यिक पत्रिका में उम्र गुजार देने का एक मतलब यह भी है कि आप अपने रचनाकार को दबाकर दूसरों की रचनाएँ संपादित करने और पढ़ने में अधिकाधिक वक्त गुजार दें। अवधनारायण मुद्गल भी इसी तरह समर्पित रहे।"[5]

'अवधनारायण मुद्गलः व्यक्तित्व' में चित्रा जी अवध जी के पति, प्रेमी, पिता, मित्र, पारिवारिक, कार्यक्षेत्र के सहयोगी, सामाजिक, साहित्यकार-पत्रकार और संपादक के रूप में उनके व्यक्तित्व को वर्णित करती हैं। उनके पति, प्रेमी, पिता के स्वरूप का वर्णन बहुत अधिक हृदयस्पर्शी और रोचक बन पड़ा है। उनकी चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन चित्रा जी के लिए बहुत चुनौतीपूर्ण है, "निस्संग होने की मेरी कोशिश कितनी सफल होती है, स्वयं को आजमाना चाहती हूँ! जानती हूँ, कितना कठिन है मेरे लिए अवध पर लिखना। लेकिन चुनौती स्वीकार कर चुकी हूँ। यह चुनौती लेखक और लेखक के बीच की चुनौती है....।" एक पति के रूप में उनका बेजोड़ इंसान होना, दिल्ली आ जाने पर भी मुंबई में बच्चों के साथ रह रहीं चित्रा जी से उनके लेखन के संबंध में जानकारी लेना, प्रतिदिन इन्हें पत्र लिखना, चित्रा जी द्वारा पत्र का उत्तर भेजने में देरी होने पर नाराजगी जाहिर करना, परिवार से दूर रहने पर अपने दुख के साथ इनके दुख को भी महसूस कर लेना, फिर अवध जी द्वारा लिखना, 'फॉर माई सेक, स्वस्थ रहो।'[6] "... जिंदगी में मेरा सबसे अनमोल हासिल तुम हो, सिर्फ तुम"[7] उनके चित्रा जी के प्रति अटूट प्रेम को ही द्योतित करता है। चित्रा जी के लेखन को वे ऊँचाइयों पर देखना चाहते थे। जब उनके गुरु प्रोफेसर अनंतराम त्रिपाठी इनकी कुछ ज्यादा बड़ाई करते तो वे खरे-खरे शब्दों में कहते, "अंधों में काना राजा होता है लेकिन खतरनाक बात यह है, तुम अपनी छोटी-मोटी जीतों को बड़ी उपलब्धि के रूप में देखती हो, जो हैं नहीं, व्यक्ति का विकास यहीं अवरुद्ध हो जाता है।"[8] इतना स्पष्ट कथन एक शुभचिंतक ही कर सकता है। चित्रा जी लिखती हैं कि सारे जीवन भर उन दोनों के बीच प्रेमी-प्रेमिका वाला भाव बना रहा, "उतार-चढ़ावों और चुनौतियों के बीच भी हम प्रेम की अविच्छिन्न, अविरल धारा से ऊष्मित ऊर्जावान बने रहे। प्रेम ने ही हमें बाँधे ओर बचाए रखा।.... यह मानकर चलते रहे, प्रेम जब तक परिपक्व समझ, विवेक और भरोसे की जमीन पर भावनाओं के गठबंधन के फूटे कल्लों को मजबूत तना नहीं सौंपता, प्रेम-प्रेम नहीं हो पाता!"[9] एक घटना का जिक्र करते हुए ये अपनी खास विशिष्टता 'संघर्ष ही मेरा आत्मबल है।'[10] को उद्धृत करना नहीं भूलतीं। न केवल अवध जी इनसे प्रेम करते थे, ये भी अवध को प्राणों से अधिक प्रेम करती थीं। तभी तो ये कह पाती हैं, "मुझे उनका प्रेम जिस रूप में भी मिला, आज वह मेरे लिए मेरी साँसों का संबल बना हुआ है।"[11]

इस पुस्तक में अवध जी के पिता के स्वरूप का वर्णन वास्तव में बहुत मार्मिक और हृदयविदारक बन पड़ा है। वे अपने दोनों बच्चों से बहुत अधिक प्रेम करते थे। पुत्र राजीव के बारे में बताते हुए जब ये उनके दोस्त श्रीराम की पानी में डूब जाने से हुई मौत और उस पर राजीव की प्रतिक्रिया को वर्णित करती हैं, "सुबक -सुबककर वह लगातार यही कहता रहा-पापा, मैं स्वीमिंग का चैंपियन हूँ, अपने दोस्त राम के साथ होता तो उसे बचा लेता। आपने मुझे क्यों नहीं जाने दिया। श्रीराम को तैरना नहीं आता था।... राजीव को रोता देख नन्ही गौरेया-सी अपर्णा का रोना भी बंद नहीं हुआ। अपराध-बोध से भरे अवध दोनों बच्चों को संभालने की कोशिश में कितनी बार भीगे, गिनना संभव था क्या!"[12] ऐसा वर्णन किसे द्रवित नहीं कर देगा! एक कार दुर्घटना में अपर्णा और उसके पति शशांक की हुई मौत ने चित्रा जी को तो तोड़ा ही, किंतु उन्हें ताउम्र के लिए तोड़कर रख दिया। "प्रतिपल उदासी की सिसकती-डोलती परछाइयों में डूबे घर को आगे चलकर राजीव की पत्नी शैली अर्थात् मेरी बहू ने आकर संभाला।" इस मार्मिक अभिव्यक्ति के बाद लेखिका उनके पितृरूप को कवित्व रूप में

व्यक्त होता देखती हैं और अपर्णा बेटी के गम की गहराई उनके द्वारा रचित कुछ कविताओं में देखी जा सकती है। यहीं पर ये एक कविता 'एक खत गुमशुदा बेटी के नाम' को उल्लिखित करती हैं।

एक दोस्त के रूप में अवध जी कैसे थे, इस संदर्भ में ममता कालिया का लेख 'अवधनारायण मुद्गल जैसा दोस्त कहाँ!' का उल्लेख करती हैं और वे अपना सामाजिक धर्म कैसे निभाते थे, के संदर्भ में सोमद्र बत्रा, बच्ची के रूप में पाली गई आशा के विवाह की चिंता, पारिवारिक जनों के दायित्व का निर्वहन, एक सामाजिक संस्था 'सिटी फोरम' की स्थापना, अवध जी के प्रिय पर्व होली पर उनके द्वारा हुड़दंग मचाना जैसी घटनाओं को वर्णित करती हैं। 'संपादक अवधनारायण मुद्गल' वाले खंड में उनके संपूर्ण संपादकीय जीवनक्रम का उल्लेख मिलता है। इनके संपादकीय जीवन की एक विशेषता चित्रा जी को यह लगती रही कि अवध ने नए रचनाकारों को बहुत आगे बढ़ाया। इसके साथ ही उन्होंने उन रचनाकारों पर भी ध्यान दिया, जिन्हें भुला दिया गया था, ऐसे रचनाकारों के नामों का उल्लेख करती हैं। ममता जी के उद्धरण से उनके निडर और प्रयोगधर्मी संपादक रूप में सहमति भी व्यक्त करती हैं।

अवध जी के कवि रूप में चित्रा जी कविता के संबंध में उनके विचारों का उल्लेख करना नहीं भूलतीं, "कविता को वह ऐसी सशक्त विधा मानते थें जिसमें थोड़े में बहुत अधिक कलात्मक दृष्टि से कह पाना संभव है।"[13] अवध जी ने मिथकों का चयन ही प्रतीक के रूप में क्यों किया, इसका उत्तर अवध जी के शब्दों में, "इसका कारण मात्र इतना ही है कि मैं अपनी बात को अधिक सार्थक और सकारात्मक ढंग से अभिव्यक्त कर सकूँ। यह सीधे-सादे ढंग से संभव नहीं था।" यहीं पर ये मिथकीय चरित्रों की दृष्टि से लिखी गई कविताओं के नाम तथा 'नाग यज्ञ और मैं' कविता प्रस्तुत करती हैं। समकालीन परिवेश, मनुष्य और उसकी विवशताओं को लेकर अवध जी द्वारा लिखी जाने वाली ग़ज़लों की विशिष्टता को वे कुछ यों बयाँ करती हैं, "अपनी आमफहम जबान में ग़ज़ल कहते हुए हिंदी की उस परंपरा का निर्वाह करते हैं जिसे गंगा-जमनी तहजीब कहा जाता है।"[14]

चित्रा जी अवध जी के संपादकीय व्यक्तित्व से अलग हटकर एक अलग प्रकार के व्यक्तित्व का दर्शन भी करती हैं। अवध जी ने कविता, कहानी, लघु कथा आदि के साथ सफरनामा भी लिखा था। वे नवलेखन पर भी पैनी दृष्टि रखते थे। उनकी इस संबंध में दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट थी, "अपने वक्त और अपनी जमीन से कटकर कोई विचारधारा, कोई लेखन और कोई व्यक्ति कहीं टिक नहीं सकता।.... हर नवलेखन अपने-अपने वक्त का पक्षधर और समसामयिक सोच का संवाहक होता है। यह संवाहक किसी खास विचारधारा का भी हो सकता है और पूरे कालखंड के सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों का भी"। उनकी आलोचना का स्वर स्वत:स्फूर्त भाषा में कभी संस्मरण के रूप में तो कभी भेंटवार्ताकार के रूप दिख जाता था जैसे 'लखनऊ में पहला कदम', 'यशपाल की लेखन-प्रक्रिया: एक साक्ष्य' आदि। जैसे कि पहले भी बताया जा चुका है कि उन्होंने लघु कथाएँ भी लिखी थीं। लेकिन जब हर कोई लघु कथाओं के मानदंड अथवा उनके सौंदर्यशास्त्र पर बात करने से बचता था, उस समय आज से चार दशक पूर्व उन्होंने 'लघु कथा: लाशों के दलालों' और 'फंगस' प्रवृत्तियों के खिलाफ एक 'जुझारु रुख' लेख में लघु कथा के संबंध में उनका आलोचकीय रूप देखा जा सकता है। वे समय-समय पर आत्म मूल्यांकन भी करते थे और बदलते हुए समय, गाँव और रिश्तों को गंभीरतापूर्वक महसूस करते हुए उस पर कमेंट भी किया करते थे। साहित्य जगत में किस तरह से परिवर्तन आ रहा है, दिखावा कितना बढ़ रहा है आदि से हताश हुए अवध जी यह नहीं समझ पाते थे कि ऐसे समय में उन्हें क्या करना चाहिए। तब उन्हें एक गीत याद आता था, 'जाएँ तो जाएँ कहाँ?'

वे सदैव कुछ न कुछ नया करना चाहते थे। एक बार उन्होंने लेख लिखा, 'प्रेमचंद के बारे में बच्चों से बातें।' इसमें वे प्रेमचंद की सादगी, बेबाकी और भोलेपन को जिस रोचक ढंग से बच्चों को बताते हैं, इससे न केवल एक बड़े लेखक का जीवन खुलता है, बल्कि वे सूत्र भी उजागर होते हैं जो रचना में जगह पाते हैं। इस खंड में उनके अनुवादक और रूपांतरकार का भी परिचय मिलता है। वे एक साक्षात्कारकर्ता के रूप में भी

काफी सफल हुए। उन्होंने अनेक प्रसिद्ध देशी-विदेशी साहित्यकारों के साक्षात्कार किए। इनमें जैनेंद्र कुमार, अभिमन्यु अनत, भीष्म साहनी, गोविंद मिश्र, मुद्राराक्षस आदि के साक्षात्कार सम्मिलित हैं। वे साक्षात्कार लेने वालों के समक्ष प्रश्न इस प्रकार रखते थे कि वे अपना जीवन संघर्ष स्वयं ही खोलकर रख देते थे। साक्षात्कर्ता के रूप में अवध जी एक जिज्ञासु संवादकर्ता के रूप में दिखाई देते थे। चूँकि वे अमृतलाल नागर जी के बहुत नजदीक रहे, अतः शोधार्थी और रसिकजन उनसे नागर जी के बारे में बहुत सारी बातें पूछा करते थे।

चित्रा जी का यह भी मानना है कि उनकी रचनाओं में पाए जाने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, मिथकीय व अनेक महत्वपूर्ण धार्मिक संदर्भ ही उनकी रचनाओं को महत्वपूर्ण बनाते हैं। वे वैश्विक साहित्य का भी अध्ययन किया करते थे। 'अपराध: विश्वास और आस्था के टूटते सूत्र', अंधी विष कन्या है सांप्रदायिकता' आदि लेख उनके गंभीर चिंतन-मनन के परिचायक हैं। उनकी एक खास बात को चित्रा जी कुछ इस तरह बताती हैं, "वह आत्मालोचना भी बड़े सहज भाव से करते और अपराध-बोध या आत्मस्वीकार भी। सीधे दिखते, सरल लगते, किंतु आत्माभिमान उनमें कूट-कूट कर भरा था। जहाँ उन्हें लगता कि उनके सम्मान की रक्षा तरीके से न हो सकेगी, वहाँ वह बने रहना उचित न समझते। उनकी खामोशी ऐसी होती कि बहुत कुछ कह जाती।"

चित्रा जी स्वतंत्र विचारों वाली महिला हैं। इनके स्वतंत्र विचारों को इसी विनिबंध में 'भूमिका' में देखा जा सकता है। अवध जी द्वारा रचित कविता 'नागयज्ञ और मैं' को पढ़ने के बाद तत्कालीन सुप्रसिद्ध साहित्यकार धर्मवीर भारती ने टिप्पणी की थी, "वर्तमान भारतीय राजनीति और जनसामान्य में व्यवस्था के प्रति व्याप्त हताशा, क्षोभ और मोहभंग की सूक्ष्म अर्थान्विति को गहरे उद्घाटित करती विरल मिथकीय प्रयोग का उदाहरण है 'नागयज्ञ और मैं'। अवध में जिसकी गहरी समझ और मर्मज्ञता है।" लेकिन इस संदर्भ में चित्रा जी का अपना मंतव्य कुछ इस प्रकार है, "... कहीं यह कविता उनकी निजी आत्मपीड़ा और विदीर्ण कर देने वाले जीवन संघर्ष की पराकाष्ठा से उपजी वह बेचैनी और तड़प की परिणति तो नहीं है जो चाहती थी जीवन में मुट्ठी भर सुकून पाने के लिए तिल भर जगह, जहाँ वह अपना हवनकुंड स्थापित कर सके!" इसी कविता के एक अंश का चयन इस विनिबंध के शीर्षक के रूप में किया है।

इस प्रकार इस विनिबंध में चित्रा जी ने अवध जी के जीवन के प्रत्येक पक्ष को बड़ी ही खूबसूरती से प्रस्तुत किया है। इनका पूरा प्रयास रहा है कि पाठक अवध जी को संपूर्णतया जानें। जहाँ अवध जी की कमजोरी दिखाई देती है, उस बात को भी बड़े ही स्वीकार्यभाव के साथ प्रस्तुत करती हैं और जहाँ उनको अच्छी बातें दिखती हैं, उनका भी यथायोग्य वर्णन करती हैं, अतिशयोक्ति कहीं नहीं। यद्यपि अवध जी पति एवं प्रेमी रहे हैं इनके, किंतु अभिव्यक्ति तटस्थ एवं भावपूर्ण है, आसक्ति कहीं नहीं दिखाई देती। जब ये उनके पति रूप को वर्णित करती हैं, तब पत्नी रूप में विद्यमान स्वंय की अच्छाई और बुराइयों को भी तटस्थ रूप में लिखती हैं। यही विशिष्टता इनके लेखन को महत्वपूर्ण एवं सफल बनाती है। इस विनिबंध में चित्रा जी का समीक्षक रूप भी मजबूती से उभरा है। चाहे बात कविता की हो, कहानी की हो, लेखों की हो अथवा लघु कथाओं की हो, अपने मत को जरूर व्यक्त करती हैं किंतु यह बात इनके मानसपटल पर सदैव बनी रहती है कि चाहे बात कोई भी हो, वर्णित ऐसे की जाए कि गागर में सागर समा जाए। विधा के अनुशासन का उल्लंघन न हो। पाठक को अवध जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ-साथ उनके विचारों से भी परिचित करवाया जाए। इसमें ये पूर्णतया सफल रही हैं। यद्यपि कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी रही है, जिसका ज्ञान इन्हें भी हो जाता है लेकिन क्रमबद्धता को बनाए रखने के लिए कहीं-कहीं ऐसा करना आवश्यक हो जाता है, अतः यह बात उपेक्षणीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तिल भर जगह नहीं, चित्रा मुद्गल, पृ 32
2. तिल भर जगह नहीं, चित्रा मुद्गल, पृ 50
3. वही, पृ 50
4. वही, पृ 56

5. वही, पृ 63
6. तिल भर जगह नहीं, चित्रा मुद्गल, पृ 67
7. वही, पृ 68
8. वही, पृ 71
9. वही, पृ 73
10. वही, पृ 73
11. वही, पृ 77
12. तिल भर जगह नहीं, चित्रा मुद्गल, पृ 79
13. वही, पृ 103
14. वही, पृ 109

– 132, आम्रपाली अपार्टमेंट्स, प्लॉट नंबर 56, आई पी एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

❑❑❑

वेद मंजूषा अर्थात् 'वेद विश्वकोश'
एक अनूठी, अनुपम साधना

प्रो. पूरनचंद टंडन

भारतीय चिंतनधारा एवं ग्रंथ-शृंखला के विलक्षण प्रतिमानों में वेदों का स्मरण अत्यंत सम्मान के साथ किया जाता है। वेदों का सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, नैतिक और इसी प्रकार अन्य अनेक क्षेत्रों-आयामों में अविस्मरणीय योगदान रहा है। आज भी विश्वभर में आधुनिक तथा अद्यतन ज्ञान-अर्जन की प्रक्रिया में वैदिक ज्ञान, मार्ग-दर्शक एवं पथ-प्रदर्शक बना हुआ है। जीवन और सृष्टि को, जीवात्मा और परमात्मा को समझने तथा समझाने में जो भूमिका वेदों ने निभाई है वह अनुपम है, अप्रतिम है। भारतीय रचनाधर्मिता ने वेदों के प्रदेय पर नियमित रूप से लेखनी चलाई है। वैदिक युग से आज तक देश-विदेश में वेदों की व्याख्या, वेदों की वर्ण्य-वस्तु का विवेचन-विश्लेषण, वेदों का समाज शास्त्रीय प्रदेय, जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा में वेदों की भूमिका, अध्यात्म, दर्शन, भक्ति, रहस्य -उद्घाटन, प्रकृति, पर्यावरण, शिक्षा, जीने की कला जैसे कितने ही विषयों पर देश-विदेश के शोधार्थियों, समालोचकों, चिंतकों और विचारकों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। वैदिक ऋचाओं का संपादन, व्याख्या, टीका आदि लेखन का कार्य भी किया है। स्वतंत्र पुस्तक लेखन, शोध प्रबंध-लेखन, गोष्ठियाँ-संगोष्ठियाँ भी प्रचुर मात्रा में हुई हैं तथा आज भी हो रही हैं। किंतु यह जो अनुपम कार्य नीता प्रकाशन ने विगत 15 वर्षों की अथक साधना से पूर्ण किया है, यह नितांत नया, विलक्षण तथा अतुल्य कार्य है। वेदों का वेदत्व, सृष्टि-विज्ञान, जीव-जगत के सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन-दर्शन में निहित है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद - ये चारों वेद, ज्ञान के सागर हैं। भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय मूल्य, धर्म और कर्म का मनोविज्ञान, अंतरिक्ष की संरचना और अवधारणा, नर और नारी का संबंध तथा सृष्टि निर्माण में दोनों की भूमिका, साम्य और वैषम्य के प्ररिप्रेक्ष्य में संतुलित दृष्टि की महत्ता, सृष्टि के रहन-सहन, भारतीयता के लक्षण, रीति-रिवाज, परंपराएँ, तंत्र-मंत्र आदि की व्याख्या, वनस्पति की उपादेयता और उसके संरक्षण-पोषण का ज्ञान, पर्यावरण और जीवन का संबंध, काल की महत्ता और उसका बोध, देह की संकल्पना, समाजवाद, जनजीवन का रूप-स्वरूप, शास्त्रीय परंपरा की समझ और मृत्यु आदि के बोध जैसे न जाने कितने पक्ष, कितने आयाम हैं, जिन्हें इन चारों वेदों ने व्याख्यायित किया है। हमारे ऋषियों का ज्ञान और अनुभव पूर्णतः व्यावहारिक था। अतः वे राष्ट्रीय और भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रति, हमारे मूल्यों तथा विज्ञान और शिक्षा की धरोहर के प्रति जागरूक थे। जीवन की उपयोगिता, महत्ता और सार्थकता को इन ऋषियों ने बार-बार अलग-अलग पद्धति और उदाहरणों से उजागर किया, हमें सचेत और सावधान किया है। हमारा वैदिक वाङ्मय इस दृष्टि से विश्व का मार्गदर्शक है, पथ-प्रदर्शक है। इसे विश्व के ज्ञान का विश्वकोश यदि कहा जाए तो

वेद मंजूषा (वेद विश्वकोश, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ वेदाज)/ संपादक : वेदप्रकाश शास्त्री/ प्रकाशकः नीता प्रकाशन ए-4, रिंग रोड, साउथ एक्सटेंशन पार्ट-1, नई दिल्ली-110049/ प्रकाशन वर्ष : 2020/ खंड : 17, पृष्ठ : 10,000/ मूल्य : ₹55000/-

अतिशयोक्ति न होगी। प्रस्तुत कार्ययोजना में सर्वप्रथम नीता प्रकाशन ने चारों वेदों की ऋचाओं को वैज्ञानिक एवं शोधपरक पद्धति से वगीकृत किया। फिर उन्हें वर्णक्रमानुसार व्यवस्थित किया। इसके पश्चात् इसके नवनिर्मित रूप को सहज, सरल और प्रासंगिक व्याख्या के साथ प्रस्तुत करने की नीति बनाई। ऋचाओं को सर्वप्रथम संख्याबद्ध किया। तदुपरांत मूल संस्कृत ऋचाओं को प्रस्तुत किया। इसी क्रम में उस ऋचा का संदर्भ तथा प्रसंग भी उल्लिखित किया। किस छंद में वह ऋचा प्रस्तुत है उसका भी उल्लेख किया। मूला ऋचा के पश्चात् 'अध्यात्म-विज्ञान', 'राजनीति-विज्ञान' या 'नैतिक-विज्ञान' आदि में जिस किसी से वह ऋचा संबद्ध है, उसका उल्लेख किया। किस वेद से यह ऋचा उद्धृत है, उसका मूल संदर्भ (संख्या सहित) देकर उसके कथ्य की आत्मा को भी संक्षेप में प्रस्तुत किया। जैसे सम्माननीय सैनिक, उपदेश द्वारा उत्प्रेरणा, वृष्टि द्वारा परमात्मा का बोध, आनंदरस के उपासक और परमात्मा से ऐश्वर्य और यश की कामना आदि। समुचित उच्चारण हेतु मानक स्वरांकन विधि का प्रयोग करते हुए मूल ऋचा को भी लिप्यंतरित किया गया है। देश-विदेश के पाठकों और जिज्ञासुओं को इन ऋचाओं के उच्चारण में कोई असुविधा या कठिनाई न हो, इसलिए इस दृष्टि से भी इसे सुगम बनाया गया। इसके बाद विषय, विषय का बोध कराने वाला अंश और उसके अर्थ तथा सभी का अंग्रेजी भाषा में भावानुवाद भी किया गया। संस्कृत, हिंदी एवं इतर भाषा-भाषी भारतीयों तथा विदेशियों के लिए यह विश्वकोश निश्चित ही वरदेय सिद्ध होगा। इस तरह प्रत्येक ऋचा का हिंदी भावार्थ और उसका अंग्रेजी में अनुवाद देते हुए उस ऋचा से प्राप्त होने वाली शिक्षा, प्रेरणा और उसकी रचना से मिलने वाले संदेश क्या हैं, इसका भी संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। इन सबके साथ-साथ इस संदेश का अंग्रेजी में भी अनुवाद किया गया है। वास्तव में यह किसी सामान्य विद्वान की मनीषाजन्य परिकल्पना नहीं है। चारों वेदों की समस्त ऋचाओं को विषय-वर्गीकरण के साथ, संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी और डायक्रिटिकल शैली के साथ, वर्णक्रमानुसार की गई इस प्रस्तुति को विद्वत समाज में अद्भुत और विलक्षण ही कहा जा सकता है।

भारतभूमि और भारतीय संस्कृति ने विश्व को चार अमूल्य वेद देकर उपकृत एवं कृतार्थ किया है। हमारे वंदनीय ऋषियों ने वैदिक वाङ्मय से ज्ञान-विज्ञान, कृषि-विज्ञान, जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, शिक्षा-विज्ञान, पर्यावरण-विज्ञान, चिकित्सा और स्वास्थ्य-विज्ञान, मनोविज्ञान, भौतिक, रसायन, सृष्टि, राजनीति, भू, समाज, अध्यात्म, जल, नदी और झरनों का विज्ञान, गृहस्थ, कला, अर्थ, काल, नीति, दर्शन, मूल्य-विज्ञान तथा संपूर्ण जीवन-जगत आदि का जैसा अद्भुत अकल्पनीय विवेचन इन चारों वेदों में किया है वह वस्तुतः 'न भूतो, न भविष्यति' प्रतीत होता है। इन वैदिक ऋचाओं में जीवन क्या है और उसे जीने की कला क्या है, इसकी शिक्षा और प्रेरणा जैसे दी गई है, वह अन्यत्र संपूर्ण विश्व साहित्य में दुर्लभ है। आज पूरा विश्व हमारे वैदिक वाङ्मय के प्रदेय के समक्ष नतमस्तक भी है, हतप्रभ भी है और अनुसरण-अनुकरण की मुद्रा में प्रस्तुत भी है।

नीता प्रकाशन, नई दिल्ली ने इस वैदिक वाङ्मय रूपी ज्ञानकोश को सर्वजन सुलभ बनाने के लिए तथा वेदों की समस्त ऋचाओं को एक अभूतपूर्व पद्धति एवं विलक्षण प्रक्रिया से मौलिक रूप में, प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है। संस्कृति एवं वैदिक वाङ्मय के प्रकांड विद्वान परम श्रद्धेय श्री वेदप्रकाश शास्त्री जी ने अपने जीवन के अंतिम काल के लगभग पंद्रह वर्ष इस महती परियोजना को अर्पित कर इसे पूर्ण किया। एक सिद्ध शोधकर्ता की तरह वे एक दिन में पंद्रह-पंद्रह घंटे लगातार बैठकर इस अद्भुत कार्य को करते रहे। वैदिक वाङ्मय को 'ज्ञान के विश्वकोश' रूप में प्रस्तुत करने की यह परिकल्पना अप्रतिम है, अतुल्य और अकल्पनीय है।

यही नहीं, 20348 ऋचाओं के साथ इस संपूर्ण वैदिक विश्वकोश को 'महावेद' के रूप में कुल 17 खंडों तथा दस हजार पृष्ठों में प्रस्तुत करने के अतिरिक्त एक और दुर्लभ कार्य भी आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री जी ने किया। वह है इस पूरे विश्वकोश को समझने, हर ऋचा तक पहुँचने, हर विषय को सहज ही खोज लेने का दिशा-दर्शक मानचित्र। 'वर्गीकृत ऋचासूचक' शोध-पद्धति पर आधारित एवं स्वतंत्र रूप से तैयार

किया गया यह 'दिशा-दर्शक खंड' शोध पद्धति के अनुसार तैयार किया गया है। यह भी शास्त्री जी की विलक्षण मेधा की ही देन है। किसी भी अध्येता, शोधार्थी, शिक्षक, वेदप्रेमी को कुछ भी खोजना हो तो वह सब एक नज़र में उसके समक्ष उपस्थित हो जाएगा। किस खंड में किस पृष्ठ पर, किस ऋचा में आप अपने वांछित विषय को पढ़ और देख सकते हैं, इसकी संपूर्ण जानकारी आपको इस कोश-ग्रंथ के प्रत्येक खंड में मिलेगी।

कई शताब्दियों से वैदिक वाङ्मय पर निरंतर शोध कार्य हो रहा है। एक से बढ़कर एक मनीषियों ने, वेदों के प्रकांड ज्ञाताओं और विद्वज्जनों ने अपना जीवन अर्पित-समर्पित किया है। किंतु यह कोई गर्वोक्ति नहीं अपितु विनम्र स्वीकारोक्ति है कि वेद की ऋचाओं का ऐसा अद्भुत विश्वकोश पहले कभी भी तैयार नहीं हुआ। वेद-ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने की यह व्याख्या एवं प्रस्तुत करने की यह प्रविधि प्रकाशक, संपादक, सह-संपादक आदि का अनुपम तथा विनम्र प्रयास है।

नीता प्रकाशन के संस्थापक लाला श्री राधेश्याम गुप्त जी का यह स्वर्णिम स्वप्न था। ऐसी वृहत् अंतरराष्ट्रीय महत्व की कोई भी योजना पूर्ण समर्पण से, मन-वचन और कर्म से तथा तन-मन और धन से समर्पित होने पर ही परिपूर्ण हो सकती है। दुखद यह है कि इसके प्रकाशन काल तक आते-आते संपादक आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री जी भी दिवंगत हो गए और स्वप्नद्रष्टा, परियोजना के सूत्रधार स्व. लाला राधेश्याम गुप्ता जी भी बैकुंठगामी हो गए। उनकी योजना एवं उनके स्वप्न को अब साकार किया गया है। बहुत बड़ी चुनौती थी, किंतु कालजयी और शाश्वत योजना की पूर्ति पर जो संतोष होता है, जो गौरवानुभूति होती है, वही अनुभूति इस बृहत् वैदिक विश्वकोश (एंसाइक्लोपीडिया ऑफ वेदाज) के प्रकाशन से भारतीय मनीषा को अवश्य होगी।

संपादक श्री वेदप्रकाश शास्त्री जी ने संपादकीय में लिखा है कि मुझे नहीं पता कि कौन सी दिव्य शक्ति मुझे प्रेरित करती रही और मुझसे यह असंभव कार्य भी संभव करा लिया। मैं कृतज्ञ हूँ 'नीता प्रकाशन' का जिसने मुझसे यह अलौकिक कार्य संपन्न करवाया। इस पूरी ग्रंथमाला का प्रकाशन अत्यंत मोहक है। कागज की क्वालिटी हो, मुद्रण की कला हो, फॉन्ट के भिन्न-भिन्न आकार हों, भिन्न भाषाओं के लिए उनका निर्धारण हो, जिल्दबंदी हो, मुखपृष्ठ (टाइटल) का डिज़ाइन हो और सत्रह खंडों को रखने का डिब्बा हो, सब अनूठा, निराला है। प्रबंध संपादक स्वर्गीय श्री राधेश्याम गुप्ता जी का सूत्र वाक्य ही था - "खाओं तो मोती, नहीं तो एकादशी"।

आशा है कि संस्कृत जगत में हिंदी और अंग्रेजी जगत में साहित्य, धर्म और अध्यात्म-जगत में इस 'वेद - एन्साइक्लोपीडिया' का अभिनंदन अभिवादन होगा और यह अपनी रचनात्मक भूमिका निभा सकेगा। आने वाले युग में यह 'वैदिक पथ-प्रदर्शिका' का सम्मान प्राप्त करेगा।

– 'संकल्प', डी-67, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

❑❑❑

हा! वसंत! : भारतीय जीवन के तीखे-मधुर स्वर

अमृत कुमार

डॉ. पंकज साहा का नवीनतम और प्रथम व्यंग्य-संग्रह 'हा! वसंत!' (2019 ई.) आधुनिक भारतीय जीवन की विसंगतियों की सहज और सशक्त अभिव्यक्ति है। पंकज साहा ने व्यंग्य-संग्रह के स्वर को न ही बहुत गम्भीर होने दिया है और न ही उसे अधिक चटपटे ढंग से अभिव्यक्त किया है। वह इस संग्रह की भूमिका में लिखते हैं, "मेरा यह व्यंग्य-संग्रह न गंभीर है न चटपटा। मैंने बीच का रास्ता लिया है, जिस पर चलते हुए मैंने वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्य विसंगतियों, छद्मों पर कटाक्ष किया है।" (हा! वसंत!, पृ. i) इसी कारण इस व्यंग्य-संग्रह की दृष्टि संतुलित रही है।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य लेखन की परंपरा मध्यकाल से देखने को मिलती है। कबीर, भारतेंदु, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, नरेंद्र कोहली, आदि ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने न केवल हिंदी साहित्य में व्यंग्य-विधा को एक नए धरातल पर लेकर गए अपितु विश्व साहित्य के समक्ष भी व्यंग्य के एक मानक की संरचना की है। वस्तुतः व्यंग्य एक ऐसी विधा है जो अपने तत्कालीन समय की विसंगतियों से उत्पन्न होता है और उसके मूल में एक असंतोष का भाव विद्यमान रहता है। व्यंग्यकार जीवन और अपने समय की विसंगतियों और विद्रूपताओं को समाज के सामने ऐसे उपस्थित करता है कि पाठक सिर्फ उस विषय से हास्य का ही अनुभव न करे अपितु वह सोचने के लिए भी बाध्य हो।

'हा! वसंत!' व्यंग्य-संग्रह में कुल 56 व्यंग्य लेख हैं और इनका आधार मुख्य रूप से सामाजिक, राजनैतिक, भाषा, साहित्य, शिक्षा आदि विषय-वस्तु रहें हैं परंतु संग्रह के व्यंग्य की यह खासियत भी रही है कि यह उन छोटी चीजों या परिस्थितियों की तरफ भी लोगों का ध्यान आकर्षित करती है जिसे स्वभावतः लोग अपने साथ या अपने आस-पास घटित होता हुआ देखते हैं। 'किताब चोरी', 'सीनियर सिटिजन', बोल्ड आउट', आदि ऐसे ही व्यंग्य हैं जिनकी घटनाओं से परिचित होकर पाठक खुद के साथ भी घटित होता हुआ या अनुभव होता हुआ अवश्य महसूस करेंगे। 'एटी प्लस' में 80 प्रतिशत अंक लाने वाले बच्चों को परिवार और समाज में दया का पात्र मानना के प्रसंग को दिखाया गया हैं, तो 'बोल्ड आउट' में व्यंग्यकार अपने फेसबुक की एक पोस्ट के संदर्भ पर लिखते हैं, "एक बार अप्रत्याशित रूप से मेरे एक पोस्ट पर कुछ अधिक कमेंट्स एवं लाइक्स आ गए। मेरा मन बरसाती मेढ़क की तरह टर्रटर्राने लगा।" (हा! वसंत!, पृ. 113) यह छोटे-छोटे विषय-वस्तु भी जगह-जगह इस व्यंग्य-संग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

'हा! वसंत!' व्यंग्य-संग्रह की शुरुआत 'हा! वसंत!' नामक व्यंग्य से होती है। व्यंग्यकार इस व्यंग्य के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि बदलते युग के साथ ही वसंत भी अब साहित्य और समाज से अनुपस्थित होता चला जा रहा है। इसी संदर्भ में वह लिखते हैं,

---

हा! वसंत! (व्यंग्य-संग्रह)/ लेखक : डॉ. पंकज साहा/ प्रकाशक-मानव प्रकाशन 131, चित्तरंजन एवेन्यू कोलकाता-700073/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ पृष्ठ : 132/ मूल्य : ₹450/-

"अस्सी के दशक के बाद चली हवा ने ऑरिजनल वसंत को शहरों से भी लगभग भगा दिया। उत्तर आधुनिक पीढ़ी ने वेलेंटाइन डे, फ्रेंडशिप डे आदि में वसंत के नए रूपों की खोज कर ली है। मोबाइल और इंटरनेट के कारण अब तो सालों भर इनके लिए वसंत-ही-वसंत है।" (हा! वसंत!, पृ. 02) साहा जी ने वर्तमान समाज और जीवन से वसंत के लुप्त होने को कुछ उसी प्रकार प्रस्तुत किया है जैसे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'अशोक के फूल' को दरकिनार किए जाने पर चिंतित हो उठे थे। प्रस्तुत व्यंग्य-संग्रह का आरंभिक व्यंग्य ही वसंत पर आधारित है परंतु इस व्यंग्य के मूलभाव की छाया अधिकांश व्यंग्य ही वसंत पर दिखाई देती है। 'हा! वसंत!' व्यंग्य के मूलभाव में परंपरागत दो पीढ़ियों, दो समय-काल का है और इसी अंतर को उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से इस संपूर्ण संग्रह में उकेरा है। 'सौंदर्य' नामक व्यंग्य में व्यंग्यकार वर्तमान समाज में सौंदर्य की उपयोगिता वाले पक्ष के बदलाव को रेखांकित करते हैं तो 'मित्रता' में वह बढ़ती अवसरवादिता को दर्शाते हुए लिखते हैं, "पहले मित्रता हो जाती थी। वह दीर्घायु होती थी। अब मित्रता की जाती है। यह चीनी समान की तरह सस्ती और चमकदार तो होती है, पर टिकाऊ नहीं होती।" (हा! वसंत!, पृ.07) इसी तरह 'तब और अब', 'कितने-कितने डे', 'मूंगफली चिंतन', 'सबै दिन जात न एक समान', 'कबीर गरब न कीजिए', आदि कई व्यंग्यों में दो पीढ़ियों के लोगों के मध्य के वैचारिक अंतराल को देखा जा सकता है। इस दृष्टि से उनका 'साहित्यिक-संग्रहालय की आवश्यकता' व्यंग्य की धार को अत्यंत प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करता है। ट्रेन में सफर कर रहे बच्चों को जब यह मालूम होता है कि उनके सामने एक कवि बैठे हैं तो उन्हें इतना कौतूहल होता है कि जैसे अचानक से कोई लुप्त प्रजाति प्रकट हो गई हो। व्यंग्यकार लिखते हैं, "नेट में ब्राउजिंग करने वाली, मोबाइल में फेसबुक या व्हाट्सप पर व्यस्त रहने वाली, शॉपिंग मॉल और पार्क में तफरीह करने वाली, पार्टियों में मस्त रहने वाली नई पीढ़ी मुझे अफसोस से भर देती है।" (हा! वसंत!, पृ.89)

'हा! वसंत!' व्यंग्य-संग्रह में हमारी पुरातन और नवीन संस्कृति, आचार-विचार आदि के परिवर्तन को जिस व्यंग्यात्मक तरीके से उकेरा गया है वह निश्चित तौर पर सोचने पर विवश करता है। रोचक प्रसंगों के कारण प्रसंग बोझिल प्रतीत नहीं होते और मानवीय संवेदनाओं के करवट लेने की कहानी को मनोरंजकता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक और राजनैतिक विषय व्यंग्य के मुख्य आधार रहे हैं और इस संग्रह में भी यह स्वर सभी जगह विद्यमान है परंतु व्यंग्य में इनकी प्रस्तुति अत्यंत ही सरल और सहज तरीके से हुई है। डॉ. पंकज साहा ने आधुनिक समाज में मानव जीवन के तीखे-मधुर स्वर की अभिव्यक्ति को व्यंग्य के हल्के-फुल्के प्रसंगों में इस तरह पिरोया है कि पाठक पुलकित और प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। 'अंतरात्मा' में ट्रैफिक हवलदार का रिश्वत लेने का प्रसंग, 'एक अदद पूंछ की तलाश' में नेताओं की चाटुकारिता पर व्यंग्य किए जाने का प्रसंग और 'भूत से मुक्ति' में अंधविश्वास जैसे गंभीर प्रसंग को जिस सहज और संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हैं वह व्यंग्य के क्षेत्र में उनके सामर्थ्य को दर्शाता है। "सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास" इस संग्रह के प्रमुख व्यंग्यों में अपनी जगह दर्ज कराता है क्योंकि इसमें कई सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के माध्यम से विसंगतियों को उभारा गया है। 'किट्टी' में वह व्यंग्य करते हुए लिखते हैं, "सरकार को यह भी चाहिए कि घोटाला करके या बैंकों का कर्ज लेकर जो विदेश भाग गए हैं, उन्हें कभी देश में लाने का प्रयत्न न करें, क्योंकि जितना प्रयत्न, उतना खर्च। फिर वे देश में आकर कर्ज की रकम या घोटाले का पैसा तो लौटाएँगे नहीं, हाँ नए घोटाले के लिए कोई सुरक्षित आश्रय अवश्य खोज लेंगे।" (हा! वंसत!, पृ.53) व्यंग्यकार ने अपनी निजी अनुभूतियों के माध्यम से समाज और राजनीति में गलत का विरोध करते हुए व्यंग्य का तीखा प्रहार किया है लेकिन उसमें एक मिठास भी बनी हुई है जो लोगों को सोचने और मुस्कुराने के लिए एक साथ बाध्य करता है और यही इस व्यंग्य का प्रमुख उद्देश्य और खासियत भी रही है, जिसमें वह सफल रहा है।

डॉ. पंकज साहा हिंदी के प्रोफेसर हैं और इसीलिए व्यंग्य-संग्रह के कई व्यंग्य हिंदी भाषा, साहित्य और शिक्षा जगत से जुड़े हुए हैं। 'शब्द लीला' में उन्होंने विभिन्न शब्दों पर चर्चा करते हुए साहित्य में शाब्दिक

खिलवाड़ पर व्यंग्य किया है। 'हिंदी की विचित्रता' में तकनीकी हिंदी शब्द के कठिन होने और उसके व्यावहारिक न होने को दर्शाया है, जैसे वह लिखते हैं कि प्रमोटेड स्कूल के लिए अधिक प्रासंगिक हिंदी शब्द उन्नत विद्यालय का प्रयोग न करके उत्क्रमित विद्यालय का प्रयोग किया जाता है जो न ही प्रासंगिक है और न ही व्यावहारिक है 'टहलुआ', 'सुरक्षित मार्ग', 'सिद्धांत और व्यवहार', आदि ऐसे व्यंग्य लेख हैं जो शिक्षा जगत की अवसरवादिता और चाटुकारिता पर व्यंग्य करते हैं। 'पर्दाफाश' इस दृष्टि से सबसे सशक्त व्यंग्य लेख है। इसके माध्यम से व्यंग्यकार ने शैक्षिक जगत के प्राध्यापकों की विभिन्न विसंगतियों को एक पत्रकार और प्राध्यापिका के मध्य हुए संवाद के माध्यम से सशक्त रूप से उभारा है, "अब मिश्र जी को ही लीजिए।... दिन-दुनिया की उन्हें खबर नहीं रहती। अपना क्लास तक उन्हें याद नहीं रहता, परंतु पेमेंट कब होगा, इसकी पक्की खबर रहती है।" (हा! वसंत!, पृ.108) साहित्य जगत को आधार बनाते हुए व्यंग्यकार ने कवियों और पुरस्कारों पर व्यंग्य किया है। 'कवि जी', 'मुद्दा संकट', 'गम्भीर चिंतन', 'भाँति-भाँति के कवि', 'पहले क्यों न बताया' आदि साहित्य जगत पर आधारित व्यंग्य हैं। 'भाँति-भाँति के कवि' में वह कवियों पर व्यंग्य करते हुए मानते हैं कि उनके शहर में अधिकांश कवि सुकवि नहीं है अपितु वह कवि हैं जो कवि होने का दिखावा करते हैं। इस व्यंग्य में उन्होंने कुल 14 तरह के कुकवियों का वर्णन किया है। जो मनोरंजक होने के साथ-साथ इस तरह के कवियों की सच्चाई से रूबरू भी करवाता है। इसी तरह वह 'मुद्दा-संकट' में साहित्य जगत में पुरस्कारों की विडंबनाओं पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं, "इधर हिंदी के कुछ आलोचकों को 'पुरस्कार विमर्श' नामक एक मुद्दा मिल गया था। 'भारत-भूषण पुरस्कार' एवं अन्य पुरस्कारों पर वंचितों ने हो-हल्ला मचाना शुरू किया हालाँकि सभी को पता है कि आज किसी क्षेत्र में किसी भी किस्म का पुरस्कार प्राप्त करने के लिए योग्यता से अधिक कुशल प्रबंधन की आवश्यकता है। "(हा! वसंत!, पृ.42) 'हा! वसंत!' व्यंग्य-संग्रह की यह खासियत रही है कि व्यंग्यकार ने कई स्थानों पर सिर्फ स्थितियों पर चोट की है और उनमें से व्यंग्य स्वतः उभरकर सामने आया है।

'हा! वसंत!' व्यंग्य-संग्रह भाषा-शैली के स्तर पर सहज और चुटीली शैली लिए हुए सशक्त भाषा को दर्शाती है। इस संग्रह में व्यंग्यकार ने शैली के स्तर पर नाटकीयता, संवाद, साक्षात्कार आदि उपकरणों का प्रयोग किया है। व्यंग्य में कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्दों का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया गया है, "जाड़े में मेरी बालकनी में धूप का एक घंटे का स्टॉपेज होता है।" (हा! वसंत!, पृ.01) कई छोटे-छोटे लेखों में भी असरदार तरीके से व्यंग्य को उभारा गया है जो व्यंग्यकार के भाषा कौशल को दर्शाता है।

'हा! वसंत!' मुख्य रूप से मनुष्य के जीवन के हर छोटे-बड़े प्रसंगो की अभिव्यक्ति है। वस्तुतः इस व्यंग्य-संग्रह की सार्थकता इस बात में है कि वह आस-पास के जीवन और समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विडंबनाओं को व्यंग्यात्मक ढंग से रेखांकित किया है। व्यंग्यकार द्वारा इस संग्रह में परंपरा और आधुनिकता के मध्य बढ़ते अंतराल के माध्यम से विविध विषयों को जिस जीवनानुभव द्वारा व्यक्त किया गया है वह विश्वसनीय और शोचनीय है। यह संग्रह व्यंग्य के माध्यम से समाज और राजनीति की निरंतर बदलती जा रही तस्वीर को प्रस्तुत करता है। लघु किस्सागोई शैली में प्रस्तुत यह व्यंग्य-संग्रह भारतीय जीवन विडंबनाओं के उन तीखे-मधुर स्वर की एक अनूठी कृति है।

– 117/ 1, मुनिरका, नई दिल्ली - 110067

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, कुलपति निवास, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, लालपुर, अमरकंटक, जिला-अनूपपुर, मध्य प्रदेश-484887
2. सुश्री विशाखा पाँचाल, मकान नं. 141, गली नं. 1, निकट कमल पब्लिक स्कूल, सेवा नगर, मेरठ रोड, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश-201001
3. श्री रिपुंजय कुमार ठाकुर, मकान नं. 677, ब्लॉक-ए जी, शालीमार बाग, नई दिल्ली-110088
4. श्री राजेंद्र परदेसी, 44-शिव विहार, फरीदी नगर, लखनऊ-226015
5. प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू, डीन हिंदी विभाग, स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज एंड ह्यूमैनिटीज, केंद्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु, थिरुवरुर-610005
6. प्रो. रसाल सिंह, मकान नं. 358, प्रथम तल, सेक्टर-डी, सैनिक कॉलोनी, जम्मू, जम्मू और कश्मीर-180011
7. श्री उदिप्त तालुकदार, के द्वारा गुनवीराम दास, मकान नं.-14, सुंदरबारी, महालक्ष्मी अपार्टमेंट के सामने ए.इ.सी. रोड, जलुकबारी, जिला-कामरूप, असम-781014
8. डॉ. रश्मि मालगी, प्लॉट नं. 9, सिद्धारूढ़ कॉलोनी, शिवगिरी, धारवाड, कर्नाटक-580007
9. सुश्री निशि त्यागी/ सुश्री आकांक्षा श्रीवास्तव, स्कूल ऑफ एजुकेशन, शारदा यूनिवर्सिटी, ग्रेटर नोएडा, गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
10. डॉ. विजय विनीत, सलेमपुर, सूर्यगढ़ा, लखीसराय, बिहार-811106
11. श्री राहुल राज आर्यन, मकान नं.-89, द्वितीय तल, गली नं.-06, भगत कॉलोनी, संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली-110084
12. श्री विवेक शर्मा, बी-1911, स्ट्रीट नं.-26/7, 2nd पुश्ता, सरकुलर रोड, सोनिया विहार, दिल्ली-110090
13. श्री मनीष कुमार सिंह, एफ-2, 4/273, वैशाली, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश-201010
14. डॉ. शैलजा सक्सेना, 2288, डेल रिज ड्राइव, ओकविल, ओंटारियो-एल 6 एम 3 एल 5, कनाडा

    Dr. Shailija Saksena, 2288, Dale Ridge Dr., Oakville, On-L6 M3L5, Canada
15. श्री कृष्ण कुमार 'कनक','कनक-निकुँज' गाँव/पोस्ट-गुँदाऊ, ठार मुरली नगर, थाना लाइन पार फिरोज़ाबाद, उत्तर प्रदेश-283203
16. श्री सतीश श्रोत्रिय, मुगलपुरा जावरा, जिला-रतलाम, मध्य प्रदेश-457226

17. प्रो. दिनेश चमोला "शैलेश", 157, गढ़ विहार, फेज -1, मोहकमपुर, देहरादून -248005

18. डॉ. अश्वघोष, 7, अलकनंदा एन्क्लेव, जनरल महादेव सिंह रोड, देहरादून, उत्तर प्रदेश-248001

19. श्री गोल्लापूडि मारुति राव, 'साहित्य साधना', प्लॉट नंबर - 16, म. नं. 10-167, गायत्री होम्स, हैदराबाद-500097

20. श्री श्रीपेरंबुदूरु एस. नारायण राव 'श्रीनारा', 'साहित्य साधना', प्लॉट नंबर - 16, म. नं. 10-167, गायत्री होम्स, हैदराबाद-500097

21. डॉ. वर्षा सोलंकी, डी-7, इनकम टैक्स कॉलोनी (न्यू सिविल हॉस्पिटल के सामने), मजूरा गेट, सूरत, गुजरात-395001

22. श्री नारायण झा, ग्राम-पोस्ट, रहुआ-संग्राम, प्रखंड-मधेपुर, जिला-मधुबनी, बिहार-847408

23. डॉ. करुणा शर्मा, 132, आम्रपाली अपार्टमेंट्स, प्लॉट नंबर 56, आई पी एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

24. प्रो. पूरनचंद टंडन, 'संकल्प', डी-67, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

25. श्री अमृत कुमार, 117/ 1, मुनिरका, नई दिल्ली - 110067

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम् नई दिल्ली – 110066

ई.मेल chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट से. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर : .....

पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार और संवद्र्धन के उद्देश्य से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के त्हत 1 मार्च 1960 को हुई थी। इसके चार क्षेत्रीय कार्यालय, मुंबई, चेन्नई और गुवाहाटी में स्थित हैं। दिनांक 1 मार्च 2020 के दिन केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना के 60 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में हीरक जयंती समारोह का भव्य आयोजन नई दिल्ली के विज्ञान भवन के सभागार में आयोजित किया गया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि माननीय शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी, समारोह के अध्यक्ष महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल, विशिष्ट अतिथि मुबंई निदेशालय के प्रोफेसर करुणाशंकर उपाध्याय, हैदराबाद विश्वविद्यालय से आर.एस.सर्राजू, केरल विश्वविद्यालय से प्रोफेसर एस. तकमणि अम्मा, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, प्रोफेसर अवनीश कुमार, उपनिदेशक, डॉ. राकेश कुमार, पत्राचार पाठ्यक्रम ब्यूरो प्रमुख एवं कार्यक्रम प्रभारी डॉ. अनुराधा सेंगर कार्यक्रम में उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. किरण झा एवं डॉ. शालिनी राजवंशी द्वारा किया गया।

कार्यक्रम का उद्घाटन विधिवत दीप प्रज्वलन एवं मंगलाचार के साथ हुआ। हीरक जयंती समारोह के मुख्य अतिथि माननीय शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी को निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा पौधा एवं शॉल भेंट स्वरूप प्रदान कर स्वागत किया गया।

माननीय मंत्री महोदय के कर कमलों द्वारा निदेशालय का महत्वपूर्ण प्रकाशन देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी का मानकीकरण पुस्तक के संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण तथा देवनागरी लिपि अभ्यास पुस्तक एवं हीरक जयंती लोगो का लोकार्पण किया गया। इसके उपरांत केंद्रीय हिंदी निदेशालय वेबसाइट, प्रकाशन वेबसाइट, यू ट्यूब चैनल–हिंदी भाषा वाणी तथा मोबाइल ऐप का भी माननीय मंत्री जी के कर कमलों द्वारा लोर्कापण किया गया मंत्री जी ने निदेशालय को हीरक जयंती को अशेष शुभकामनाएँ एवं बधाई दी। मंत्री महोदय ने केंद्रीय हिंदी निदेशालय की उपलब्धियों एवं योजनाओं पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथियों द्वारा भी सभा को संबोधित किया गया। अध्यक्षीय संबोधन के उपरांत अतिथियों को हीरक जयंती स्मृति चिह्न भेंट स्वरूप निदेशक महोदय द्वारा प्रदान किए गए। उद्घाटन सत्र का औपचारिक आभार–ज्ञापन उपनिदेशक (भाषा) केंद्रीय हिंदी निदेशालय, डॉ. राकेश कुमार द्वारा किया गया।

समारोह के द्वितीय सत्र में विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं प्रतिष्ठित कवियों तथा ग़ज़लकारों से सुसज्जित काव्य गोष्ठी आयोजित हुई। मंचासीन कवियों में श्री दिवेक गौतम, श्री बी. एल. गौड, श्रीमती नमिता राकेश, श्री आशीष कंधवे, श्री संजय गुप्ता, श्री लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, श्री नरेश शांडिल्य, विज्ञान व्रत थे। वरिष्ठ कवि श्री बालस्वरूप 'राही' ने काव्य गोष्ठी की अध्यक्षता की। काव्य गोष्ठी का संचालन प्रसिद्ध कवि श्री दिवेक गौतम ने किया। राष्ट्रगान के साथ समारोह का समापन हुआ।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (दवैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-6-2020
700

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2020

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित